MAPA - 07

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

राजस्थान के विशेष संदर्भ में भारत में राज्य प्रशासन

MAPA - 07

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

राजस्थान के विशेष संदर्भ में भारत में राज्य प्रशासन

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक एवं समन्वयक

प्रो. पी.सी. माथुर

परामर्शदाता (लोकप्रशासन)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. अरविन्द शर्मा**
  आचार्य, प्रबंध विकास संस्थान
  गुड़गांव
- **प्रो.(डॉ.) पी.डी. शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), राजनीति विज्ञान विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. अशोक शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), लोक प्रशासन विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. राजेन्द्र जोशी**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  महर्षि दयानन्द सरस्वती विद्यालय, अजमेर
- **डॉ. लीला राम गुर्जर**
  सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **प्रो.(डॉ.) आर.वी. जैन**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), राजनीति विज्ञान विभाग
  दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **प्रो.(डॉ.) रविन्द्र शर्मा**
  आचार्य(सेवानिवृत्त), लोक प्रशासन विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) बी.एम. चितलंगी**
  आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
  जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. अशोक शर्मा**
  सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादन

प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली	**डॉ. लीला राम गुर्जर**	**डॉ. अशोक शर्मा**
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग	सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग	सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

संपादक

पाठ लेखक	(इकाई संख्या)	पाठ लेखक	(इकाई संख्या)
प्रो. पी.सी. माथुर परामर्शदाता (लोकप्रशासन) **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	1	**डॉ. ओ.पी. मीणा** व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग **राजकीय महाविद्यालय, टोंक**	6
प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच आचार्य, राजनीति विज्ञान राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर तथा सम्प्रति कुलपति **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	2	**डॉ. अनिल पारीक** व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग **राजकीय महाविद्यालय, कोटा**	7
प्रो. (डॉ.) चन्द्र मौलि सिंह आचार्य(सेवानिवृत्त), लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	3	**डॉ. सुश्री मीना सोगानी** सह आचार्य(से.नि.) लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	8
प्रो. (डॉ.) होशियार सिंह कुलपति(सेवानिवृत्त) **बीकानेर विश्वविद्यालय, बीकानेर**	4	**डॉ. शंकर सरोलिया** पुलिस महानिरीक्षक (से.नि.) **जयपुर**	9

श्रीमती शारदा गोस्वामी व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग **कानोडिया महाविद्यालय, जयपुर**	**5**	**डॉ. राकेश हूजा** अतिरिक्त मुख्य सचिव एवं अध्यक्ष **राजस्थान रेवेन्यू बोर्ड, अजमेर**	**10**
प्रो.(डॉ.) रविन्द्र शर्मा आचार्य(सेवानिवृत्त), लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**11**	**श्रीमती मीनाक्षी हूजा** सचिव, राजस्थान राज्यपाल जयपुर	**12**

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच कुलपति **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**	**प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली** निदेशक **संकाय विभाग** **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**	**प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा** निदेशक **पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग** **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन- अप्रैल 2009 ISBN - 13/978-81-8496-033-4

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

राजस्थान के विशेष संदर्भ में भारत में राज्य प्रशासन

विषय सूची

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	राजस्थान में राज्य प्रशासन : एक पारिस्थितिकी विश्लेषण	8–16
इकाई - 2	केन्द्र राज्य सम्बन्ध : विधायी और प्रशासनिक	17–26
इकाई - 3	भारत में केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध	27–41
इकाई - 4	भारत में प्रशासनिक सुधार एवं भविष्य के लिये कार्य सूची	42–52
इकाई - 5	मुख्यमंत्री : पद, शक्तियां तथा राज्यपाल से सम्बन्ध	53–63
इकाई - 6	राजस्थान लोक सेवा आयोग	64–75
इकाई - 7	राज्य सचिवालय	76–87
इकाई - 8	मुख्य सचिव : राज्य प्रशासन में उसकी भूमिका एवं महत्व	88–95
इकाई - 9	गृह विभाग	96–113
इकाई - 10	जिलाधीश	114–119
इकाई - 11	उपजिला प्रशासन की भूमिका एवं कार्य : उपखण्ड अधिकारी, तहसीलदार, एवं पटवारी के संदर्भ में	120–133
इकाई - 12	राज्य एवं नीचे के स्तरों पर जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र	134–140

इकाई– 01

राजस्थान राज्य प्रशासन : एक पारिस्थिकी विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भारत में प्रशासनिक परम्परा

1.3 राजस्थान में प्रशासनिक परम्परा

1.4 भू–आर्थिक पारिस्थिकी

1.5 राजस्थान में प्रशासनिक विकास

1.6 निष्कर्ष

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायेंगे -

– भारत में प्रशासनिक परम्परा के बारे में,

– राजस्थान में प्रशासनिक परम्परा की जानकारी,

– राजस्थान की प्रशासनिक पृष्ठभूमि

– राजस्थान में प्रशासनिक विकास का विवेचन ।

1.1 प्रस्तावना

राजस्थान का, भारतीय गणतंत्र की विभिन्न इकाइयों में समाज–ऐतिहासिक व पारिस्थितिक आधारों पर एक विशिष्ट महत्व है । लोक प्रशासन के विद्‌यार्थियों को इस विशिष्टता के महत्व को समझ लेना अति आवश्यक है, क्योंकि, साधारण तौर पर संविधान की व्यवस्थाओं व प्रशासनिक तंत्रों को स्वरूप भारत की विभिन्न इकाइयों में प्राय: वर्णनात्मक दृष्टि से एकरूप ही दिखाई देता है । भारतीय संविधान के अनुसार राज्य को एक विशिष्ट प्रकार की इकाई माना गया है तथा वर्तमान में भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र को पच्चीस राज्यों व छ: केन्द्र प्रशासनिक प्रदेशों में बांट दिया गया हे । क्षेत्र–फल, आकार, सामाजिक संरचना व आर्थिक विकास की दृष्टि से इन सभी राज्यों में समता अथवा एकरूपता नहीं है; लेकिन संवैधानिक दृष्टि से प्राय: सभी राज्यों को समान शक्तियां व संगठनात्मक संरचना प्रदान की गई है । अतएव सामान्यतया लोक प्रशासन के विद्‌यार्थियों का ध्यान राज्य प्रशासन की विशिष्टताओं की ओर नहीं जाता है । राजस्थान के सन्दर्भ में राज्य प्रशासन के अध्ययनकर्ताओं को उसकी पारिस्थिकी परिस्थितियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

1.2 भारत में प्रशासनिक परम्परा

भारत की प्राचीन सभ्यता में शासन के सिद्धान्तों व प्रशासन की व्यवस्थाओं के प्रति चिन्तन की कई शताब्दियों की परम्परा है, यद्यपि हमें वैदिक अथवा अति प्राचीन काल में प्रचलित प्रशासन तन्त्रों का विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त नहीं है, तथापि अशोक महान व चन्द्रगुप्त जैसे पराक्रमी शासकों के इतिहास से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि भारतीय नागरिकों के लिए, प्रशासन कोई नई संस्था अथवा प्रक्रिया नहीं है । इन प्राचीन विचारधाराओं व संस्थागत परम्पराओं का निर्वाह मौर्य काल से लेकर समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त जैसे चक्रवर्ती शासकों के काल में हुआ तथा इसके पश्चात भी हर्षवर्धन जैसे सम्राट इसी प्रकार की शासन पद्धति का अनुसरण करते रहे । भारत के इतिहास में कहीं–कहीं गणराज्यों को भी उल्लेख मिलता है, परन्तु चाहे राजतन्त्र हो या गणतन्त्र प्रशासनिक प्रक्रिया में प्राय: राज्यों का विस्तार छोटा हो गया, परन्तु फिर भी प्रशासनिक ढांचे में निरन्तरता बनी रही, जिसका उपयोग मुगल साम्राज्य में अकबर जैसे सुविज्ञ शासकों ने किया । इन्हीं परम्पराओं व प्रणालियों का परिवर्तित रूप अंग्रेज शासकों ने अपनाया तथा वर्तमान भारत में भी इन प्रशासकीय परम्पराओं का अवलम्बन कर रखा है ।

मूल रूप से भारतीय प्रशासन का संगठन बहुस्तरीय रहा है । इस बहुस्तरीयता की जड़ें भारत की ग्रामीण व्यवस्था में निहित हैं, जिसमें अधिकांश ग्रामवासी छोटे–छोटे गांव में कृषि प्रधान जीवन व्यतीत करते रहे । भारत के अधिकांश भाग में मिट्टी उपजाऊ होते हुए भी यहां की कृषि वर्षा पर निर्भर थी तथा समाज व सभ्यता न्यूनीकरण की व्यवस्थाओं तथा अनिश्चितताओं का निराकरण अथवा न्यूनीकरण करने की आकांक्षाओं से उत्प्रेरित व आच्छादित थीं इसलिए, भारतीय ग्रामवासियों की यह स्वाभाविक प्रकृति सी बन गई थी कि अपनी सभी आर्थिक, सामाजिक व भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक से अधिक स्वावलंबित रूप से कर लें । प्रत्येक छोटे से छोटा गांव इस प्रकार एक सामाजिक व आर्थिक इकाई का रूप ग्रहण करने लगा तथा उनके निवासियों का मानसिक एकीकरण इस सीमा तक संभव था कि स्वयं प्रशासन की स्वस्थ परंपराओं का निर्माण होने लगा । यहां हम यह स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं कि प्रत्येक भारतीय गांव की एक पूर्णत: स्वतन्त्र अथवा स्वावलम्बी इकाई के रूप में प्रशंसा करना एक अतिशयोक्ति है जो कि एक मूलभूत प्रवृत्ति को इंगित करती है जो कि सैद्धान्तिक रूप से विश्व व्यापी है, क्योंकि वह वर्षा–निर्भर कृषि की पारिस्थितिकी में निहित है । फिर भी जैसा कि कुछ अंग्रेजी प्रशासकों ने 19 वीं शताब्दी में नोट किया, अधिकांश भारतीय गांव अपनी प्रशासकीय आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं अपने आप ही कर लेते थे तथा उनके राज्य स्तरीय अथवा साम्राज्य स्तरीय प्रशासन से सम्बन्ध न्यूनतम थे । आज भी केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकारों के प्रशासनिक हाथ अधिकतर ग्रामवासियों के दैनिक जीवन को छू नहीं पाते, उनको प्रभावित व प्रशासित करने की तो बात ही अलग हैं । ग्राम स्तरीय प्रशासन इस प्रकार से भारत के इतिहास में एक विशिष्ट रूप ग्रहण कर अपनी निरन्तरता कई शताब्दियों तक बनाये रख सका । अशोक, चन्द्रगुप्त, अलाउद्दीन खिलजी, शेरशाह सूरी व अकबर द्वारा साम्राज्य स्तरीय प्रशासन की प्रणालियों व पद्धतियों का विकास करने के पश्चात भी भारत प्रशासनिक रूप से बहु–स्तरीय परम्परा का ही निर्वाह करता रहा ।

1.3 राजस्थान में प्रशासनिक परम्परा

राजस्थान में करीब एक हजार वर्ष पूर्व इस बहुस्तरीय प्रशासनिक परम्परा का नये रूप से संस्थानीकरण आरम्भ हुआ । इस भू भाग के कई खण्डों में विभिन्न राजपूत राजवंशों के आधिपत्य के प्रादुर्भाव के बारे में यद्यपि इतिहासज्ञ एकमत नहीं है, परन्तु फिर भी लोक प्रशासन के विद्यार्थियों को यह समझ लेना चाहिए कि इन राजवंशों ने एक ऐसी शासनिक व प्रशासनिक प्रणाली को जन्म दिया जो कि करीब एक हजार वर्ष तक अपरिवर्तित रूप से चलती रही तथा आज भी उसके अवशेष व मानसिक अवशिष्टताएं भारत के इस प्रदेश की प्रशासनिक व्यवस्था व कार्यकरण को प्रभावित करते हैं ।

वर्तमान राजस्थान का निर्माण 19 नरेशीय राज्यों व 3 उपराज्यों को संगठित करके किया गया है । अजमेर व आबू (जिन्हें कि 1956 में सम्मिलित किया गया है) के सम्भागों को छोड़कर समस्त राजस्थान एक नरेश शासित प्रशासनो का समूह है । इस प्रकार भारतीय गणतन्त्र में राजस्थान का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि अन्य किसी भी राज्य में राजतन्त्र की इतनी सुदृढ़ परम्पराओं का व्यापक प्रभाव 1947 से पूर्व नहीं था । राजस्थान में सम्मिलित 22 इकाइयों में भी राजतन्त्र के प्रशासनिक स्वरूप में एक रूपता नहीं रही; क्योंकि एक ओर तो तीन नरेशीय राज्यों में (भरतपुर, धौलपुर व टोंक) राजपूतों का अधिपत्य नहीं था, तथा दूसरी ओर से सभी राजतंत्रों का इतिहास समानरूप से लम्बा व गरिमामय नहीं रहा है । इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि टोंक व झालावाड़ जैसे नरेशीय राज्यों की स्थापना ही 19 वीं शताब्दी में ब्रिटिश राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिए की गई थी तथा अन्य राज्यों को इतिहास भी उतना पुराना नहीं है, जितना कि उदयपुर के सिसोदिया राजवंश का है, परन्तु फिर भी मोटे रूप से राजस्थान में पांच राजपूत राजवंशों (उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर व कोटा) की विशिष्टता प्रमुखता रही है । इन सभी प्रमुख व लघु नरेशीय राज्यों में प्रशासन का संगठन व कार्यप्रणाली बहुस्तरीय, विशेष तौर पर द्विस्तरीय रही ।

नरेशीय राज्यों में शासन व प्रशासन का केन्द्र–बिन्दु राजा अथवा नरेश स्वयं होता था, परन्तु राजस्थान के नरेशीय राज्यों में यह निरंकुश हो कर राज्य के प्रमुख सरदारों तथा जागीरदारों के ऊपर बड़ी मात्रा में निर्भर रहता था । राजस्थान में प्रचलित जागीरदारी प्रथा के अनुसार प्रत्येक नरेशीय राज्य का अधिकांश भू भाग प्रशासनिक दृष्टि से कई जागीरों में बांट दिया जाता था तथा प्रत्येक जागीर का जागीरदार अपनी जागीर का स्वतंत्र रूप से प्रशासन करता था । युद्ध के अवसर पर प्रत्येक जागीरदार को नरेश की आज्ञानुसार सैनिक व अन्त की सहायता देना आवश्यक था । राज्याभिषेक अथवा इसी प्रकार के अन्य समारोहों पर जागीरदारों को राज्य की परम्पराओं के अनुसार उपस्थित होना भी आवश्यक था, परन्तु इन सामरिक व समारोहिक कर्तव्यों के पालन के अलावा जागीरदारों का अपना अलग प्रशासनिक अस्तित्व था, जिसमें नरेश सामान्यत: हस्तक्षेप नहीं करते थे । इस सन्दर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनिय है कि प्रत्येक नरेशीय राज्य में प्राय: सभी प्रमुख जागीरदार उसी राजपूत उपजाति के थे, जिनका सम्बन्ध राजवंश से था तथा इन जागीरों की स्थापना भी उसी समय से मानी जाती रही है, जब कि इन नरेशीय राज्यों की स्थापना हुई । राजस्थान के जागीरदारों के इस विशिष्ट स्वरूप को मुगल सम्राटों ने भी मान्यता प्रदान की, तथा जहां एक अपने साम्राज्य में वे जागीरों को समाप्त करने व हस्तांतरित करने में अपने को पूर्ण समर्थ मानते थे, वहीं दूसरी ओर वे राजपूत जागीरदारों की वतन

जागीर में कोई छेड़छाड़ नहीं करते थे । यह बात तो इतिहास के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि राजपूताना के कई नरेश विशेषतः जयपुर, जोधपुर व बीकानेर राज्य व राजकुमारों को मुगल साम्राज्य में बहुत ऊँची मनसबदारिया मिली हुई थी, अत: लोक प्रशासन के विद्यार्थियों को मुगल साम्राज्य की जागीरदारी व्यवस्था व राजस्थान में जागीरदारी परम्पराओं की विभिन्नताओं को समझने का प्रयास करना पड़ेगा।

नरेशीय राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत जहां एक ओर एकात्मता का अभाव था, वहीं साधारण व्यक्ति पर केवल जागीर प्रशासन का ही प्रभाव था, क्योंकि जागीरदारी क्षेत्रों में किन्हीं राज्य व्यापी प्रशासनिक अधिकरणों का अस्तित्व शून्य प्राय: ही होता था । कुछ अपवादों को छोड़कर जागीरदारों को भी अपनी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को सुसंगठित करने का अवसर नहीं मिला । अतएव राजस्थान के नरेशीय राज्यों में प्रचलित जागीरदारी व्यवस्था को अन्य राज्यों की तुलना में प्रशासनिक रूप से अव्यवस्थित माना जा सकता है । राजस्थान के इन बड़े–बड़े व छोटे नरेशीय राज्यों में न केवल राजतन्त्र व जागीरदारी व्यवस्था की शताब्दियों तक निरन्तरता बनी रही, अपितु राज्यों में राजवंशों का इतिहास न केवल स्थानीय परन्तु भारतीय स्तर पर भी गौरवशाली रहा है । पहले पश्चिमी राजस्थान के शासकों ने महमूद व गौरी जैसे आक्रमणकर्ताओं का मुकाबला किया व बाद में दक्षिण–पश्चिम के व अन्य शासकों ने मुगल सम्राटों की सेनाओं को लोहे के चने चबवा दिये । अपने स्वाभिमान व स्वतन्त्रता की रक्षा में राजस्थान के राजपूत नरेशों ने न केवल विदेशी आक्रमणों का सामना किया अपितु स्थानीय मुस्लिम व गैर मुस्लिम विस्तारवाद की जड़ों को भी नहीं पनपने दिया । यह सत्य है कि अपनी कुछ विशिष्ट सांस्कृतिक मान्यताओं तथा प्रथाओं का अनुसरण करने के कारण जहां इस भू–भाग के नरेश अभी भी सम्मिलित रूप से अपने शत्रुओं का सामना नहीं कर सके व अपने राज्यों की सीमाओं के अन्दर भी अपने प्रमुख जागीरदारों से तनाव रहित सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाये, वहीं लगातार किसी न किसी प्रकार के युद्ध में संलग्न रहने के कारण नरेशों व जागीरदारों द्वारा सुदृढ़ प्रशासनिक संस्थाओं का निर्माण भी संभव न हो सका । परिणामस्वरूप राजस्थान के सामान्य नागरिकों का दैनिक जीवन कई शताब्दियों तक किसी भी प्रकार के प्रशासन से प्राय: अछूता ही रहा । मुगल साम्राज्य के कुशल नीति निर्माताओं द्वारा संस्थापित प्रशासनिक सुधारों से परिचित होते हुए भी राजस्थान के अधिकांश नरेशों ने उनका अपनी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में न्यूनतम रूप से ही अनुसरण किया । राजनैतिक व सांस्कृतिक स्वाभिमान व स्वावलम्बन की इन्हीं परम्पराओं के अन्तर्गत राजस्थान के नरेशों ने ब्रिटिश इंडिया में हो रहे आधुनिकीकरण व प्रशासनिक विकास की ओर उदासीनता का प्रदर्शन किया । इतना ही नहीं परन्तु इन नरेशों व इनके प्रमुख प्रशासकों ने अंग्रेज रेजीडेन्टों व गवर्नर जरनल के एजेन्टो द्वारा आर्थिक व प्रशासनिक नवीनीकरण अथवा आधुनिकीकरण की ओर किये गए प्रयासों का भरपूर विरोध भी किया ।

परिणामस्वरूप प्राय: समस्त राजस्थान के प्रशासन का विकास संस्थागत रूप से न्यूनाधिक मात्रा मे हो ही पाया । 1950 में निर्मित भारतीय गणतन्त्र के संविधान में इस राजनैतिक व प्रशासनिक यथार्थ को ध्यान में रखते हुए नवनिर्मित राजस्थान राज्य को 'बी' श्रेणी में रखा गया, जबकि ब्रिटिश इंडिया के सभी प्रान्तों को 'ए' श्रेणी प्रदान की गई । इस वर्गीकरण के फलस्वरूप राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था पर केन्द्र का प्रभुत्व स्थापित कर किया गया तथा 1947 से 1956 के दशक में केन्द्र का राजस्थान में लोक–प्रशासन के निर्माण में स्पष्ट योगदान रहा ।

1.4 भू -आर्थिक पारिस्थिकी

राजस्थान आर्थिक दृष्टि से भारत के अन्य राज्यों की तुलना में कुछ क्षेत्रों में काफी पिछड़ा हुआ है । यद्यपि यहां के साधारण नागरिक का स्वास्थ्य काफी संतोषजनक है तथा यहां प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होने वाले मोटे खाद्यानों जैसे जौ व बाजरा से यहां के निर्धन ग्रामवासियों को भी यथेष्ट ऊष्मा प्राप्त हो जाती है ।

राजस्थान के आर्थिक विकास में दो प्रमुख अवरोध रहे हैं – सामरिक अस्थिरता व भौतिक अक्षमतायें । राजस्थान के नरेशों के लगातार युद्धों में व्यस्त रहने के इतिहास का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं तथा यहाँ पर यह कहना ही काफी होगा कि इन सामरिक अभियानों के कारण किसी भी नरेशीय राज्य में पूँजी निर्माण की दिशा में दीर्घकालीन प्रयास करना सम्भव नहीं था । वैसे भी इन राज्यों की राजस्व आय का अधिकांश भाग दुर्गों के निर्माण व रख–रखाव तथा सेना के लिए सैनिकों व शस्त्रों की व्यवस्था में लग जाता था । दूसरी ओर सतत् युद्ध की स्थिति बनी रहने के कारण कोई साधारण व्यापारी अथवा महाजन उद्योग धन्धों के विकास की ओर ध्यान नहीं दे सकता था; अतएव नरेशीय राज्य प्रणाली एवं विशिष्ट राज्य वंशों की निरन्तरता के होते हुए भील राजस्थान के अधिकांश नरेशीय राज्यों में आर्थिक रूप से कृषि व उद्योग क्षेत्रों में कोई विशेष उन्नति नहीं हो पाई । परन्तु जहां युद्ध जनित उथलपुथल एक ओर आर्थिक अवरोध के रूप में राजस्थान के नरेशीय राज्यों में कई शताब्दियों तक बनी रही, वहीं पर लोक प्रशासन के विद्यार्थियों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भारत के इस 'भू–खण्ड की भौतिकीय पारिस्थिकी भी आर्थिक विकास के –मार्ग में एक प्रमुख बाधा रही है, जिसका कि निराकरण निकट भविष्य में भी होने की संभावनायें क्षीण है ।

भौगोलिक रूप से वर्तमान राजस्थान की भू–आर्थिक पारिस्थिकी कई विषमताओं व अक्षमताओं से भरी हुई है, जिसका सीधा प्रभाव प्रशासनिक संस्थाओं के संगठन व कार्य–क्षमता पर पड़ता है । राज्य के– प्राय: दो तिहाई भाग में थार मरूस्थल विद्यमान है, जहां पर वर्ष बहुत कम मात्रा में होती है तथा भू–जल के स्रोतों जैसे कि नदियां, झरने, कुंए तथा अन्य जलाशयों का नितान्त अभाव है । रेत के ऊँचे–ऊँचे टीलों के इस प्रदेश में जहां कुछ महीनों तक अत्यन्त गर्मी या कुछ सप्ताहों तक अत्यन्त सदी का प्रकोप प्रति वर्ष रहता है, मनुष्य जीवन अत्यन्त कष्टसाध्य है; परन्तु फिर भी यह मरुस्थल जीवन रहित नहीं है तथा पिछली कुछ दशाब्दियों में तो जनसंख्या व पशु–संख्या में जो वृद्धि हुई है, वह अभूतपूर्व तो है ही, साथ ही वह राजस्थान की राजधानी जयपुर में ही बैठे हुए नीति–निर्माताओं को अविश्वसनीय सी लगती है । प्राचीन काल में राजस्थान के इस मरूस्थलीय भू–संभाग की अनुत्पादकता का अन्दाजा तो शेरशाह सूरी के इस वक्तव्य, जो कि उसने इस क्षेत्र में एक कड़े युद्ध संघर्ष के विजय के उपरान्त दिया था, कि मैं मुट्ठीभर बाजरे के लिए अपना सब कुछ खोने वाला था, से लग सकता है । परन्तु वर्तमान में इस भू–भाग की पारिस्थितिक अक्षमताओं का अभाव यहां के दैनिक जनजीवन में देखा जा सकता है । राजस्थान के इस रेतीले भू–भाग में जनसंख्या का निवास एक–दूसरे से दूर स्थित छोटे–छोटे गांवों में है जिनके योजनाबद्ध आर्थिक विकास की बात तो दूर रही, उनका प्रशासनिक रूप से संगठन करना भी दुरूह है । इस प्रशासनिक कठिनाई का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस मरूस्थलीय भू–भाग में जैसलमेर जैसे जिले विद्यमान है, जिनका क्षेत्रफल भारत के कई राज्यों से भी अधिक है ।

वर्तमान राजस्थान को अरावली पर्वतों की श्रृंखला उत्तर–पूर्व से लेकर दक्षिण–पश्चिम तक दो भागों में विभाजित करती है, जिसमें पश्चिम की ओर शुष्क मरूस्थल है तथा इस श्रृंखला के पूर्व में कुछ जिलों में भूमि समतल है तथा वर्षा में कुछ छोटी नदियों के द्वारा कृषि के लिए पर्याप्त मात्रा में जल भी उपलब्ध है । दक्षिण–पूर्वी राजस्थान में जहां पर अरावली पर्वत श्रृंखला की ऊंचाई अपेक्षाकृत अधिक है, कृषि की अनिश्चिततायें अधिक हैं । राजस्थान के इस पर्वतीय भू–भाग में छोटी–छोटी नदियां भी वर्षा के दिनों में विकराल रूप धारण कर लेती हैं, जिससे न केवल आर्थिक क्षति होती है, परन्तु कुछ दिनों के लिए समस्त प्रशासनिक गतिविधियां ही बन्द सी हो जाती हैं, क्योंकि अधिकांश गांव अलग–थलग पड़ जाते हैं । इस पर्वतीय भू–भाग में गांव की बनावट भी अन्य समतल गांवों से कुछ भिन्न है, जिसके कारण ग्राम–स्तरीय प्रशासनिक अधिकारियों को अपने कार्य संपादन में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । अरावली पर्वत श्रृंखला से सटे हुए इस भू–भाग में जन जातियों की संख्या काफी अधिक है । भील इत्यादि जन जातियों का 21 वीं शताब्दी से 15 वर्ष पूर्व तक भी आधुनिकीकरण बहुत कम मात्रा में हुआ है तथा वे लोग अभी भी प्रशासनिक प्रक्रियाओं की जटिलताओं को समझने में अक्षम हैं, चाहे भले ही इन प्रक्रियाओं के द्वारा भारत व राजस्थान के नीति निर्माता उनका व उनके जीवन स्तर का विकास करना चाहते हों । राजस्थान के इस पर्वतीय भू–भाग में जहां एक ओर प्रचुर मात्रा में वन–सम्पदा उपलब्ध है वहीं दूसरी ओर कुछ बहुमूल्य खनिज पदार्थों जैसे – जिंक, अभ्रक व ताम्बा का भी बाहुल्य है । राजनैत्कि उथल–पुथल के कारण इस भू–भाग के नरेश इन दोनों प्रकार की सम्पदाओं का यथेष्ट रूप से उपयोग नहीं कर पाये तथा वर्तमान राजस्थान में भी इस दिशा में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई, क्योंकि राजस्थान राज्य का प्रशासन वनसम्पदा के दीर्घकालीन विकास योजनायें बनाने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम नहीं रहा है ।

राजस्थान के उत्तर में तथा अरावली पर्वतों के पूर्व में समतल व उपजाऊ भू–भाग है, जिसका कि आर्थिक दृष्टि से विकास और भी अधिक हो सकता था, यदि वह आगरा व दिल्ली के शासकों के राजस्थान पर आधिपत्य स्थापित करने के प्रयासों के कारण, निरन्तर एक युद्ध स्थल न बना रहता; फिर भी इस क्षेत्र में आमेर (जयपुर) नरेशों द्वारा दिल्ली' के मुगल सम्राटों के साथ मधुर सम्बन्ध रखने के कारण इस क्षेत्र का राजस्थान के अन्य भागों से अपेक्षाकृत अधिक विकास हुआ । वर्तमान में इस क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व काफी अधिक है तथा भारत की राजधानी के समीप होने के कारण औद्योगिक विकास की संभावनायें भी काफी प्रबल हे । हाल ही में राजस्थान सरकार ने भारत सरकार द्वारा प्रसारित ' 'नेशनल कैपिटल रीजन' ' योजना में भाग लेना स्वीकार कर लिया है, परन्तु इस निर्णय की प्रशासनिक अनिवार्यताओं का अभी तक कोई स्पष्ट रूप सामने नहीं आया है । वैसे कुछ वर्ष पूर्व इस संभाग में राज्य सरकार ने एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक निर्णय एक नये जिले की (जिसका मुख्यालय धौलपुर में है) स्थापना करके लिया है । यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि इस निर्णय के फलस्वरूप अब राजस्थान में जिलों की संख्या 26 से बढ़ कर 27 हो गई है ।

1.5 राजस्थान में प्रशासनिक विकास

वीं शताब्दी के आरम्भ में राजस्थान के कई नरेशों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ, मराठों के आक्रमणों से उत्पीड़ित हो कर, मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने शुरू कर दिये तथा इस शताब्दी के पहले तीन दशक समाप्त होने से पहले इस प्रकार की संधियों में राजस्थान के लगभग सभी नरेशीय राज्य

बंध गए । इन संधियों के अन्तर्गत अंग्रेजों ने एक ओर नरेशों व नरेशी राज्यों के अस्तित्व को सुरक्षा प्रदान की तथा दूसरी ओर इन नरेशी राज्यों को अंग्रेजों द्वारा ब्रिटिश इंडिया में किये जा रहे आधुनिकीकरण व प्रशासनिक विकास की मुख्यधारा से अलग–अलग कर दिया । अंग्रेजी प्रशासकों के द्वारा नरेशों की सत्ता को सहारा देने के कारण नरेशीय राज्यों के प्रमुख सरदारों व जागीरदारों की महत्ता कम हो गई, क्योंकि अब उनकी युद्धकालीन सेवाओं की आवश्यकता नहीं रही; परन्तु नरेशीय राज्यों के शासकों ने इस नव निर्मित शक्ति का उपयोग आर्थिक व प्रशासनिक यथास्थिति को बनाये रखने में ही किया तथा अंग्रेजी शासकों द्वारा प्रतिपादित प्रशासनिक सुधार के प्रयत्नों का भी अपनी पूर्ण सामर्थ्य से विरोध किया । 1857 के बाद तो अंग्रेजी शासकों ने भी नरेशीय राज्यों में समाज सुधार व 'प्रशासनिक विकास की आवश्यकता पर जोर देना कम कर दिया परन्तु समस्त भारत में हो रहे परिवर्तनों के प्रभाव से नरेशीय राज्य भी अप्रभावित नहीं रह सके । 20 वीं शताब्दी के प्रार्दुभाव के बाद परिवर्तन का यह क्रम ओर भी गतिमान हो गया, विशेष रूप से उन नरेशीय राज्यों में, जहां के शासक दक्षिण भारत के विख्यात विद्वान व प्रशासकों को अपनी सेवा में मुख्य पदों पर आकर्षित कर सके । ब्रिटिश इण्डिया भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा चलाये गए स्वतन्त्रता संग्राम की प्रतिक्रिया भी 20 वीं शताब्दी के दूसरे दशक से राजस्थान के नरेशीय राज्यों में होने लगी तथा कुछ दूरदर्शी नरेशों ने इसके निराकरण के लिए कई महत्वपूर्ण राजनैतिक व प्रशासनिक सुधार, किये, जिससे उन पर शक्ति के केन्द्रीयकरण व उसके स्वेच्छाचारिता पूर्वक प्रयोग करने सम्बन्धी कांग्रेसी आरोपों को खण्डन किया जा सके । फलस्वरूप कई राज्यों के प्रतिनिधि सभायें स्थापित की गई तथा कुछ राज्यों में अलग से न्यायपालिका का भी निर्माण किया गया । परन्तु फिर भी यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अधिकांश नरेशीय राज्यों में प्रशासन परम्परागत शैली से चलता रहा तथा जन साधारण की आकांक्षाओं का नीति निर्माण की प्रक्रिया में कोई विशेष प्रभाव भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति की पूर्व– संध्या तक भी इन नरेशीय राज्यों में दृष्टिगोचर नहीं होता था ।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ तथा तत्कालीन गृह मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल की सूझबूझ के कारण नरेशीय राज्यों का कुछ नवीनीकरण बहुत थोड़े से समय में शान्ति पूर्व हो गया । इस प्रक्रिया में अधिकांश नरेशीय राज्यों का अस्तित्व पूर्ण रूप से विलुप्त हो गया, परन्तु राजस्थान के रूप में एक ऐसी इकाई का निर्माण हुआ जिसका कि निर्माण भूतपूर्व नरेशी राज्यों को मिलाकर हुआ था । वर्तमान राजस्थान में जोड़ दिया गया । क्षेत्रफल के आधार पर स्थिरता आ जाने के बाद भी राजस्थान के अन्दर प्रशासनिक नियमों, प्रक्रियाओं व संस्थाओं में एकरूपता लाने में काफी समय लगा, परन्तु यह जटिल कार्य भी इतनी सरलतापूर्वक सम्पन्न हो गया कि आज यह अनुमान लगाना भी मुश्किल है कि सिर्फ 35 वर्ष पहले ही राजस्थान में 20 या इससे भी ज्यादा प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्थाएं विद्यमान थी । क्योंकि स्वतन्त्र भारत में एक राज्य रूपी इकाई का पद ग्रहण करते ही राजस्थान में मुख्यमंत्री स्तर पर राजनैतिक अस्थिरता दृष्टिगोचर होने लगी थी, अत: राजस्थान में प्रशासनिक विकास को नई दिशा व अच्छी गति प्रदान करने का श्रेय भी श्री मोहनलाल सुखाड़िया को दिया जा सकता है, जिन्होंने 1954 से अगले 17 वर्षों तक मुख्यमंत्री पद संभाले रखा तथा प्रशासनिक अभिनवीकरण के कई नये कीर्तिमान स्थापित किये । राजस्थान के प्रशासनिक इतिहास में सुखाड़िया शासन (1954– 1971) सम्मानित रूप से पंचायती राज संस्थानों की स्थापना के लिए याद किया

जा सकता है । "लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण' ' की अवधारणा को राष्ट्रीय विकास परिषद के बलवन्त राय मेहता अध्ययन दल ने 1958 में प्रतिपादित किया तथा राजस्थान के सुखाड़िया मंत्रीमण्डल को इस बात का श्रेय अवश्य दिया जाना चाहिए कि पंचायती राज के रूप में उन्होंने इस धारणा को संस्थागत रूप देने में उस समय पहल की जबकि प्रशासनिक रूप से अधिक विकसित राज्यों में इस प्रस्ताव पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा था । यद्यपि 2 अक्टूबर, 1959 को संस्थापित 7394 पंचायतें, 232 पंचायत समितियां व 26 जिलापरिषदें अपनी प्रारम्भिक सफलताओं को ज्यादा अधिक समय तक बनाये नहीं रख सकीं तथा 1967 के बाद श्री सुखाड़िया के मुख्यमंत्री रहते हुए भी उनके प्रति उपेक्षा की नीति अपनाई जाने लगी । परन्तु फिर भी यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि राजस्थान के प्रशासनिक विकास में पंचायती राज का बहुत बड़ा योगदान रहा है क्योंकि इससे पहले तो ग्रामीण जनजीवन, विकास प्रशासन की तो बात ही अलग है एक प्रकार से प्रशासन से ही अछूता था ।

भारतीय गणराज्य में एक इकाई के रूप में सम्मिलित किये जाने के समय राजस्थान स्पष्टतया प्रशासनिक दृष्टि से बहुत कम विकसित था । परन्तु बहुत से अर्थोंमें यह अविकसित होने की दशा एक वरदान साबित हुई क्योंकि इन खाली पत्रों पर प्रशासनिक विकास के नये नियमों व संगठनों का चित्रण बहुत आसानी से किया जा सका, जबकि, स्वतन्त्र दिशायें प्रदान करने के लिए केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को काफी प्रतिरोध का सामना करना पड़ा । कर्नाटक, आंध्र प्रदेश व महाराष्ट्र जैसे राज्यों में जहां दो या तीन प्रकार की विभिन्न प्रशासनिक परम्पराओं वाले भू–भागों का सम्मिश्रण किया गया है, आज भी प्रशासनिक बहुरूपता की कई समस्याएँ विद्यमान हैं, क्योंकि 1947 से पूर्व विभिन्न सूत्रों व नरेशीय राज्यों में प्रचलित प्रशासनिक व्यवस्थाओं को एक रूप में ढ़ालना इतना आसान सिद्ध नहीं हुआ जितना कि राजस्थान के नरेशीय राज्यों की राजनैतिक व प्रशासनिक व्यवस्थाओं को हटा कर पूरे राजस्थान में नये प्रशासनिक तन्त्र के निर्माण की ओर काफी प्रगति की जा चुकी है । लोक प्रशासन के विद्यार्थियों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि महाराष्ट्र, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल व तमिलनाडू की तुलना में प्रशासनिक रूप से कम विकसित समझे जाने वाले राजस्थान में कुछ ऐसे अभिनव प्रयोग सफलतापूर्वक किये गये हैं जिनके बारे में अन्य राज्य सरकारें तो अलग, केन्द्र में भी ठोस कदम नहीं उठाये जा सके हैं । पंचायती राज का तो हम ऊपर उल्लेख कर ही चुके हैं, परन्तु इन सब प्रयासों की निश्चित जानकारी के लिए पाठकों को श्री मोहन मुखर्जी द्वारा संपादित "एडमिनिस्ट्रेटिव इनोवेशन्स इन राजस्थान" (नई दिल्ली, 1982) का स्वयं अध्ययन करना चाहिए । इस संदर्भ में यह उल्लेख करना भी उचित प्रतीत होता है कि इस पुस्तक का राज भवन में विमोचन करने समय पूर्व राज्यपाल श्री ओ पी. मेहरा ने इस बात पर आश्चर्य प्रगट किया कि जहां महाराष्ट्र में रेवेन्यू कमिश्नर डिविजन स्तर पर प्रशासन की एक मुख्य कड़ी के रूप में अभी भी कुशलतापूर्वक कार्य संपादन कर रहे हैं, वहीं राजस्थान में कमिश्नर का पद ही समाप्त कर दिया गया, जबकि जिला प्रशासन की बागडोर बहुत कम सेवा अनुभव वाले अधिकारियों को सौंप दी गई है । पाँच या छः वर्ष तक की वरिष्ठता के आई. ए. एस. अथवा आर. ए. एस. से नव पदोन्नत आई. ए. एस. अधिकारियों को जिलाधीश के पद पर नियुक्त करने की प्रवृति सम्भवतः भारत के सभी राज्यों में चल पड़ी है, परन्तु प्रायः इन सभी राज्यों में राजधानी व जिलों के बीच कमिश्नर के रूप में अनुभवी आई. ए. एस. अधिकारी ही कार्य कर रहे हैं । इसीलिए राजस्थान में कमिश्नर के पद से पुर्नसृजन की आवश्यकता पर विचार कर इसे

पुन: स्थापित किया गया है । इस संदर्भ में हमें इस तथ्य की ओर भी ध्यान देना पड़ेगा कि राजस्थान में राज्य प्रशासन का कुछ विशेष क्षेत्रों में '"क्षेत्रीयकरण" कर दिया गया है तथा इन नव निर्मित क्षेत्रीय स्तरों पर वरिष्ठ आई. ए. एस. अधिकारियों को कमिश्नर के समकक्ष अथवा समान पद व अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं यथा 'कमाण्ड एरिया डवलपमेंट कमिश्नर' एक बीकानेर राजस्थान नहर परियोजना के लिए) तथा दूसरा कोटा में (चम्बल परियोजना के लिए); डेजर्ट डवलपमेंट कमिश्नर (जिसका मुख्यालय जोधपुर में है) तथा ट्राहबल डवलपमेंट कमिश्नर जिसका मुख्यालय उदयपुर में है ।

1.6 निष्कर्ष

राजस्थान में प्रशासनिक परम्परा का एक लम्बा इतिहास रहा है । यह परम्परा देशी रियासतों के प्रशासनिक व्यवस्था के रूप में अभिव्यक्त हुई है । यहां कि प्रशासनिक व्यवस्था पर भौगोलिक एवं आर्थिक कारकों का भी प्रभाव रहा है, जिसकी अभिव्यक्ति यहां की प्रशासनिक व्यवस्था के स्वरूपण में दिखाई देती है ।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. राजस्थान में प्रशासनिक व्यवस्था के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख कीजिए ।
2. राजस्थान में भू–आर्थिक पारिस्थितिकी का प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रभाव का उल्लेख कीजिए ।
3. राजस्थान में प्रशासनिक विकास की व्याख्या कीजिए ।

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, चन्द्रमौलि, शर्मा अशोक एवं गोयल सुरेश: राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1990
2. महेश्वरी, एस. आर : स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1979
3. राजपूत, सरला : रोल ऑफ चीफ मिनिस्टर इन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1994
4. गहलोत, सुखवीर सिंह राजस्थान में राज्य प्रशासन, राविरा नवम्बर, 1999
5. कटारिया, सुरेन्द्र : भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2009

इकाई – 02

केन्द्र राज्य सम्बन्ध : विधायी ओर प्रशासनिक

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
2.3 विधायी सम्बन्ध
2.3.1 संघ सूची
2.3.2 राज्य सूची
2.3.3 समवर्ती सूची
2.4 प्रशासनिक सम्बन्ध
2.4.1 केन्द्र द्वारा राज्यों पर नियन्त्रण करने के तरीके
2.4.2 अन्त: राज्य सौहार्द्र
2.5 निष्कर्ष
2.6 अभ्यास प्रश्न
2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है –

- केन्द्र–राज्य के सम्बन्धों की विवेचना करना,
- केन्द्र–राज्य विधायी सम्बन्धों की व्याख्या करना,
- केन्द्र–राज्य के विधायी सम्बन्धों का विवरण प्रस्तुत करना ।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय निर्माताओं ने भारतीय संविधान को एक संघवादी स्वरूप प्रदान किया । संघवाद की मूलभूत विशेषताओं को रखते हुए भी भारतीयसंघवाद एक अनन्य संघवाद है । संघवाद के निर्माण के प्रमुखत: दो तरीके हैं । पहला, स्वतन्त्र इकाईयां आपसी समझबूझ और समझौते के द्वारा एक केन्द्र के अधीन रहना स्वीकार करें और इसके लिए संविधान में कुछ महत्त्वपूर्ण सामान्य विषयों के सन्दर्भ में कानून बनाने और इसके लिए संविधान में कुछ महत्त्वपूर्ण सामान्य विषयों के संदर्भ में कानून बनाने का अधिकार केन्द्र को सौंपे और बाकी सभी विषय राज्यों (इकाईयों) के अधिकार–क्षेत्र में रहें । इस प्रकार की व्यवस्था अमेरिका में है । दूसरा, केन्द्रीय सरकार द्वारा अपने अधीन राज्यों को अधिकतम स्वायत्तता देना है । इसके अन्तर्गत संविधान में विषय सम्बन्धी दो सूचियां होती हैं जिनमें से एक केन्द्र के अधिकार क्षेत्र में और दूसरी राज्य के अधिकार क्षेत्र में होती है तथा बचे हुए विषय केन्द्र के पास होते हैं । इस प्रकार की व्यवस्था कनाडा में हैं । भारतीय संघवाद मूल रूप से इसी प्रकार का है लेकिन इसमें आस्ट्रेलियाई संविधान की तरह समवर्ती सूची का भी प्रावधान है, जिसमें वे विषय

सम्मिलित हैं जिन पर केन्द्र एवं राज्य दोनों कानून बना सकते है। पहले प्रकार की व्यवस्था में राज्य काफी शक्तिशाली होते हैं जबकि दूसरे प्रकार की व्यवस्था में केन्द्र अधिक शक्तिशाली होता है।

2.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1919 से पहले भारतीय सरकार की संरचना में प्रान्तीय सरकारों के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की गयी थी। प्रान्तों में सरकारें अपनी सारी शक्तियां केन्द्र से प्राप्त करती थी और विधानमण्डलों की कार्यपालिकाओं का वृहत स्वरूप ही माना जाता था। 1919 के अधिनियम में भी सरकार के एकात्मक स्वरूप को ही स्वीकार किया गया और प्रान्तीय सरकारों को कुछ शक्तियां केन्द्रीय सरकार की प्रत्यायोजित शक्तियों के रूप में ही मिली। इस अधिनियम के द्‌वारा विषयों को पहली बार केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकार के मध्य बांटा गया ; लेकिन एकात्मक शासन प्रणाली के कारण यह विषय–विभाजन केवल सैद्धान्तिक था, व्यवहार में प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के अधीन थी।

1935 के अधिनियम ने प्रान्तीय सरकारों की स्थिति में एक मौलिक अन्तर ला दिया। इस अधिनियम के द्‌वारा सरकार का स्वरूप संघवादी बनाया गया, जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय सरकारें अधिक शक्तिशाली बनीं और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों की शक्तियों का स्पष्ट सीमांकन किया गया। इस अधिनियम के द्‌वारा विषयों को तीन सूचियों में बांटा गया – (1) संघीय सूची, (2) प्रान्तीय सूची और (3) समवर्ती सूची। केन्द्रीय सरकार केवल संघीय सूची में दिये गये विषयों पर कानून बना सकती थी तथा प्रान्तीय सूची में दिये गये विषयों पर कानून बनाने का अनन्य अधिकार प्रान्तीय विधानमण्डल को था। लेकिन दो या दो से अधिक प्रान्तीय विधानमण्डल प्रान्तीय सूची में दिये गये विषयों पर कानून बनाने का अनुरोध, संघीय विधानमण्डल से करें तो वह केवल उन्हीं प्राप्तों के लिए कानून बना सकती थी। इसी प्रकार गवर्नर–जनरल द्‌वारा आपातकाल घोषित किये जाने पर केन्द्रीय विधानमण्डल सारे ब्रिटिश भारत के लिए सभी विषयों पर कानून बनाने में सक्षम था। समवर्ती सूची में दिये गये विषयों पर कानून बनाने में टकराव की स्थिति समाप्त करने के लिए यह प्रावधान रखा गया कि एक ही विषय पर बनाये गये केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के कानूनों में केन्द्रीय सरकार द्‌वारा बनाये गये कानून को मान्यता दी जायेगी। अवशिष्ट शक्तियों के बारे में गवर्नर–जनरल अपने विशेषाधिकार द्‌वारा निश्चित करता था कि उनका प्रयोग करने का अधिकार केन्द्र अथवा प्रान्त में से किसे दिया जाये।

संविधान सभा में संविधान के प्रारूप पर बहस करते हुए डॉ अम्बेडकर ने संविधान के संघीय स्वरूप की जोरदार वकालत की। भारतीय संदर्भ में संघवाद को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि "यह केन्द्रीय तथा राज्य में राज्य सरकार की स्थापना कर शासन के दो स्तर स्थापित करता है जिनमें से प्रत्येक अपने क्षेत्र में संविधान द्‌वारा नियत सर्वोच्च शक्ति का उपभोग करते हैं।" भारतीय संघ न तो राज्यों के आपसी सहयोग द्‌वारा निर्मित एक संघ है और न ही राज्य, केन्द्र की स्थानीय शाखाएं हैं। संघ और राज्य, दोनों संविधान द्‌वारा निर्मित हैं और अपनी शक्ति और सत्ता संविधान से प्राप्त सकते हैं और सत्ता का संव्यवहार करने में एक दूसरे के पूरक हैं।

2.3 विधायी सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्र–राज्य सम्बन्ध विधायी सम्बन्धों में 1935 के अधिनियम में वर्णित विषयों के बंटवारे का अनुगमन किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 246 के अन्तर्गत यह

विषय तीन सूचियों में बांटे गये हैं – संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

2.3.1 संघ सूची

संविधान लागू होने के समय आरम्भ में इसमें 97 विषय थे किन्तु वर्तमान में इसमें राष्ट्रीय महत्व के 99 विषय हैं जैसे : भारत की सुरक्षा, सेना, अस्त्र–शस्त्र तथा गोला बारूद, परमाणु शक्ति, वैदेशिक सम्बन्ध, राजनयिक संधियों, संयुक्त राष्ट्र संघ, युद्ध और शान्ति, विदेशीय क्षेत्राधिकार, नागरिकता, देशीयकरण रेल राजपथ, समुद्र नौहवन और नौ–परिवहन, वायु मार्ग, डाक और तार, दूरभाष, बेतार, लोक ऋण, विदेशीय ऋण, भारतीय रिजर्व बैंक, लाटरी, विदेशीय व्यापार और वाणिज्य, अन्तर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य, बीमा, शान्ति निकेतन, बनारस तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालय, पुरातत्वीय स्थान, भारतीय सर्वेक्षण, जनगणना, संघ लोक सेवाएं, निर्वाचन आयोग संसद सदस्यों के चुनाव, भत्ते इत्यादि एवं राष्ट्रपति के चुनाव, भत्ते इत्यादि, उच्चतम न्यायालय के गठन व क्षेत्राधिकार तथा कृषि आय के अलावा अन्य आय पर कर, सीमा शुल्क निगम कर इत्यादि ।

2.3.2 राज्य सूची

वर्तमान में इसमें 62 विषय हैं । इन विषयों में प्रमुख हैं – सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस, न्याय प्रशासन, जेल, सुधारालय स्थानीय शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सालय, पुस्तकालय, सड़कें, कृषि, सिंचाई, खानें, गैस, मेले, सिनेमा, मनोरंजन कर, राज्य लोक सेवा आयोग, भू–राजस्व, राज्य में निर्मित या उत्पादित वस्तुओं के उत्पादन शुल्क, सार्वजनिक निर्माण कार्य, राज्य का लोक ऋण, विलास वस्तुओं पर कर इत्यादि । (यह सूची जग कश्मीर पर लागू नहीं है)

2.3.3 समवर्ती सूची

वर्तमान में इस सूची में राष्ट्रीय तथा स्थानीय महत्व के 52 विषय सम्मिलित हैं । इस सूची में ऐसे विषय हैं जिनके सम्बन्धित कानूनों का सारे राष्ट्र में समान होना वांछनीय तो है, लेकिन अनिवार्य नहीं, इसलिए इनको संघ तथा राज्य दोनों के क्षेत्राधिकार में रखा गया है । इन विषयों पर राज्य एवं केन्द्र दोनों कानून बना सकते हैं, किन्तु यदि उनमें विरोधाभास हो तो केन्द्र का कानून ही मान्य होगा । इसमें सम्मिलित प्रमुख विषय हैं – राज्य की सुरक्षा सम्बन्धी निवारक निरोध, विवाह एवं तलाक, कृषि भूमि को छोड़ के अन्य परिसम्पत्तियों का हस्तान्तरण, संविदाएं, दिवाला, न्यास और न्यासी, न्यायालय अवमान, पागलपन, पशुओं के प्रति निर्दयता का निवारण, खाद्य पदार्थों और अन्य वस्तुओं में अपमिश्रण, आर्थिक एवं सामाजिक योजना, वाणिज्यिकी और औद्योगिक एकाधिपत्य, श्रमिक संगठन, औद्योगिक और श्रमिक विवाद, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, श्रमिक कल्याण, शिक्षा, वन, कानूनी, चिकित्सा एवं अन्य व्यवसाय, जीवन सम्बन्धी सांख्यिकी, मूल्य नियन्त्रण, कारखाने, विद्युत, समाचार–पत्र, पुस्तकें एवं मुद्रणालय, न्यायिक मुद्रांक (स्टाम्प ड्यूटि) इत्यादि।

अवशिष्ट विषयों (जिनका उल्लेख उपरोक्त तीनों सूचियों में नहीं है) से सम्बन्धित कानून बनाने का अधिकर, कनाडा के संविधान के तरह भारत में भी केन्द्रीय सरकार को दिया गया है । 1935 के

अधिनियम में अवशिष्ट शक्तियां गवर्नर जनरल को दी गयी थीं जो अपने स्व–विवेक से उन्हें केन्द्र या प्राप्त के विधानमण्डल को सौंप सकता था ।

शक्ति वितरण की उपरोक्त व्यवस्था से स्पष्ट है कि केन्द्र को अधिक महत्व दिया गया है । भारत जैसे विशाल राष्ट्र में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं की आड़ में विध्वसंकारी शक्तियां कभी भी सिर उठा सकती हैं, जिसे रोकने के लिए केन्द्र का शक्तिशाली होना आवश्यक माना गया है । संविधान में, इसीलिए राज्य की अनन्य सूची में भी, विशेष परिस्थितियों में, केन्द्र के हस्तक्षेप का प्रावधान था जैसे कि –

1. अनुच्छेद 249 के अन्तर्गत – यदि राज्यसभा ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो–तिहाई संख्या से समर्थित प्रस्ताव द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या इष्ट कर है कि संसद राज्य सूची में सम्मिलित और उस प्रस्ताव में उल्लिखित किसी विषय के बारे में विधि बनाये तो संसद के लिए उस विषय के बारे में भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बनाना विधि संगत होगा । ऐसा प्रस्ताव एक वर्ष तक की अवधि के लिए मान्य है । एक वर्ष के अन्त में भी यदि वैसी ही असामान्य परिस्थितियों बनी रहें जैसी कि प्रस्ताव पारित करते समय थी तो संसद पुन: उसी प्रकार से प्रस्ताव पारित कर उसे एक और वर्ष तक के लिए मान्य कर सकती है । ऐसे किसी पुन: प्रस्ताव के अभाव में संसद द्वारा पारित विधि एक वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् 6 महीने के भीतर स्वत: अमान्य हो जायेगी ।
2. अनुच्छेद 250 के अन्तर्गत – संसद को, जब तक आपात काल की घोषणा लागू है, भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र के अथवा उसके किसी भाग के लिए राज्य–सूची में वर्णित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की शक्ति होगी । ऐसी विधि आपात काल की समाप्ति के 6 महीने पश्चात् तक मान्य रहेगी उसके पश्चात् वह स्वत: ही अमान्य हो जायेगी ।
3. अनुच्छेद 252 के अन्तर्गत – यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल यह निश्चित करें कि राज्य सूची में वर्णित विषयों पर संसद द्वारा निर्मित विधि वांछनीय है तो संसद ऐसी विधि बना सकती है । ऐसी विधि उन राज्यों में भी लागू हो सकती है जिनके विधान मण्डलों ने बाद में इसे स्वीकारा हो । ऐसी विधि में संशोधन की शक्ति संसद में निहित है ।
4. अनुच्छेद 253 के अन्तर्गत – संसद किसी देश के साथ की गई सन्धि करार या अभिसमय या किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन या संस्था में किये गये किसी भी निर्णय को लागू करने के लिए कानून बना सकती है, चाहे उसका विषय–राज्य सूची के अन्तर्गत ही क्यों न आता हो ।

इसके अतिरिक्त भी कम से कम दो संविधानिक उपबंध इन प्रकार के हैं जिनका उपयोग केन्द्र द्वारा राज्यों पर नियन्त्रण रखने में किया जाता है ।

प्रथम–राज्यों में जब एक विधेयक विधानमण्डल द्वारा पारित किया जाता है तो उसके कानून बनने के लिए राज्यपाल की सहमति आवश्यक है । राज्यपाल अपने पास सहमति के लिए आये विधेयक पर तीन तरह से निर्णय ले सकता हैं –

(1) वह उसे सहमति प्रदान करें;

(2) वह उसे अपनी आपत्तियों के साथ पुनर्विचार के लिए विधान मण्डल को वापिस भेज दे या

(3) वह उसे राष्ट्रपति की सहमति के लिए अपने पास रख ले ।

इस तीसरे तरीके से केन्द्रीय सरकार राज्य में विरोधी दल की सरकार पर नियन्त्रण रख सकते है । केरल शिक्षा विधेयक इसका उदाहरण है।

द्वितीय–संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति किसी राज्य विशेष के शासन को आपात कालीन शक्तियों के अन्तर्गत अपने हाथ में ले सकता है । इसके द्वारा भी केन्द्रीय सरकार राज्य के अधिकार क्षेत्र में दखल कर सकती है और करती रही है ।

2.4 प्रशासनिक सम्बन्ध

किसी भी संघवाद की सफलता के लिए केन्द्र व राज्यों के मध्य और राज्यों में आपस में सहयोग और सद्भावना आवश्यक है । हर संघीय व्यवस्था में कुछ न कुछ ताकते ऐसी होती है जो कानून द्वारा बन्धित न होने पर विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा देती हैं और राष्ट्र की एकता के लिए खतरा उत्पन्न करती हैं । केन्द्र–राज्य के विधायी सम्बन्धों में शासन विषयों के लिए खतरा उत्पन्न करती है । केन्द्र–राज्य के विधायी सम्बन्धों में शासन विषयों सम्बन्धी स्पष्ट विभाजन के बावजूद स्वच्छ और समर्थ शासन के लिए केन्द्र और राज्यों में अच्छे प्रशासनिक सम्बन्ध होना अपरिहार्य आवश्यकता है । वास्तव में संघवाद की सामर्थ्य और सफलता केन्द्र और राज्य तथा राज्यों में आपसी सहयोग और समन्वय पर आधारित है ।

प्रशासनिक दृष्टि से राज्यों व केन्द्र के मध्य सम्बन्धों से सम्बन्धित दो मत प्रचलित हैं । एक के अनुसार राज्य और केन्द्र दोनों प्रशासन के सन्दर्भ में समान शक्ति वाले हैं । दूसरे मत के अनुसार केन्द्रीय सरकार प्रशासनिक क्षेत्र में राज्यों पर नि:सन्देह निर्भर है । भारतीय संविधान निर्माताओं ने केन्द्र और राज्यों पर नि:सन्देह निर्भर है । भारतीय संविधान निर्माताओं ने केन्द्र और राज्यों के मध्य प्रशासनिक क्षेत्र में टकराव को कम करने के लिए संविधान में विस्तृत व्यवस्थाएं की हैं । यह व्यवस्थाएं भी मूल रूप से 1935 अधिनियम पर आधारित है । संविधान में अनुच्छेद 256 से 263 तक केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों की व्याख्या की गई है । इन सम्बन्धों को अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है : (1) केन्द्र द्वारा राज्यों पर नियन्त्रण रखने के तरीके तथा (2) अन्त: राज्य सौहार्द्र ।

2.4.1 केन्द्र द्वारा राज्यों पर नियन्त्रण करने के तरीके

राष्ट्र के विकास के लिए और विशेष रूप से योजनागत आर्थिक विकास को अपनाने के कारण केन्द्र या राज्यों पर नियन्त्रण आवश्यक है । आपातकाल में यह सम्पूर्ण होता है तथा साधारण समय में भी केन्द्र राज्यों पर विभिन्न तरीकों से नियन्त्रण बनाये रखने का प्रयत्न करता है –

(अ) संघ द्वारा राज्यों को निर्देश – अधिकतर संघीय संविधानों में इसकी व्यवस्था नहीं है । अमेरिका और आस्ट्रेलिया में ऐसी व्यवस्था को असंघीय माना जाता है । भारत में राज्यों का निर्देश देने का प्रावधान संविधान से विभिन्न अनुच्छेदों में किया गया है :

(i) अनुच्छेद 256 के अनुसार प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार होगा कि, जिससे संसद द्वारा निर्मित कानूनों का तथा किन्हीं वर्तमान कानूनों का, जो उस राज्य में लागू हों, पालन सुनिश्चित रहे । संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक विस्तृत होगा जो कि भारत सरकार को उसे प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों । डा. अम्बेडकर ने संविधान सभा में इस अनुच्छेद के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इसके दो आधार बताये– "पहली प्रस्तावना यह है कि समवर्ती सूची

में सम्मिलित विषयों सम्बन्धी कानूनों को, चाहे वे संसद द्वारा बनाये गये हों या राज्य विधानमण्डल द्वारा, क्रियान्विति करने की शक्ति साधारणतया राज्यों में होगी । दूसरे, यदि किसी विशेष विषय (जो समवर्ती सूची में है) सम्बन्धी कानून के बारे में संसद यह समझती है कि उसका क्रियान्वयन केन्द्रीय सरकार द्वारा हो तो संसद के पास ऐसा करवाने की शक्ति है । " इस सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने कई उदाहरणों (जैसे अस्पृश्यता उन्मूलन सम्बन्धी कानून, कारखाने सम्बन्धी कानून, बाल–विवाह उन्मूलन कानून इत्यादि) द्वारा यह बतलाने की चेष्टा की है कि ऐसे राष्ट्रीय महत्व के मामलों में केन्द्र की भूमिका ही अहम है । डा. अम्बेडकर के अनुसार, ' 'क्या यह वांछनीय है कि केन्द्रीय सरकार के कानूनों पर कोई अमल नहीं किया जाए और वे केवल कागज पर लिखी विधि मात्र ही रह जाएं? संविधान द्वारा केन्द्र को दायित्व सौंपा गया है कि वह अस्पृश्यता का उन्मूलन करें । क्या यह युक्तिसंगत होगा कि केन्द्र एक विधेयक पारित कर शान्ति से बैठ जाये और प्रतीक्षा करता रहे कि राज्य सरकार किस प्रकार उक्त विधेयक की क्रियान्विति करती है।

(ii) केन्द्र की राज्यों को निर्देश देने की उपरोक्त शक्ति के अलावा भी अनुच्छेद 257(1) में राज्यों को ऐसे कार्य करते रहने को कहा गया है जिनसे कि केन्द्र के कार्यों में हस्तक्षेप न हो । इस अनुच्छेद के अनुसार, "प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा जिससे संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन न आये या प्रतिकूल प्रभाव न पड़े तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देशों तक विस्तृत होगा जो भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हो । " केन्द्र द्वारा राज्यों को निर्देश देने कुछ विषय हैं – सामरिक या राष्ट्रीय महत्व की सड़कों तथा अन्य संचार–साधनों की देख–भाल, मरम्मत, निर्माण, राज्यों के अन्तर्गत रेल–पथ की सुरक्षा इत्यादि। इस प्रकार की व्यवस्था बनाये रखने के लिए राज्यों द्वारा किये गये अतिरिक्त व्ययों को केन्द्र सरकार द्वारा वहन करने का प्रावधान भी हैं ।

केन्द्र द्वारा राज्यों को दिये जाने वाले निर्देशों का पालन करना राज्यों के लिए बाध्यकारी है। अनुच्छेद 365 के अनुसार, "जहां इस संविधान के उपबन्धों में से किसी के अधीन संघ की कार्यपालिका–शक्ति के प्रयोग के विषय में दिये गये किन्हीं निर्देशों का अनुवर्तन करने में या उनको प्रभावी करने में कोई राज्य असफल हुआ है, वहां राष्ट्रपति के लिए यह मानना संगत होगा कि ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गयी है कि जिसमें राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुकूल नहीं चलाया जा सकता । " इसका अर्थ है कि यदि कोई राज्य केन्द्र के निर्देशों का पालन उचित ढंग से नहीं कर सके तो अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति उस राज्य में संविधानिक व्यवस्था के विफल होने की घोषणा कर राज्य की समस्त शक्ति एवं कार्यों को अपने हाथ में ले सकता है ।

1968 के केन्द्रीय कर्मचारियों की प्रस्तावित हड़ताल को विफल बनाने के लिए राष्ट्रपति द्वारा "अत्यावश्यक सेवा अध्यादेश' ' जारी कर हड़ताल को अवैध घोषित किया गया । केन्द्र ने इस सन्दर्भ में राज्य सरकारों को यह निर्देश दिये कि अध्यादेश में जारी निर्देशों के अन्तर्गत केन्द्रीय कार्यालयों और प्रतिष्ठानों की रक्षा की जाये और केन्द्रीय कर्मचारियों को हड़ताल के लिए उकसाने वाले व्यक्तियों को दण्डित किया जाये । अध्यादेश में वर्णित निर्देशों के पालन करने में केरल सरकार ने अपने स्वविवेक

के अधिकार को सुरक्षित रखते हुए सारे निर्देशों का अक्षरशः पालन करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की । तब केन्द्र सरकार ने राज्य में अपने निर्देशों का पूर्णतया पालन करवाने के लिए राज्य सरकारों को बिना सूचना दिये हुए सी. आर. पी. की कुछ टुकडियां भेज दीं और इस कार्य को संविधान के अनुच्छेद 256 व 257 का हवाला देकर सही ठहराया ।

(ब) संघीय कार्यों को राज्यों को सौंपना – अनुच्छेद 258 (1) के अनुसार, "संसद, किसी राज्य सरकार की सम्मति से, संघीय कार्यपालिका–शक्ति से सम्बन्धित किसी विषय को उस सरकार को अथवा उसके पदाधिकारियों को सशर्त या बिना शर्त सौंप सकती है ।"

अनुच्छेद 258 (2) के अनुसार, संसद को संघीय विधानों के संचालन के लिए राज्य के प्रशासन–तंत्र का प्रयोग करने की शक्ति प्राप्त है और इस प्रयोजन के लिए वह राज्य अथवा उसके पदाधिकारियों को ऐसी शक्ति सौंप सकती है जिससे कि संघीय कानूनों को उस राज्य में समुचित रूप से लागू किया जा सके। "इस प्रकार के कार्यों में राज्य सरकार के होने वाले खर्च का भार केन्द्र सरकार वहन करेगी।

सातवें संविधान संशोधन 1956 के अनुच्छेद 258 (क) जोड़ा किया जिसके अनुसार, केन्द्रीय सरकार की सम्मति से किसी राज्य का राज्यपाल केन्द्रीय सरकार को या उसके पदाधिकारियों को ऐसे किसी विषय सम्बन्धी कृत्य, जिन पर उस राज्य की कार्यपालिका–शक्ति का विस्तार है, शर्तों के साथ या बिना शर्त सौंप सकता है । " इस प्रकार कार्यों के महत्व और सुविधा को देखते हुए कार्योंके औपचारिक बंटवाने के बावजूद केन्द्र व राज्य सरकार एक दूसरे के कार्य कर सकते है। अनुच्छेद 260 के अनुसार केन्द्रीय सरकार किसी भी विदेशी भू–भाग में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका सम्बन्धी कार्यों को वहां की सरकार से समझौते द्वारा अपने हाथ में ले सकती है । ये प्रशासनिक सम्बन्ध केन्द्र राज्य के सामान्य प्रशासनिक सम्बन्धों से संचालित नहीं होते हैं ।

(स) अखिल भारतीय सेवायें – संघवाद में दो सरकारें होने के कारण सैद्धान्तिक रूप से दो अलग–अलग (एक केन्द्र के लिए व एक राज्यों के लिए) लोक सेवाओं का प्रावधान होता है । भारतीय संविधान में भी सामान्यतया केन्द्र व राज्यों के लिए अलग–अलग लोक सेवाओं का प्रावधान है । लेकिन दो विशेष सेवाएं – भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा केन्द्र व राज्य दोनों में समान रूप से कार्य करती है । इनके अलावा नई अखिल भारतीय सेवायें भी बनायी जा सकती है । अनुच्छेद 312 के अनुसार, "यदि राज्यसभा में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की कम से कम दो तिहाई संख्या द्वारा समर्पित संकल्प द्वारा यह घोषित कर दिया जाता है कि राष्ट्र हित में ऐसा करना आवश्यक या अभीष्ट है तो संसद विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए, किसी ऐसी सेवा के लिए भर्ती का तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकेगी । " इन अखिल भारतीय सेवाओं के सेवा नियम केन्द्र सरकार बनाती है तथा इसके पदाधिकारी अन्तिम रूप से केन्द्र के प्रति उत्तरदायी होते हैं । 1961 के भाषाई दंगों के समय आसाम के मुख्य सचिव एवं पुलिस महानिदेशक ने राज्य सरकार के कुछ आदेशों को इस आधार पर क्रियान्वित करवाने से मना कर दिया कि वे राष्ट्रीय नीतियों एवं संविधान के प्रतिकूल थे ।

2.4.2 अन्तः राज्य सौहार्द्र

हालांकि संघवादी प्रणाली में राज्य अपने आन्तरिक मामलों में लगभग पूर्ण स्वायत्त होता है लेकिन वह दूसरे राज्यों से बिल्कुल अलग–थलग नहीं रह सकता है । राज्यों के अन्तःसम्बन्धों में मधुरता बनाये रखने एवं विवादों के निबटारे के लिए संघीय संविधान में कुछ उपाय बताये जाते हैं । भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद इन्हीं सम्बन्धों को प्रदर्शित करते हैं।

(क) अनुच्छेद 261 के अनुसार, "भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र, संघ की और प्रत्येक राज्य की सार्वजनिक क्रियाओं, अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाहियों को पूरा विश्वास और पूरी मान्यता दी जायेगी । इन निर्दिष्ट क्रियाओं, अभिलेखों और कार्यवाहियों की सिद्धि की रीति और शर्तें तथा उनके प्रभाव का निर्धारण संसद–निर्मित विधि द्वारा उपबंधित रीति के अनुसार होगा। "इसी प्रकार इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था भी है कि भारत के किसी भी क्षेत्र में न्यायालयों द्वारा दिये गये अन्तिम निर्णय विधि अनुसार निष्पादन योग्य होंगे ।

(ख) अनुच्छेद 262 के अनुसार, "संसद विधि द्वारा, किसी अन्तःराज्यिक नदी या नदी दुध के या में, जल के प्रयोग, वितरण या नियन्त्रण के बारे में किसी विवाद या फरियाद के न्याय–निर्णय के लिए प्रबंध कर सकेगी । "चूंकि नदी के जल सम्बन्धी दूसरे संघवादों में भी अनवरत चल रहे हैं, इसलिए संविधान निर्माताओं ने इन विवादों को सुलझाने का सारा दायित्व संसद को सौंप दिया है तथा इसमें यह भी व्यवस्था है कि संसद के इन विवादों सम्बन्धी निर्णय में उच्चतम न्यायालय या अन्य कोई न्यायालय हस्तक्षेप हनी कर सकता है । इस अनुच्छेद के कारण ही भारत में बहु त सारी अन्तः राज्य नदी परियोजनाएं (जैसे दामोदर घाटी परियोजना) सफलतापूर्वक चालू की जा सकी है ।

(ग) अनुच्छेद 263 के अनुसार, "यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि ऐसी परिषद की स्थापना से लोकहित की सिद्धि होगी, जिस पर –

(क) राज्यों के बीच जो विवाद उत्पन्न हो चुके हों उनकी जांच करने और उन पर मंत्रणा देने;

(ख) कुछ या सब राज्यों के, अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों के, पारस्परिक हित से सम्बन्धित विषयों का अनुशासन और चर्चा करने; अथवा

(ग) ऐसे किसी विषय पर सिफारिश करने, और विशेषतः उन विषयों के बारे में नीति और कार्यवाही के अधिकतर अच्छे समन्वय के हेतु सिफारिश करने;

का भार हो तो राष्ट्रपति के लिए यह विधि–संगत होगा कि वह आदेश द्वारा ऐसी परिषद की स्थापना करें तथा उस परिषद् के द्वारा किये जाने वाले कर्तव्यों के स्वरूप को और उसके संगठन और प्रक्रिया को परिभाषित करें ।

अनुच्छेद 303 संसद एवं राज्य विधानमण्डल पर रोक लगाता है कि वे साधारण स्थिति में व्यापार एवं वाणिज्य सम्बन्धी ऐसा कोई कानून न बनायें जो राज्यों के आपस में या केन्द्र व राज्य के मध्य भेदभाव रखकर बनाया गया हो । यद्यपि यह इस बात की छूट देता है कि विशेष परिस्थिति में (जैसे अकाल, बाढ़ या वस्तुओं के आकस्मिक अभाव में) किसी राज्य विशेष के हित में कानून बनाया जा सके ।

अनुच्छेद 307 के अन्तर्गत संसद विधि द्वारा ऐसे प्राधिकारी की नियुक्ति कर सकती है जिसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय, वाणिज्य एवं व्यापार सुचारु रूप से हो सके ।

केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों की उपरोक्त सारी व्यवस्थाएं संविधान में वर्णित हैं लेकिन केवल संविधानिक प्रावधानों द्वारा ही इन सम्बन्धों का निरूपण नहीं किया जा सकता है, कुछ संसदीय अधिनियम भी इन सम्बन्धों को संचालित करने में सहायक सिद्व हुए हैं । 1956 के राज्यों के पुनर्गठन अधिनियम के अन्तर्गत क्षेत्रीय परिषदों का निर्माण हुआ। राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों को पाँच क्षेत्रों में बांट दिया गया :

(1) मध्य क्षेत्र – उत्तरप्रदेश एवं मध्य प्रदेश

(2) उत्तरी क्षेत्र – हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, जम्मू–कश्मीर, दिल्ली तथा हिमाचल प्रदेश

(3) पूर्वी क्षेत्र – बिहार नागालैंड, पं. बंगाल, उड़ीसा, आसाम, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा तथा अरुणाचल प्रदेश

(4) पश्चिमी क्षेत्र – महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा, दमन और दियु

(5) दक्षिण क्षेत्र – आन्ध्रप्रदेश तमिलनाडू केरल और कर्नाटक

प्रत्येक क्षेत्र में एक–एक क्षेत्रीय परिषद् स्थापित की गयी है । इसके प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं :

(अ) विकास की योजना के शीघ्र एवं सफल क्रियान्वयन के लिए एक दूसरे से सहयोग करना,

(ब) क्षेत्रीय और भाषाई प्रवृत्तियों को निरूत्साहित करने तथा देश में भावनात्मक एकता लाने का प्रयास करना,

(स) क्षेत्रीय विकास में क्षेत्रीय असन्तुलन (राजनैतिक, आर्थिक इत्यादि) को रुकने का प्रयास करना,

(द) राज्यों के सीमा सम्बन्धी विवाद, भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्या, अन्तर्राष्ट्रीय यातायात इत्यादि विषयों पर विचार करना ।

क्षेत्रीय परिषद का अध्यक्ष केन्द्रीय राह मंत्री होता है तथा उपाध्यक्ष उस क्षेत्र के किसी एक राज्य का मुख्यमंत्री होता है, जिसका कार्यकाल एक वर्ष का होता है । एक वर्ष पश्चात् क्रम से उस क्षेत्र के राज्यों के मुख्यमन्त्री उपाध्यक्ष बनते रहते हैं । इसके अलावा परिषद् में एक सदस्य योजना आयोग द्वारा अनुमोदित होता है । अन्य सदस्यों के क्षेत्र में सम्मिलित राज्यों के मुख्य सचिव व विकास कमिश्नर भी होते हैं

ये क्षेत्रीय परिषदें प्रमुख रूप से परामर्शदायी परिषदें हैं और केन्द्र तथा राज्यों के समान हितों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करती हैं । अपने अनुभवी सदस्यों एवं अनौपचारिक बहसों के कारण ये परिषदें दूसरी संस्थाओं एवं आयोगों (जैसे योजना आयोग) के लिए काफी लाभप्रद सिद्व हुई हैं ।

इन परिषदों के अलावा भी राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर कई परिषदें बनी हुई हैं तथा समान हितों के बढ़ाने के लिए समय–समय पर सम्मेलन होते रहते हैं जिनसे राजनैतिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक स्तर पर केन्द्र और राज्य के दृष्टिकोणों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता है । इनमें प्रमुख हैं –

(1) राष्ट्रीय विकास परिषद्,

(2) नदी घाटी योजनाओं के नियन्त्रण मण्डल,

(3) क्षेत्रीय विद्युत मण्डल,

(4) केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद्,

(5) स्थानीय स्वायत्त शासन की केन्द्रित

(6) कृषि मन्त्री सम्मेलन,

(7) खाद्य मन्त्री सम्मेलन,

(8) राज्य शिक्षा मंत्री सम्मेलन, इत्यादि ।

2.5 निष्कर्ष

इस प्रकार भारतीय संघवाद के विधायी और प्रशासनिक सम्बन्धों के परीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माताओं ने भारत के सांविधानिक विकास और सामाजिक. सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक वातावरण को ध्यान में रखकर संविधान में ऐसा संघीय ढांचा देने की कोशिश की है जिसमें राज्यों की विकास प्रक्रिया में राज्यों को अधिकतम स्वायत्तता मिलने के साथ–साथ केन्द्र के पास इतनी शक्तियाँ हों जिनसे विघटनकारी तत्वों को दबाया जा सके । एम. दी. पायली के अनुसार, "भारतीय संविधान द्वारा स्थापित संघीय ढांचे का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें शक्तियों के बंटवारे में कठोरता और मृदुता का अद्भुत समन्वय है ।"

2.6 अभ्यास प्रश्न

1. केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की विवेचना कीजिए ।
2. केन्द्र–राज्य विधायी सम्बन्धों का उल्लेख कीजिए ।
3. केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए ।

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम. वी. पायली, इण्डियाज कांस्टीट्युशन
2. के. सन्थानम, यूनियन स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया
3. पॉल एच. एपल्बी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया : रिपोर्ट ऑफ ए सर्वे
4. एम. वी. पायली, इण्डियाज कांस्टीट्युशन
5. राजपूत, सरला: रोल ऑफ चीफ मिनिस्टर इन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 1994
6. गहलोत, सुखवीर सिंह: राजस्थान में राज्य प्रशासन, राविरा नवम्बर, 1999
7. कटारिया, सुरेन्द्र भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2009

इकाई – 03

भारत में केन्द्र– राज्य वित्तीय सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 साधनों का विभाजन: संवैधानिक व्याख्या

3.3 वित्त आयोग

3.4 सहायता अनुदान

3.5 विभाजित होने वाले करों के संदर्भ में राज्यों के हितों का संरक्षण

3.6 आपातकाल में केन्द्र द्वारा वित्तीय नियन्त्रण

3.7 केन्द्र तथा राज्यों को ऋण लेने की शक्तियां

3.8 केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों पर योजना का प्रभाव

3.9 भारत में योजनातंत्र

3.10 राज्य योजनाओं हेतु वित्त व्यवस्था

3.11 भारतीय व्यवस्था की केन्द्रोन्मुखता

3.12 भारत में केन्द्रवाद : अशोक चंद्रा के विचार

3.13 संघ का विकृत स्वरूप : के. सन्थानम् के विचार

3.14 विचारधारा का एक दूसरा पक्ष: केन्द्र की कमजोर स्थिति

3.15 योजना के सन्दर्भ में केन्द्र–राज्य वित्तीय संबंध : कतिपय पक्ष

3.15.1 योजना–अनुदानों का आधार स्पष्ट नहीं

3.15.2 योजना अनुदानों का अप्रभावी उपयोग

3.15.3 पर्याप्त मूल्यांकन अभाव में पुनर्निवेशन प्रक्रिया की शिथिलता

3.15.4 राज्य स्तर पर सक्षम योजना तन्त्रों का अभाव

3.15.5 संघीय राजनीतिक तथा वित्तीय सम्बन्धों की परस्परिकता

3.16 निष्कर्ष

3.17 अभ्यास प्रश्न

3.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे –

- केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों का विवरण,
- संसाधनों के विभाजन की संवैधानिक व्यवस्था,
- योजना अनुदानों के विभिन्न पक्ष,
- भारत में केन्द्रवाद के बढ़ती प्रवृत्ति के बारे में ।

3.1 प्रस्तावना

संघात्मक व्यवस्था उत्तराधिकारियों तथा शक्तियों के विभाजन की व्यवस्था का नाम है । एच. के. परांजपे के शब्दों में, "संघ शासन, चाहे कैसा भी हो यह एक ऐसी स्थिति है जो केन्द्र–राज्य और अन्तर–राज्यीय सम्बन्धों में सदैव जटिलता उत्पन्न करती है फिर एक ऐसे राष्ट्र में जहां आर्थिक आयोजना को स्वीकार किये जाने के फलस्वरूप अर्थ–व्यवस्था के संचालन और विकास का एक बहुत बड़ा भाग उत्तरदायित्व राज्यों को सौंपा गया हो, यह समस्या और भी अधिक कटु और ज्वलंत बन जाती है । फलत: यह स्थिति केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में अनेक नये एवं अतिरिक्त आयाम जोड़ती है।

3.2 साधनों का विभाजन : संवैधानिक व्याख्या

संविधान में वर्णित उत्तरदायित्वों का निर्वाह, केन्द्र तथा राज्य तभी भली–भांति कर सकते हैं जब उन्हें तुलनात्मक रूप से पर्याप्त वित्तीय साधन सुलभ हों । किन्तु संघीय समस्याओं में से वित्तीय सम्बन्धों की समस्या सर्वाधिक कठिन समस्या है । परिणामस्वरूप उत्तरदायित्वों के अनुपात में केन्द्र तथा राज्यों को समुचित वित्तीय साधन सुलभ करवा सकने के संवैधानिक प्रयासों की प्रक्रिया स्वभावतः जटिल रहती है ।

हमारे संविधान के अन्य पक्षों की भांति ही केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों का स्वरूप भी भारत सरकार अधिनियम, 1935 से प्रभावित है; इस संदर्भ में हमारे संविधान की यह विशेषता रही है कि वित्तीय साधनों को पूर्णत: विभक्त कर देने की अपेक्षा, संघ की दोनों इकाईयों केन्द्र तथा राज्यों के मध्य यथा आवश्यकता तथा यथासंभव समान रूप से विभाजित करने का प्रयास किया गया है । यही नहीं, इस दिशा में एक सीमा तक, स्वतन्त्र भारत के संविधान निर्माताओं ने 1935 अधिनियम की न्यूनताओं–प्रान्तीय सरकारों के हिस्से में अति अल्प राजस्व सुलभता को दूर करने का प्रयास किया है । किसी भी संघात्मक संविधान में केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों की इतनी विस्तृत व्याख्या नहीं मिलती । इसके अतिरिक्त, संघीय व्यवस्थाओं में, वित्तीय साधनों के वितरण की कठिन समस्याओं को लेकर होने वाले विवादों के सन्दर्भ में वित्त आयोग जैसी संस्था का संवैधानिक प्रावधान भी हमारे संविधान की एक उल्लेखनीय व्यवस्था है ।

वित्तीय साधनों के विभाजन की हमारी संवैधानिक व्यवस्था को पार भागों में विभक्त कर देखा जा सकता है:

1. आय के वे स्रोत जिनके सन्दर्भ में करारोपण की शक्ति, कर–एकत्रण का दायित्व तथा प्राप्त आय के प्रयोग का सम्पूर्ण अधिकार केन्द्र को प्राप्त होता है ।
2. आय के वे स्रोत जिनके सन्दर्भ में करारोपण की शक्ति तथा कर एकत्रण का दायित्व तो केन्द्र का होता है किन्तु प्राप्त राजस्व के उपयोग में राज्य भी भागीदार होते हैं ।
3. आय के वे स्रोत जिनके सन्दर्भ में करारोपण की शक्ति तथा कर एकत्रण का दायित्व तो केन्द्र का होता है किन्तु प्राप्त सम्पूर्ण आय के अधिकारी राज्य ही होते हैं ।
4. आय के वे स्रोत जिनके करारोपण की शक्तियां ही केन्द्र के पास होती हैं । कर एकत्रण का दायित्व तथा एकत्रित धनराशि के उपयोग के अधिकार राज्यों के पास होते हैं ।
5. आय के वे स्रोत जिनके सन्दर्भ में करारोपण की शक्तियां, कर एकत्रित करने का दायित्व तथा प्राप्त राशि के उपयोग के सम्पूर्ण अधिकार राज्यों को प्राप्त है ।

वित्तीय साधनों के विभाजन की इस प्रणाली की अपनी उपयोगिता है । कनाडा तथा आस्ट्रेलिया की संघीय व्यवस्थाओं में वित्तीय सम्बन्ध अनिश्चय तथा शंका के कारण बने हैं । इसका मूल कारण वहां, आय के एक ही स्रोत पर दोनों इकाईयों–केन्द्र तथा राज्य–द्वारा करारोपण का संवैधानिक अधिकार रहा है । इस सन्दर्भ में, वित्तीय साधनों की विभाजन समस्या का अमेरिकी स्वरूप भी इन्हीं कारणों से समस्याग्रस्त रहा है ।

इसीलिए वित्तीय सम्बन्धों का दूसरा स्वरूप–साधनों के विभाजन की विधि को भारतीय संविधान ने अपनाया किन्तु इसकी भी अपनी पृथक कठिनाइयां है । क्या केन्द्र व राज्यों को अपनी आवश्यकतानुसार वित्तीय

केन्द्र तथा राज्य सरकारों के वित्तीय क्षेत्राधिकार सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान

संघ द्वारा लगाये जाने, एकत्रित किए जाने तथा उपभोग किए जाने वाले कर एवं शुल्क	संघ द्वारा लगाये जाने, एकत्रित किये जाने किन्तु राज्यों के साथ उपभोग में सामूहिक भागीदारी वाले कर	संघ द्वारा लगाये जाने तथा एकत्रित किए जाने किन्तु पूर्णतराज्यों को : दे दिए जानेवाले कर	संघ द्वारा लगाये गये किन्तु राज्यों द्वारा एकत्रित तथा विनियोजित किए जाने वाले कर	राज्यों द्वारा लगाये जाने, एकत्रित किए जाने तथा विनियोजित किए जाने वाले कर
1. रेलवे 2. डाकतार –, टेलीफोन, बेतार का तार प्रसारण तथा संचार के अन्य माध्यम 3. सीमा शुल्क 4. निगम कर 5. पूंजी तथा कम्पनियों पर कर 6. शुल्क एवं करों पर अधिकार	1. कृषि के अतिरिक्त आय पर आयकर 2. 5 व 4 श्रेणी के इंगित अतिरिक्त आबकारी शुल्क	1. उत्तराधिकारी तथा सम्पत्ति शुल्ककृषि भूमि – के अतिरिक्त सम्पत्ति के सन्दर्भमें – 2. रेल, जहाज तथा वायुयानों द्वारा लाये गये सामानों तथा यात्रियों पर सीमावर्ती कर	1. कुछ स्टाम्प शुल्क 2. दवाइयों तथा प्रसाधन सामग्रियों पर आयकर शुल्क	1. कृषिभूमि – तथा कृषि आय पर कर 2. मानवीय उपभोग हेतु नशीले पेय पदार्थों, भारतीय गांजे तथा अन्य संवेदन मंदक दवाओं पर आबकारी शुल्क 3. दवाइयों के क्रयविक्रय पर – कर

जिनके केन्द्र तथा राज्य भागीदार होते हैं अथवा जो राज्यों को दे दिए जाते हैं ।				

- केवल प्रमुख आय स्त्रोतों को ही यहां संयुक्त किया गया है ।

साधन सुलभ हैं, इस प्रश्न के निर्धारण हेतु एक जटिल व्यवस्था की स्थापना करनी होती है ।

इस प्रकार पूर्वलिखित आय की द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणियों से प्राप्त राजस्व, जिसका कि विभाजन केन्द्र तथा राज्यों के मध्य किया जाता है, की संवैधानिक व्याख्या अनुच्छेद 269 में की गई है । केन्द्र–राज्य वित्त सम्बन्धों का यह पक्ष जहां सामयिक एवं सांदर्भिक लोचशीलता लाने का माध्यम है वहीं जटिलता का कारण भी है । प्राप्त आय के विभाजन की समस्या के हल का दायित्व एक संवैधानिक संस्था वित्त आयोग पर है ।

3.3 वित्त आयोग

वित्त आयोग की स्थापना का प्रावधान हमारी संघीय व्यवस्था की मौलिक उपलब्धि है । संविधान के अनुच्छेद 280 तथा 281 व में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । एम. वी. पायली के शब्दों में, "इन उपबन्धों के अनुसार राष्ट्रपति संविधान लागू होने के दो वर्षों के अन्दर और उसके प्रति पांच वर्ष बाद अथवा जब वह आवश्यक समझे वित्त आयोग की स्थापना कर सकता है । आयोग में एक सभापति तथा चार अन्य सदस्य होंगे जिन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करेगा । नियत समयोपरांत पदाधिकारियों की नियुक्ति होने से आयोग के कार्यों में निरन्तरता आ जाती है । प्रत्येक आयोग अपने पूर्ववर्ती आयोग के कार्यों से लाभ उठाता है ।"

संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत आयोग के अध्यक्ष में सार्वजनिक मामलों का अनुभव अपेक्षित है । अध्यक्ष के अतिरिक्त अन्य चार सदस्य निम्नलिखित योग्यताओं वाले होते हैं –

1. उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अथवा समकक्ष योग्यता रखने वाला व्यक्ति ।
2. सरकार के वित्त तथा लेखा सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान रखने वाला व्यक्ति ।
3. वित्तीय तथा प्रशासनिक मामलों में विस्तृत अनुभव रखने वाला व्यक्ति ।
4. अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ ।

दुर्गादास बसु ने वित्त आयोग के निम्नलिखित तीन संवैधानिक कार्यों का उल्लेख किया है:

1. संघ तथा राज्यों के बीच में उन करों की शुद्ध प्राप्तियों के वितरण के सम्बन्ध में, जो संघ तथा राज्यों के मध्य विभाजित होते हैं अथवा होंगे और राज्यों के बीच ऐसे करों की प्राप्ति के उस अंश के वितरण के बारे में जो राज्यों को प्राप्त हों, सिफारिश करना ।
2. भारत की संचित निधि में से राज्यों को राजस्व सहायता–अनुदान देने के किन सिद्धान्तों पर चला जाय यह निश्चित करना तथा सिफारिश करना ।

3. इन दो मामलों के अतिरिक्त जो भी विषय राष्ट्रपति सुव्यवस्थित वित्त व्यवस्था के हितों में आयोग को सौंपे, उस पर विचार कर सिफारिश करना ।

3.4 सहायता अनुदान

राज्यों को उनके वित्तीय अंश दे देने के बाद भी सम्भव है उन्हें साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हुए हों । इस कमी को पूरा करने हेतु संवैधानिक व्यवस्था है कि संसद उन राज्यों को अनुदान सहायता सुलभ करावें जिन्हें वह सहायता की आवश्यकता में अनुभव करती हो ।

3.5 विभाजित होने वाले करों के संदर्भ में राज्यों के हितों का संरक्षण

अनुच्छेद 274 के अनुसार, संसद में बिना राष्ट्रपति की अनुमति के निम्नलिखित प्रकृति का कोई बिल अथवा संशोधन प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता –

(अ) जो राज्यों की रूचि के कर अथवा शुल्क की दर में अन्तर लावें ।

(ब) जो वितरण–योग्य धन के पूर्ववर्ती संवैधानिक सिद्धान्तों को प्रभावित कर दें, अथवा

(स) जो केन्द्र के लिए ऐसे ही किसी कर अथवा शुल्क पर अधिकार भारित कर दें ।

3.6 आपातकाल में केन्द्र द्वारा वित्तीय नियन्त्रण

संघ व राज्यों के मध्य सम्बन्धों की जो नीति विधायी तथा प्रशासकीय क्षेत्र में है, वही वित्तीय मामलों में भी है और इस प्रकार केन्द्र राज्य के मध्य जो सामान्य सम्बन्ध होते हैं (अनुच्छेद 268–279 के अनुसार) वे आपातकाल की प्रकृति के अनुसार बदल जाते हैं । इस प्रकार :

(अ) जब कभी भी आपातकालीन स्थिति (अनुच्छेद 352) लागू की गई हो राष्ट्रपति अपने आदेशों द्वारा निर्देश दे सकता है कि ऐसी अवधि के लिए जो वित्तीय वर्ष के समाप्ति काल में ही हों, जिसमें कि घोषणा लागू नहीं होती, केन्द्र तथा राज्यों के बीच में करों के बंटवारे और सहायता अनुदान सम्बन्धी सम्पूर्ण अथवा कोई भी प्रावधान स्थगित कर दिया जायेगा। (अनुच्छेद 354) परिणामस्वरूप, यदि राष्ट्रपति द्वारा ऐसा कोई आदेश पारित किया गया हो तो राज्यों को बिना केन्द्र द्वारा दिये योगदान में वृद्धि किये राज्य–सूची के अन्तर्गत वर्णित उसके राजस्व में सीमित साधनों पर ही निर्भर रहना होगा,

(ब) जब राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360) की घोषणा की जाय तो केन्द्र राज्यों को निम्नलिखित निर्देश देने में सक्षम होगा.

(i) वित्तीय औचित्य एवं अन्य संरक्षण सम्बन्धी नियमों का पालन करना जैसे कि निर्देशों में स्पष्ट किये हों ।

(ii) उन सभी व्यक्तियों के वेतन एवं भत्तों में कमी करना, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों सहित, जो राज्य के मामलों के सम्बन्ध में सेवारत हों ।

(iii) राज्य विधानसभा द्वारा पारित होने पर सभी धन एवं वित्त विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखना (अनुच्छेद 360)।

3.7 केन्द्र तथा राज्यों को ऋण लेने की शक्तियां

देश में अथवा बाहर राजस्व सुरक्षा के लिए संघ के पास ऋण लेने की अपरिमित शक्तियां होंगी । संघीय कार्यपालिका इस शक्ति का प्रयोग केवल उस सीमा तक करेगी जो संसद द्वारा समय–समय पर निर्धारित की गई हो (अनुच्छेद 292)।

राज्य की ऋण लेने की शक्ति फिर भी अनेक संवैधानिक सीमाओं से प्रतिबन्धित होगी

(1) राज्य भारत के बाहर से ऋण नहीं ले सकते। 1935 के अधिनियमान्तर्गत राज्यों को केन्द्र की अनुमति से देश के बाहर से भी ऋण लेने की शक्ति प्राप्त थी परन्तु वर्तमान संविधान में राज्यों को इस शक्ति से पूर्णत: वंचित रखा गया है, केवल केन्द्र को ही यह अधिकार है कि ऋण लेने के मामलों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार में प्रवेश करे ।

(2) राज्य कार्यपालिका को राजस्व सुरक्षा हेतु, भारत की भौगोलिक सीमाओं के अन्दर ही ऋण लेने की शक्तियां होंगी, बशर्ते कि निम्नलिखित बातें पूरी हों :

(अ) राज्य विधायिका द्वारा निर्धारित सीमाएं ।

(ब) यदि केन्द्र ने राज्य के बकाया कर्ज की गारण्टी दी हो तो राज्य कोई भी नया कर्ज बिना केन्द्र सरकार की अनुमति से नहीं ले सकता ।

(स) संसद के एक कानून के अन्तर्गत भारत सरकार स्वत: ही राज्य को ऋण देने में पहल कर सकेगी । जब तक इस तरह का ऋण अथवा उसका कोई भाग भी बकाया हो भारत सरकार की अनुमति के बिना राज्य कोई भी नया ऋण नहीं ले सकता । भारत सरकार अपनी अनुमति देने में शर्तें लागू कर सकती है (अनुच्छेद 293) ।

इस प्रकार भारतीय संविधान में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों का सैद्धान्तिक पक्ष स्पष्ट किया गया है । अनेक समालोचकों ने सम्बन्धों के औपचारिक पक्ष पर ही असन्तोष प्रकट किया है । अनेक समालोचकों ने सम्बन्धों के औपचारिक पक्ष पर ही असन्तोष प्रकट किया है । सम्बन्धों का व्यावहारिक पक्ष तो अत्यधिक चर्चा एवं विवाद का विषय रहा है तथा बनता जा रहा है । प्रस्तुत लेख के अगले भाग में केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों का योजना के प्रभावों के विशेष परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जायेगा ।

3.8 केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों पर का प्रभाव

आर्थिक नियोजन की तकनीक सर्वाधिकारवादी अर्थव्यवस्थाओं की देन है । अर्थव्यवस्था को इससे सुनिश्चित एवं निर्णायक स्वरूप मिलता है । प्रजातान्त्रिक समाजवाद की ओर उन्मुख विकासशील अर्थव्यवस्थाएं जब अपने तीव्रतर विकास हेतु "नियोजन तकनीक" को अपनाती है तो इसका उनके समूचे शासनतन्त्र पर व्यापक प्रभाव पड़ना अनिवार्य होता है । समग्र सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की सिद्धि से प्रेरित होकर योजना का प्रारम्भ चाहे केन्द्रीयकरण से करे योजनात्मक प्रभावों को प्रत्येक संघीय इकाई हेतु वरदान का स्तर प्राप्त होना अनिवार्य है । परिवर्तित भारतीय सन्दर्भ में देखा जा सकता है कि योजना का मूल उद्देश्य केन्द्र के निर्णयों एवं नीतियों को थोपना नहीं वरन् इकाइयों की समान विकास–क्रिया को स्थाई बनाना है । आगामी युग में केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध इसी सन्दर्भ में सकारात्मक दिशा में विकसित हो सकेंगे।

3.9 भारत में योजनातंत्र

स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान से ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं का नियोजित अर्थतन्त्र की ओर रूझान स्पष्ट रहा हैं । पण्डित नेहरू तो रूवी नियोजन तन्त्र से अत्यधिक प्रभावित थे । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व नियोजक के कुछ सीमित किन्तु उल्लेखनीय प्रयास किये गये । ब्रितानी शासन की समाप्ति के तुरन्त बाद तो, लम्बे उपनिवेशवादी शोषण के फल स्वरूप जर्जर अर्थव्यवस्था के पुर्नजीवन हेतु, नियोजित आर्थिक विकास के माध्यम को स्वीकृति दे दी गई । संवैधानिक रूप से नियोजन समवर्ती सूची का विषय है ।

15 मार्च, 1950 को योजना निर्माण हेतु दैनिक प्रशासकीय मामलों से पूर्णत: स्वतन्त्र एक परामर्शदात्री निकाय के रूप में योजना आयोग का एक गैर संवैधानिक संस्था के रूप में गठन किया गया । इस आयोग से यह अपेक्षा की गई है कि वह राष्ट्र के उपलब्ध साधनों के विकास एवं उनके श्रेष्ठ आवंटन का कार्य करेगा तथा इस प्रक्रिया में मौलिक अधिकारों एवं नीति–निर्देशक तत्त्वों के प्रकाश में अपने कार्यों का समायोजन करेगा । संक्षेप में राष्ट्रीय योजना निर्माण एवं मूल्यांकन का दायित्व आयोग को सौंपा गया; योजना निष्पादन का सम्पूर्ण पक्ष इससे पृथक ही रखा गया ।

राष्ट्र की मूलभूत प्राथमिकताओं का निर्धारण तथा निर्धारित लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध साधनों का विनियोजन, सम्यक् नियोजन हेतु आवश्यक होता है । इस प्रकार भारत जैसे विशाल राष्ट्र की एक सम्पूर्ण योजना बनाते समय केन्द्र तथा राज्य के दायित्वों की संवैधानिक पृथकता का, बाधा के रूप में उपस्थित होना अवश्यम्भावी था ।

इस दुविधापूर्ण स्थिति को दर्शाते हुए एच. के. परांजपे ने ठीक ही कहा है, "सामाजिक और आर्थिक आयोजनों को भारतीय संविधान की समवर्ती सूची में सम्मिलित किया गया है, किन्तु योजना से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण विषय कुल मिलाकर केन्द्र व राज्य की दोनों सूचियों में देखे जा सकते हैं । "विकास हेतु योजना की आवश्यकता तथा समूचे राष्ट्र के लिए एक योजना बनाने के प्रयास में संविधान द्वारा खींची गई सीमा रेखाएं लाघें जाने की आवश्यकता जी. रामचन्द्रन ने भी व्यक्त की है । मूल समस्या यह है कि ' 'इस प्रकार की योजनाएं किस प्रकार बनाई जायें तथा उनकी क्रियान्विति किस प्रकार की जाये कि वे राष्ट्रीय योजनाएं रह सकें तथा साथ ही राज्यों की योजनाओं को भी समन्वित कर सकें । इतना ही नहीं, इन उद्देश्यों की प्राप्ति एक ऐसी जनतान्त्रिक व्यवस्था के माध्यम से करनी होगी जिसमें विभिन्न दल (केन्द्र व राज्यों में) अलग–अलग समय में सत्ता में आते–जाते रहते हैं ।

यहां प्रश्न यह उठता है कि राष्ट्रीय विकास की आयोजना व्यवस्था में आवश्यक निरन्तरता को उस समय किस प्रकार जीवित रखा जावे जबकि केन्द्र एवं राज्यों में अलग–अलग दलों कि, विरोधी नीतियां रखने वाली सरकारें सत्तारूढ़ हों और वे एक दूसरे पर आक्षेप–प्रत्याक्षेप लगाकर एक दूसरे को कमजोर बनाने में जुटी हों ।

सम्भवत: इन्हीं प्रश्नों के सन्दर्भ तथा विशेषतः संघात्मक व्यवस्था होने के फलस्वरूप कोई भी हल राज्यों की समान भागीदारी बिना, हमारी संवैधानिक व्यवस्था में औपचारिक तथा व्यावहारिक रूप से स्वीकार नहीं हो सकता । इसीलिए योजना आयोग की सिफारिश पर राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन पर्याप्त उपयोगी कदम था । इस प्रकार राष्ट्र के सर्वोच्च राजनैतिक विचार मण्डल के रूप में अगस्त, 1952 में राष्ट्रीय विकास परिषद् का गठन कर दिया गया । अपने संगठनात्मक स्वरूप

में यह एक संघात्मक संस्था है । योजना निर्माण से पूर्व, योजना निरूपण हेतु योजना निर्माण को आवश्यक दिशा–निर्देश तथा योजना प्रारूप को अन्तिम स्वरूप देने से पूर्व संस्था द्वारा व्यापक विचार–विमर्श योजना प्रशासन की समूची प्रक्रिया में राज्यों को पर्याप्त भागीदारी का अवसर प्रदान कर देता है ।

संघात्मक एवं प्रजातान्त्रिक योजना निर्माण की प्रक्रिया में केवल केन्द्र–स्तरीय संस्था की स्थापना ही पर्याप्त नहीं होती, राज्य–स्तरीय तथा स्थानीय योजना निकायों का भी विशेष महत्व होता है, किन्तु इस दिशा में राज्यों ने विशेष रूप से योजनाकाल के आरम्भ में कोई रूचि नहीं दिखाई । योजना आयोग के पर्याप्त आग्रह के बावजूद भी राज्य सरकारें इस सन्दर्भ में उपेक्षा ही बरतती रहीं । प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा भी संगठन के रूप में योजना आयोग के अनुरूप राज्य–स्तरीय नियोजन मण्डलों के गठन की सिफारिश की गई । वर्तमान में प्राय: सभी राज्यों ने नियोजन मण्डलों का गठन कर लिया है ।

राष्ट्रीय नियोजन तन्त्र के संरचनात्मक स्वरूप के सन्दर्भ में योजना आयोग द्वारा गठित आयोजन सलाहकार संस्था की पर्याप्त महत्वपूर्ण है । यह राज्यों से योजना निर्माण प्रक्रिया में सतत् सम्पर्क बनाये रखने का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण कार्य करती है ।

3.10 राज्य योजनाओं हेतु वित्त व्यवस्था

यह एक सर्व–स्वीकृत सत्य है कि राज्यों के पास अपने दायित्वों की तुलना में वित्तीय साधनों की उपलब्धता बहुत कम है । राज्यों द्वारा अतिरिक्त वित्तीय साधन जुटाने की आवश्यकता पर बल देते हुए जी रामचन्द्रन का यह कथन, "भारतीय संघ के ढांचे में राज्यों को जो स्थिति प्राप्त है, उसमें इनके लिए किसी विशेष तर्क की आवश्यकता नहीं । राज्यों के पास अपने उत्तरदायित्वों के अनुपात में वित्तीय साधन–स्रोत भी होने चाहिए" उल्लेखनीय है । समूचे विवाद का यही मूल कारण है । राज्यों के सीमित वित्तीय साधनों तथा उनकी विकास योजनाओं हेतु विपुल धनराशि की आवश्यकता एवं इन दोनों के मध्य बढ़ता हुआ अन्तर तथा इस खाई को सीमित कर देने के योजना आयोग द्वारा किये गये प्रयास, योजनाकाल के आरम्भ से ही पर्याप्त आलोचना–प्रत्यालोचना का विषय रहे हैं ।

जिस गति से राज्यों की वित्तीय आवश्यकता तथा दायित्वों में वृद्धि हो रही है, संभवतः: केन्द्र द्वारा भी उसे पूरा कर पाना, निकट भविष्य में ही अति–कठिन हो जायेगा ।

उन परिस्थितियों में जबकि राज्यों की प्रमुख समस्या वित्तीय साधन जुटाने की हो तथा जबकि उनके अपने आय–स्रोतों से प्राप्त आय राजस्व तथा वित्त आयोग की सिफारिशों द्वारा सुलभ होने वाला राजस्व भी उनकी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता हो तो योजना अनुदानों के रूप में मिलने वाली केन्द्रीय सहायता ही उनके लिए एक मात्र साधन रह जाता है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विगत योजना काल के 26 वर्षों में, योजना अनुदानों के रूप में राज्यों को केन्द्र द्वारा दी जाने वाली सहायता व्यापक चर्चा का विषय रही है ।

3.11 भारतीय व्यवस्था की केन्द्रोन्मुखता

वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर मिलने वाले वित्त अनुदानों की तुलना में योजना अनुदानों के बढ़ते मात्रात्मक पक्ष के प्रति चिन्ता प्रकट करते हुए जी. रामचन्द्रन का यह मत – "तीसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में राज्यों को 7314 करोड़ रुपयों का राजस्व मिला है उनमें से अनुच्छेद

275 के अन्तर्गत वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार मिलने वाला अनुदान केवल 4.9 प्रतिशत ही था", भारतीय संघात्मक वित्त व्यवस्था की विकासशील प्रवृत्ति की ओर बहुत सटीक संकेत है । इस विकास प्रवृत्ति के प्रभाव पर टिप्पणी करते हुए उनका यह मत, "केन्द्र को इन स्वविवेकी अनुदानों पर राज्यों की बढ़ती हुई निर्भरता ने एक ऐसी स्थिति को जन्म दिया है जिससे केन्द्र व राज्यों के मध्य कार्यों का संवैधानिक विभाजन निरर्थक सा बनता जा रहा है", संभवतः हमारी संघात्मक व्यवस्था के एक दुखते स्थल की ओर संकेत है ।

3.12 भारत में केन्द्रवाद: अशोक चंद्रा विचार

भारतीय संघात्मक व्यवस्था में तीव्र केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के विकास का आरोप लगाने वाले विचारक मानते हैं कि बलपूर्वक राज्य की प्राथमिकताओं को बदलने का केन्द्रीय प्रयास, योजना आयोग के माध्यम से निरन्तर गति पाता रहा है । संभवतः अशोक चन्द्रा, नेहरू के इस विचार से सहमत नहीं लगते कि योजना आयोग ने, "एक जरूरी कार्य का सम्पादन किया है, इसके बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते थे । हमारी संरचना संघात्मक है और इसने (योजना आयोग ने) विभिन्न राज्यों को एक साथ लाने तथा उनके लिए समाकलित नियोजन (Integrated Planning) करने का कार्य किया है । यदि यह (योजना आयोग) नहीं होता तो केन्द्र सरकार अपना कार्य नहीं कर सकती थी, तथा तुरन्त ही कठिनाइयां उत्पन्न हो जातीं कि केन्द्र सरकार ने राज्यों के अधिकारों पर अतिक्रमण किया है । मैं पुन: कहता हूं कि राज्य (राज्य आयोग) एक परामर्शदात्री निकाय है और राज्य तथा केन्द्र इससे सम्पर्क में करते हैं एवं विचार विमर्श भी । राज्यों के सन्दर्भ में इसके द्वारा कही गई प्रत्येक बात सोच विचार कर तथा राज्यों के साथ हुए समझौते का परिणाम है ।"

इसके ठीक विपरीत अशोक चन्दा की तो स्पष्ट मान्यता है कि अतिप्रभावशाली राजनैतिक व्यक्तियों से युक्त हो कर भी योजना आयोग से मात्र यह अपेक्षा करना कि वह एक निष्क्रिय सलाहकारी भूमिका से ही सन्तुष्ट हो जायेगा, अव्यावहारिक है । "क्रमश: प्रधानमन्त्री के प्रोत्साहन व समर्थन द्वारा आयोग एक उच्च आर्थिक मन्त्रिमण्डल के रूप में उभरा, यहां तक कि उसने संवैधानिक वित्त आयोग की सत्ता को अस्वीकार कर दिया।"

राज्यों को योजना प्रशासन में सहयोगी बनाने हेतु राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना की गई किन्तु यह भी विचार–विनिमय की संस्था न रह कर योजना आयोग पर हावी होने का प्रयास करने लगीं पण्डित नेहरू के राजनैतिक जीवनीकार माइकेल ब्रेचर ने राष्ट्रीय विकास परिषद् के सन्दर्भ में मत व्यक्त किया: "यह निर्देश तैयार करती है, जिन्हें केबिनेट निरपराद रूप से स्वीकृति देती है । अपने उद्भव से ही राष्ट्रीय विकास परिषद् और इसकी स्थायी समिति (Standing Committee) ने योजना आयोग को कार्यत: निरापद कर केवल एक शोध–भुजा (Research–arm) के रूप में ला दिया है।"

विगत वर्षों के केन्द्रीय व्ययों की एक विशिष्ट प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए अशोक चन्दा ने अनुभव किया कि केन्द्र व्यय के अन्तर्गत केन्द्र–सूची की तुलना में राज्य सूची पर अधिक व्यय किया गया है । इस प्रकार के व्यय के प्रति, पश्चिमी बंगाल सरकार का यह विचार था कि केन्द्रीय। सहायता का कोई ऐसा प्रतिमान निर्धारित करना अनावश्यक व अवांछनीय है जो किसी राज्य में वहाँ की सरकार द्वारा निर्धारित प्राथमिकता क्रम में स्थान पाने वाली योजनाओं में रूचि रखता हो और उसे वहाँ स्थान दिलाने के लिए इस सहायता को एक माध्यम बनाता हो । अपने तर्क के समर्थन में

अशोक चन्दा ने तीसरे वित्त आयोग (1961) द्वारा दिये गये इस सुझाव की ओर ध्यान आकृष्ट किया : "केन्द्र द्वारा प्रदान किये गये प्रतिबन्धित–अनुदानों (Conditional Grants) व वित्तीय सहायता द्वारा राज्यों को उन कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने के लिए बाध्य नहीं किया जाये जिन्हें वे अपनी अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में महत्वहीन तथा अपने वातावरण के प्रतिकूल समझते हैं । "

इस प्रकार अशोक चन्दा ने तो, "सामाजिक व आर्थिक सेवाओं के विषय में योजना आयोग व राज्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न हुआ है, कहते हुए राज्यों के पक्ष का समर्थन इस प्रकार खुले तथा स्पष्ट शब्दों में किया है । अत: राज्यों का यह अनुभव करना अस्वाभाविक नहीं है कि इन राष्ट्रीय योजनाओं द्वारा उनकी (राज्यों की) स्वायत्तता पर कुठाराघात पहुंचाया जा रहा है, जिनको स्वरूप देने में उनका हाथ नगण्य अथवा बिल्कुल नहीं है । "संक्षेप में अशोक चन्दा ने इस मत में आस्था प्रकट की है कि योजना ने भारत में प्रजातन्त्र तथा संघवाद दोनों को मात दे दी है ।

3.13 संघ का विकृत स्वरूप: के. सन्थानम् के विचार

योजना अनुदानों के बढ़ते मात्रात्मक पक्ष तथा इससे राज्यों की कार्यात्मक स्वायत्तता पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर सन्थानम् ने निर्विवाद रूप से संकेत किया है । परोक्ष रूप से इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप राज्यों ने अपने साधनों के विकास करने का भी कोई प्रयास नहीं किया । प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में राज्यों से अपेक्षा थी कि वे अतिरिक्त 230.3 करोड़ रुपये जुटायेंगे, किन्तु यह राशि केवल 84.4 करोड़ तक ही बढ़ पायी । नये करारोपण की प्रवृत्ति का राज्य विधानसभाओं में स्वागत नहीं किया गया ।

सन्थानम् ने यह भी अनुभव किया है कि योजना क्रियान्वयन के पक्ष पर भी पर्याप्त बल नहीं दिया गया । सम्पूर्ण लक्ष्य, मात्र प्राप्त धन के विनियोजन को ही मान लिया गया । एक उपयुक्त उदाहरण देते हुए शिक्षा के क्षेत्र में बिहार तथा उत्तरप्रदेश में योजना निष्पादन के कमजोर पक्षों की सन्थानम् ने चर्चा की है जहां कि शत–प्रतिशत व्यय कर देने के आधार पर ही योजना लक्ष्य प्राप्त कर लेने के दावे प्रस्तुत किये गये जबकि छात्रों अथवा स्कूलों के संदर्भ में कोई प्रगति नहीं की जा सकी । सन्थानम् के आरोप में एक अन्तर्निहित पक्ष यह भी छिपा था कि राज्यों के सन्दर्भ में अवास्तविक तथा लादी गयी प्राथमिकताओं के आधार पर केन्द्रीय योजनाओं का बनना शायद इसका मूल कारण है ।

थोपी गई प्राथमिकताओं तथा अवास्तविक योजनाओं के निर्माण के पीछे एक कारण योजना निरूपण की प्रक्रिया पर अतिराजनैतिक प्रभाव भी रहे हैं । सन्थानम् ने ऐसे ही प्रभावों की ओर संकेत करते हुए आसाम के तेलशोधक कारखाने को स्थापित करने के स्थान के सन्दर्भ में हुई राजनैतिक रस्सा–खींच तथा अन्ततोगत्वा विशेषज्ञों के परामर्श की अवहेलना करते हुए राजनैतिक शक्तियों के निर्णय पर निर्णायक प्रभाव का उल्लेख किया है । इस प्रसंग के हवाले से सन्थानम् ने चुटकी लेते हुए कहा है कि स्वायत्तता छिन जाने के रूप में जो मूल्य राज्यों ने चुकाया है उसके बदले योजना प्रक्रिया में अति–राजनैतिक प्रभावों के परिणामस्वरूप केन्द्र को इतना मूल्य तो चुकाना ही होगा । किन्तु इसके वर्तमान एवं दूरगामी प्रभावों–परिणामों को भी तो अनदेखा नहीं किया जा सकता ।

केन्द्र–राज्य वित्त सम्बन्धों के संवैधानिक स्वरूप पर योजना के मात्रात्मक तथा गुणात्मक प्रभावों की व्यापकता की ओर संकेत करते हुए सन्थानम् ने कहा, "आर्थिक विकास के लिए नियोजन अपने व्यापारिक स्वरूप (Supersession) कानूनी अथवा संवैधानिक नहीं था, अपितु इसका आधार

था समझौता एवं सहमति । " इससे भी अधिक, योजना आयोग के फलस्वरूप एक प्रकार के लम्बवत (Vertical) संघ की स्थापना हो गई है ।

संविधान ने तो भौगोलिक संघ का निर्माण किया । "वह तो एक क्षैतिजिक (Horizontal) संघ था जिसका निर्माण संविधान निर्मात्री सभा द्वारा किया गया था । " यही नहीं सन्थानम् ने तो हमारी समूची संवैधानिक व्यवस्था को ही एकात्मक व्यवस्था की संज्ञा दे डाली है । उन्हीं के शब्दों में, "योजना ने संघात्मक व्यवस्था को प्रतिस्थापित (Supersede) कर दिया है तथा हमारा राष्ट्र बहुत से मामलों में लगभग एकात्मक व्यवस्था की भाँति ही कार्य कर रहा है ।"

3.14 विचारधारा का एक दूसरा पक्ष: केन्द्र की कमजोर स्थिति

भारतीय संघवाद पर योजना के विभिन्न प्रभावों को स्पष्ट करते हुए के. सी. व्हीयर, अशोक चन्दा तथा के. सन्थानम् आदि विचारकों ने केन्द्रीकृत तस्वीर प्रस्तुत करने के प्रयास में जो अतिरंजना कर डाली है, सम्भवत: वही स्थिति पाल एवलबी के विश्लेषण में भी स्पष्ट हैं, जिनके राष्ट्रीय योजनाओं के क्रियान्वयन के सन्दर्भ में केन्द्र की स्थिति को दयनीय बतलाकर दूसरी पराकाष्ठा को प्रस्तुत किया गया है ।

इस सन्दर्भ में उनके निम्नलिखित शब्दों को उद्धृत करना उनके दृष्टिकोण को समझ सकने में पर्याप्त उपयोगी होगा: "नयी राष्ट्रीय सरकार को किसी भी बड़े नतीजे तथा महत्वपूर्ण राष्ट्र की तुलना में, बहुत कम ही शक्ति के आधारभूत साधन दिये गये हैं ।" विकास कार्यक्रमों के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि, केन्द्र के पास विकास के लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र में ही किसी प्रकार की वास्तविक शक्तियां नहीं हैं, इसका (केन्द्र का) "स्टाफ" का कार्य है बजाय "सूत्र" अथवा कार्यात्मक कार्य (Action function) के तथा इसकी पद्धति बहुत धीमी होती है व मुश्किल से ही गतिवान भी ।"

इसी सम्बन्ध में मोहम्मद करीम छागला का मत अधिक सन्तुलित प्रतीत होता है, "अब आप लोगों को अनुभव करना चाहिए, जैसा कि मैं भी महसूस करता हूं कि शायद यह अच्छा रहता यदि हमारा केन्द्र उससे कहीं अधिक शक्तिशाली होता जैसा कि वह अब है । ऐसे बहुत से मामले हैं जहाँ हम महसूस करते हैं कि विभिन्न राज्यों की अलग–अलग नीतियों ने हमें भ्रमित किया है और यहाँ तक कि अव्यवस्था भी फैलाई है, और बहुत से मामले हैं जिनमें यह अधिक उपयुक्त होता यदि हमारी एक समन्वयात्मक नीति होती ।"

3.15 योजना के सन्दर्भ में केन्द्र– राज्य वित्तीय संबंध: कतिपय पक्ष

3.15.1 योजना–अनुदानों का आधार स्पष्ट नहीं

वर्तमान में योजना हेतु केन्द्रीय सहायता के दो संभावित स्वरूप हैं – (1) उन परियोजनाओं के लिए सहायता जो केन्द्र द्वारा समर्थित हो, तथा (2) उन परियोजनाओं के लिए सहायता जो केन्द्र द्वारा आरम्भ की जाती हों ।

किन्तु इस सम्बन्ध में कठिनाई यह है कि केन्द्र द्वारा सहायता दिये जाने का कोई एक सरलीकृत स्वरूप नहीं किया जा सकता । ऐसी स्थिति में अस्पष्टता एवं अनिश्चितता स्वाभाविक है तो कि सम्बन्धों को अस्वस्थ स्वरूप ही प्रदान करता है ।

3.15.2 योजना अनुदानों का अप्रभावी उपयोग

योजना निष्पादन के अकुशलता के परिणामस्वरूप केन्द्र द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता का अप्रभावी उपयोग भी केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों का एक अस्वस्थ पक्ष है । इस क्रूर स्थिति की ओर परांपजे ने बड़े ही मार्मिक ढंग से संकेत किया है. "राज्यों ने इसका अर्थ यह निकाला है कि यदि वे अपने मदों को बढ़ा–चढ़ा कर प्रस्तुत करें तथा राजनीतिक सौदेबाजी से काम लें तो केन्द्रीय सहायता का एक बहुत बड़ा भाग उन्हें पारितोषिक के रूप में मिल सकता है । साथ ही जिन राज्यों के वित्तीय प्रबंध में कुछ गड़बड़ी चल रही है (जिसका प्रमाण रिजर्व बैंक से लिए गये ऋणों के रूप में देखा जा सकता है) उनके घाटों की पूर्ति भी केन्द्र को करनी पड़ती है और न्यूनाधिक विरोध के बाद इस स्थिति को भुगतना पड़ता है । इससे राज्यों ने यह मान लिया है कि यदि वे अनुशासनहीनता करेंगे और उनकी वित्तीय व्यवस्था में अनियमितता भी पाई जायेगी तो भी केन्द्र सरकार उन्हें दण्डित नहीं कर सकेगी।"

3.15.3 पर्याप्त मूल्यांकन के अभाव में पुनर्निवेशन प्रक्रिया की शिथिलता

योजना तन्त्र की सीमित सफलता का एक कारण योजना मूल्यांकन प्रक्रिया का तुलनात्मक रूप से शिथिल रहना भी रहा है । योजना मूल्यांकन संगठन (योजना आयोग का एक निकाय) के सन्तोषजनक कार्य के बाद भी यह स्थिति मूलतः राज्य स्तरों पर योजना मूल्यांकन प्रक्रिया की लगभग अनुपस्थिति का परिणाम था । इन हालातों में पुनर्निवेशन (Feed back) प्रक्रिया का शिथिल हो जाना स्वाभाविक था, फलस्वरूप राष्ट्रीय योजना (राज्यीय योजना सहित) का वास्तविक प्राथमिकताओं से भटक जाना सहज ही सम्भव था । सम्भवतः इन कारणों से भी केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों में पारस्परिक अविश्वसनीयता आ गई थी ।

3.15.4 राज्य स्तर पर सक्षम योजना तन्त्रों का अभाव

राज्य सरकारों ने केन्द्र सरकार तथा योजना आयोग द्वारा अनेक बार परामर्श के बाद भी अपने योजना तन्त्रों को विकसित करने में कोई विशेष रूचि प्रकट नहीं की । इस कारण राज्य अपनी आवश्यक प्राथमिकताओं के आधार पर योजना बना सकने में सक्षम नहीं हो पाये । केन्द्र के साथ मिलकर सीमित संयुक्त प्रयासों द्वारा जो भी योजना बना गई उसे ही लागू करने का प्रयास किया गया । राज्यों का मूल उद्देश्य केन्द्र से अधिकाधिक सहायता ही पाना बना रहा । इस तरह की गलत प्राथमिकताओं पर टिकी योजनाओं की सफलता संदिग्ध हो जाती है । परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में असफलताओं का मुंह देखना पड़ा । इन परिस्थितियों में केन्द्र–राज्यों के मध्य वित्तीय मामलों को लेकर गलत संवादों का प्रारम्भ बहुत स्वाभाविक था, तथा इस तरह वित्तीय सम्बन्धों का पक्ष संवेदनशीलता लेता ही रहा तथा सारा दोष केन्द्र को देने की कोशिश की जाती रही । वास्तव में राज्यों ने अपने इन्हीं अनुत्तरदायी कृत्यों द्वारा ही "केन्द्र को केवल एक चाबुकदारी कोचवान की स्थिति में ला कर खड़ा कर दिया ।"

3.15.5 संघीय राजनीतिक तथा वित्तीय सम्बन्धों की परस्परिकता

राज्यों द्वारा केन्द्रीयकरण सम्बन्धी लगाये जाने वाले आरोपों का कारण केन्द्रीय राजनीतिक व्यवस्था में शिथिलता (विशेषतः 1967 के पश्चात् तथा 1970–71 तक) आ जाना भी रहा है । नेहरू के प्रधानमंत्रीत्व काल में जबकि केन्द्रीय राजनीतिक व्यवस्था पर्याप्त रूप से शक्तिशाली थी, इस प्रकार

की आलोचनाएं नहीं की गयीं । राष्ट्रीय दल के रूप में कांग्रेस की पुनर्स्थापना तथा राष्ट्रीय स्तर पर पुन: उभरते प्रधानमन्त्री के अव्यक्तितत्व ने एक बार फिर इन आलोचनाओं की तीव्रता को कम कर दिया है तथा एक नूतन पर्यावरण की स्थापना हुई है ।

सुधार–सुझाव

वर्तमान वित्तीय व्यवस्था के सन्दर्भ में सुधार–सुझाव का मूल प्रयोजन ऐसे परिवर्तन लाना ही होना चाहिए, जो –

(1) राज्य के स्ववित्तीय साधनों की वृद्धि का प्रयास करें ।

(2) संवैधानिक अनुदानों को अधिक मात्रा में (वित्त आयोग की सिफारिशों में मिलने वाली धनराशि) राज्यों को सुलभ करा दें ।

(3) योजना अनुदानों के वितरण का आधार अधिक निश्चित, निष्पक्ष (यथा सम्भव राजनीति से मुता) तथा प्रभावी बना दें ।

(4) सम्पूर्ण सहायता (संवैधानिक अनुदान तथा योजना अनुदान दोनों) के अधिक प्रभावपूर्ण उपभोग को बढ़ावा दिया जा सके ।

इसके प्रकाश में निम्नलिखित सुझाव विचारणीय हैं –

(1) केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों को अपेक्षाकृत प्रभावशाली बनाने हेतु प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा वित्त प्रशासन पर अपने प्रतिवेदन में विकास बैंक के गठन का सुझाव दिया था । निश्चय ही यह सुझाव सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है । इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकृत बैंकों से अधिक सन्तुलित विकास हेतु राज्यों की लघु परियोजनाओं तथा छोटे उद्योगों के विकास के लिए उनकी भूमिका के विस्तार का प्रयास भी उपयोगी हो सकता है ।

(2) केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय साधनों के असन्तुलन को दूर करने के लिए संविधान में व्यापक संशोधन किये जाने के सुझाव समय–समय पर दिये जाते रहे हैं । इस सन्दर्भ में राज्यों को अतिरिक्त वित्त सुलभ कराने हेतु अनुच्छेद 270 के अन्तर्गत निगत–कर में संशोधन किये जाने की आवश्यकता है जिससे प्राप्त आमदनी को राज्यों के साथ अनिवार्य रूप से बांटा जा सके । उद्योगों तथा वाणिज्य विकास के परिणामस्वरूप निगमीकृत क्षेत्रों में अधिक आय होने की सम्भावना है।

(3) राज्यों को अपनी संवैधानिक सीमाओं में रहते हुए स्ववित्तीय साधनों का विकास करना चाहिए। इस दिशा में कृषि आयकर को ओर अधिक तार्किक एवं व्यवस्थित स्वरूप देना जहां एक और स्वयं कृषि क्षेत्र के विकास में सहायक होगा वहीं इससे राज्य को प्राप्त होने वाले राजस्वों में भी वृद्धि हो सकेगी ।

(4) प्रजातन्त्र में समस्याओं का अराजनीतिकरण अनेक स्थितियों के लिए नितांत आवश्यक होता है, किन्तु साथ ही अत्यधिक कठिन भी । परांजपे के शब्दों में, "योजना का राष्ट्र के वर्तमान एवं भावी जीवन, दोनों ही से बहुत निकट सम्बन्ध है और इसे राजनीति से अधिक दूर नहीं रखा जा सकता। किन्तु इसके बावजूद भी इसके कुछ पहलुओं को अराजनैतिक बनाया जा सकता है । यह प्रयास जितना अधिक सफल हो सकेगा, योजना के क्षेत्र में केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के तनाव के घटने की सम्भावना भी उतनी ही प्रबल होगी ।"

(5) ऐसा प्रतीत होता है कि मानों राज्यों के केन्द्र के प्रति रोष का एक कारण योजना आयोग का गैर संवैधानिक संस्था होता है । इस सम्बन्ध में जी. रामचन्द्रन, योजना आयोग को कानूनी आधार

देकर इसके कार्य क्षेत्र में विस्तार करने में हामी है । उनकी मान्यता है कि वित्त आयोग तथा योजना आयोग के मध्य टकराहट को समाप्त करने हेतु योजना आयोग को वे सभी कार्य सौंप दिये जाने चाहिए जो वर्तमान में वित्त आयोग कर रहा है ।

किन्तु इस सन्दर्भ में प्रशासकीय सुधार आयोग का भिन्न मत रहा है । सुधार आयोग ने केन्द्र–राज्य सम्बन्धों पर अपने प्रतिवेदन में वित्तीय सम्बन्धों के सुधार हेतु निम्नलिखित तीन प्रमुख सुझाव प्रस्तुत किये हैं -

(1) राज्यों का दिये जाने वाले योजना अनुदानों के सन्दर्भ में भी वित्त आयोग को सिद्ध सुझावों हेतु कहा जाना चाहिए। योजना आयोग की नियुक्ति को इस प्रकार समायोजित किया जाना चाहिए कि वह अपनी सिफारिशें देने से पूर्व योजना–आयोग द्वारा निर्मित पंचवर्षीय योजना के प्रारूप की रूपरेखा देख ले ।

(2) वित्त आयोग द्वारा राज्यों को साधन आवंटन के समय, जीवन निर्वाह स्तर में बढ़ोतरी के फलस्वरूप राज्य सरकार के कर्मचारियों के वेतन–भत्तों में बढ़ोतरी स्वीकृत करने की समस्या को ध्यान में रखना चाहिए ।

(3) राज्य सरकारों को सिंचाई तथा शक्ति परियोजनाओं सदृश भारी विनियोग वाली परियोजनाओं से सीधे लाभान्वित होने वालों पर पर्याप्त करारोपण करना चाहिए ।

(4) जो भी हो आवश्यकता इस बात की है कि वित्त आयोग तथा योजना आयोग सहयोगी संस्थाओं के रूप में कार्य करें । इस दिशा में रामचन्द्रन के मत की अपेक्षा प्रशासकीय सुधार आयोग द्वारा प्रस्तावित निराकरण अधिक व्यावहारिक है ।

3.16 निष्कर्ष

केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों की मूल चुनौती राज्यों की कार्यात्मक स्वायत्तता को बिना बाधा पहुँचाये, योजना के माध्यम से, राष्ट्र को समग्र आर्थिक विकास के मार्ग पर ले जाने की है । इसीलिए संवैधानिक प्रारूपों को सांदर्भिकता प्रदान करना अनिवार्य है । यूं भी परिस्थितियों के अनुरूप, संघात्मक व्यवस्था में नियोजित अर्थ–व्यवस्था की सफलता हेतु अभिष्ट अनुकूलन वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है । इसीलिए विगत 30 वर्षों में बनी योजना–परम्पराओं को नवीन दिशा देना वांछनीय है ।

आवश्यकता सामाजिक परिवर्तन और स्वस्थ परम्पराओं के विकास की है, जिससे न केवल राजनीतिक अवस्था को कहीं अधिक सक्षम व समर्थ बनाया जा सकेगा, अपितु उन्हीं के अनुकरण के फलस्वरूप ही हमारी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थायें जन–कल्याणकारी एवं जनवादी बन सकेंगी ।

3.17 अभ्यास प्रश्न

1. केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों पर एक लेख लिखिए ।
2. संसाधनों के विभाजन की संवैधानिक व्यवस्था का उल्लेख कीजिए ।
3. योजना अनुदानों के विभिन्न पक्षों का उल्लेख कीजिए ।

3.18 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, चन्द्रमौलि, शर्मा अशोक एवं गोयल सुरेश: राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1990

2. महेश्वरी, एस. आर.: स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1979
3. राजपूत, सरला: रोल ऑफ चीफ मिनिस्टर इन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1994
4. गहलोत, सुखवीर सिंहः राजस्थान में राज्य प्रशासन, राविरा नवम्बर, 1999
5. कटारिया, सुरेन्द्र भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2009

इकाई – 04

भारत में प्रशासनिक सुधार एवं भविष्य के लिये कार्यसूची

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भारत में प्रशासनिक सुधार

4.3 पंच वर्षीय योजनाएं एवं प्रशासनिक सुधार

4.4 भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

4.5 राज्यों में प्रशासनिक सुधार

4.6 प्रशासनिक सुधार का प्रभाव एवं कमी

4.7 सारांश

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

– इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आज जान पायेंगे –
– भारत में प्रशासनिक सुधारों की स्थिति के बारे में,
– पंच वर्षीय योजनाओं में प्रशासनिक सुधारों की स्थिति,
– भारत में प्रशासनिक संस्थान के बारे में जानकारी,
– राज्यों में प्रशासनिक सुधारों की स्थिति के बारे में ।

4.1 प्रस्तावना

विश्व भर में हो रही प्राविधिक उन्नति, औद्योगीकरण, विदेशी सरकारों के अधीन पूर्णत: अथवा आशिक रूप से रहे देशों की स्थितियों में परिवर्तन तथा राजकीय गतिविधियों की संख्या एवं जटिलताऐं, लोक प्रशासन के आधुनिकीकरण की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हैं ।

प्रशासन स्वच्छ एवं कुशल होना आवश्यक है । सामाजिक–आर्थिक विकास के कार्यक्रमों का त्वरित गति से क्रियान्वयन होना चाहिये । राजकीय क्षेत्र उपक्रमों का बेहतर प्रबंधन तथा जन सेवाओं की मनोदशा को सुधारा जाना चाहिए । साथ ही, प्रभावी प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भी आवश्यकता है ।

'प्रशासनिक सुधार' शब्द सामान्यत: 'प्रशासनिक परिवर्तन' एवं प्रशासनिक पुनर्व्यवस्था' शब्दों का पर्याय माना जाता है । वास्तव में 'सुधार' से तात्पर्य है, वर्तमान व्यवस्था के दुष्प्रभावों को दूर करना, वहीं 'पुनर्व्यवस्था का अर्थ है, वर्तमान की आवश्यकतानुसार वर्तमान व्यवस्था का पुनर्निमाण तथा 'परिवर्तन' विचारधारा या सामाजिक–आर्थिक परिवेश के लिये उपयुक्त बदलाव लाना है ।

परिभाषा जो भी हो, यह आवश्यक है, कि प्रशासनिक सुधारों का अन्य सामाजिक सुधारों से भेद ज्ञात किया जाये । राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो प्रशासनिक सुधार शक्ति–राजनीति

का व्यवहार हे । इसमें विचारधारा का वैज्ञानिक, पुनर्गठन, क्षेत्रीय सेवाओं पर नियंत्रण की लड़ाई, राजनैतिक प्रतिभागिता एवं संस्थाऐं, विभिन्न प्रकार के समझौते व रियायतें हैं । प्रशासनिक सुधारों को आर्थिक प्रक्रिया के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है (जिसके अंतर्गत संसाधनों का उचित विभाजन है) तथा उसे मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया जो कि व्यवहार तरीके, अभिव्यक्ति आदि से युक्त है, द्वारा वर्णित किया जा सकता है । द्वितीय विश्वयुद्ध पश्चात् प्रशासनिक सुधार का अन्य विधाओं से विलय कर गणना किये जाने की अपेक्षा केवल लोक प्रशासन के संबंध में ही प्रयुक्त किया जाने लगा ।

'प्रशासनिक सुधार' सरकारी तंत्र में लघु से विशाल, प्रत्येक प्रकार से परिवर्तन पर लागू होता है । प्रशासनिक सुधार से स्पष्टता, उत्तरदायित्वता, विकेन्द्रीकरण, जन नैतिकता, नागरिक संतोष संभव होने चाहिये । प्रशासनिक सुधार स्वयं ही मूल्यांकन योग्य धारणा है तथा सभी प्रकार के परिवर्तन प्रशासनिक सुधार नहीं होते।

भारत को उपनिवेशवादी प्रशासन विरासत में मिला है, जो लाभदायक है, अत: उसे मिटाने की बजाए उसे स्वतंत्र, धर्मनिरपेक्ष भारत के अनुसार पुन: सुगठित किया गया । भारत में प्रशासन जनता के जीवन को बेहतर बनाने के उद्देश्य का होना चाहिये । अत: दोनों ही अवधारणा प्रजातंत्र एवं विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र में विशेष परिवर्तन करना आवश्यक था । यह प्रजातंत्र की आवश्यकता थी कि प्रशासन जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हो, वे प्रतिनिधि जो सरकार गठित करते हैं, जिससे सरकार एवं प्रशासन जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके । प्रजातंत्र के स्थानीय स्तर पर विस्तार जो कि 73वें व 74वें संविधान संशोधन (1992) का परिणामस्वरूप है से 'कल्याणकारी राज्य' की स्थापना हुई । 'कल्याणकारी राज्य' के लिये योजनाबद्ध आर्थिक एवं सामाजिक विकास करना आवश्यक है । अत: प्रशासन को आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र के योजनाबद्ध विकास को साकार कर पाना आवश्यक था ।

उपनिवेशवादी प्रशासन से प्रजातांत्रिक प्रशासन का मार्ग सरल नहीं था । नौकरशाही एवं राजनैतिक सत्ता के मध्य सामंजस्य कठिन था । किन्तु कुछ वर्षों के अंतराल में नौकरशाही ने राजनेता के निर्णय को अंतिम निर्णय मान अपनी भूमिका सलाह देने तक सीमित कर लिया है । उनकी भूमिका सशक्त करने के लिये कार्यालयों के स्वचालन (Automation) जैसे उपाय किये जा रहे हैं । स्वचालन की प्रक्रिया पत्र कार्ड, इलेक्ट्रानिक डाटा, प्रोसेसिंग आदि द्वारा किया जा रहा है ।

4.2 भारत में प्रशासनिक सुधार

भारतीय प्रशासनिक तंत्र में सुधार के कुछ प्रमुख दोष इस प्रकार हैं (1) प्रशासनिक संगठन एवं संरचना में दोष (2) कार्य पूर्ति में विलम्ब (3) असक्षमता (4) भ्रष्टाचार । प्रशासनिक अधिकारियों एवं मंत्रियों के मध्य व्याप्त तनाव से अधिकारियों का आत्मविश्वास तथा उत्तरदायित्व की भावना डगमगाती है, तथा वे कोई कदम नहीं उठाना चाहते । अत: प्रशासनिक सुधार की त्वरित आवश्यकता है ।

प्रशासनिक सुधार का प्रश्न भारत सरकार, राज्य सरकार, राजनेता एवं प्रशासनिक अधिकारियों से संबंधित है । अत: स्वतंत्रता पश्चात् ही प्रशासनिक सुधार संभव किये जाने के प्रयास किये गये । आम धारणा है कि प्रशासन में किसी भी प्रकार के सुधार एवं नवीनता लाना संभव नहीं है । यू पी.

एस. सी. (संघ लोक सेवा आयोग) की नियुक्तियाँ शहरी उच्च वर्गीय वर्ग का आधिपत्य होकर रह गया है ।

केन्द्रीय सरकार ने 1947 से लगभग 30 समितियाँ एवं आयोग गठित कर प्रशासनिक सुधार लाने का प्रयास किया है:

1946–92: भारतीय प्रशासन पर रिपोर्ट:

1. केन्द्रीय सरकार के पुर्नगठन पर रिपोर्ट (अध्यक्ष, रिचर्ड टोटेनम), 1946
2. सचिवालय पुर्नगठन समिति (गिरिजा शंकर वाजपेयी), 1947
3. केन्द्रीय वेतन आयोग (श्रीनिवास वरदाचरियार), 1947
4. आर्थिक आयोग (कस्तूरबाई लालबाई), 1948
5. सरकारी तंत्र के पुर्नगठन पर रिपोर्ट (एन. गोपालस्वामी अयंगार), 1949
6. लोक प्रशासन पर रिपोर्ट (ए. डी. गोरवाला), 1951
7. राज्य उद्‌यमों के सुचारू क्रियान्वयन पर रिपोर्ट (ए. डी. गोरवाला), 1951
8. सरकारी मशीनरी–सुधार (आर. ए. गोपालस्वामी), 1952
9. लोक प्रशासन–समिति (के. जी. वी. कृपलानी), 1955
10. रेलवे भ्रष्टाचार जांच समिति (के. जी. कृपलानी),
11. बजट एवं वित्त तंत्र मैं परिवर्तन (अशोक चंदा), 1956
12. औद्‌योगिक एवं वाणिज्यिक उपक्रम के संदर्भ में भारतीय प्रशासनिक तंत्र का पुन: परीक्षण (पॉल एच. ऐपलबी), 1956
13. प्रशासनिक सेवा (नियुक्ति की योग्यताएं) समिति (ए. रामस्वामी मुदलियर), 1956
14. सामुदायिक योजना एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा पर बलवंत राय मेहता समिति, 1957
15. द्‌वितीय वेतन आयोग (जगंधा दास), 1957
16. कर्मचारी पुर्नावलोकन समिति (फतेह सिंह), 1961
17. भारतीय एवं राज्य प्रशासनिक सेवा तथा जिला प्रशासन की समस्याओं पर रिपोर्ट (वी. टी. कृष्णमाचारी), 1962
18. भ्रष्टाचार निरोधक समिति (के. सनयानम्), 1964
19. प्रशासनिक सुधार आयोग (अध्यक्ष, मोरारजी देसाई बाद में के. हनुमंथैया), 1966–70
20. तृतीय केन्द्रीय वेतन आयोग (रघुवर दयाल), 1973
21. नियुक्ति नीति तथा चयन पद्धति (डी. एस. कोठारी), 1976
22. पंचायती राज संस्थाओं पर अशोक मेहता समिति, 1977
23. राष्ट्रीय पुलिस आयोग, 1977
24. आर्थिक प्रशासन सुधार आयोग (अध्यक्ष, एल. के. झा), 1981–65
25. चतुर्थ केन्द्रीय वेतन आयोग रिपोर्ट, 1983
26. केन्द्र–राज्य संबंधों पर सरकारिया समिति, 1983

27. ग्रामीण विकास के लिये प्रशासनिक प्रबंध एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के पुर्नावलोकन (समीक्षा) हेतु गठित समिति (गी. वी. के. राव), 1985–98

28. प्रशासनिक सेवा परीक्षा पुर्नावलोकन समिति (सतीश चन्द्र), 1988–89

29. कर सुधारों पर डी. राजा जे. चेलिया समिति, 1991–92

30. पंचम वेतन आयोग रिपोर्ट, 9 अप्रैल, 1994–30 जनवरी, 1997

इस प्रकार प्रशासनिक सुधार एक निरन्तर प्रक्रिया है। अत: इसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है । भारत में हुए प्रशासनिक सुधारों को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है –

प्रथम चरण : 1947– 1964 संस्था निर्माण की अवस्था (पं. नेहरू के मृत्यु तक) ।

द्वितीय चरण : 1965– 1976 केन्द्र में कांग्रेस शासन तक व्यापक सुधार की अवस्था एवं प्रशासनिक सुधार आयोगों का युग ।

तृतीय चरण : 1977– 1990 नये विचारों एवं सुधारों का युग ।

चतुर्थ चरण : 1990–पश्चात् निजीकरण एवं विकेन्द्रीकरण का युग ।

प्रथम चरण : 1947– 1964

जुलाई, 1947 में एक सचिवालय पुर्नगठन समिति नियुक्त की गई । 1948 में सुप्रसिद्ध उद्योगपति कस्तुरभाई लालभाई की अध्यक्षता में सरकार ने आर्थिक समिति का गठन किया । इस समिति का कार्य प्रशासन में व्यर्थ व्यय रोक कर बचत के उपाय सुझाना था । इसके पश्चात् भारत सरकार के सरकारी तंत्र को पुर्नगठन की रिपोर्ट 1949 में आयी जो कि प्रस्तुत की गई श्री. एन. गोपालस्वामी अय्यंगार द्वारा । उन्होंने नीतियों एवं योजनाओं में सामंजस्य के लिये केन्द्र सरकार मंत्रालयों का वर्गीकरण, वित्तीय सलाहकार संगठन की स्थापना तथा सार्वजनिक सेवाओं और प्रशासनिक समन्वय हेतु सार्वजनिक केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकारी की अनुशंषा किया । अय्यंगार द्वारा सुझाये गये प्रशासनिक सुधार भविष्य दृष्टिगत थे ओ एवं एम (O&M) खण्ड की स्थापना 1954 में किया गया ।

योजनाबद्ध विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति के तरीकों के मूल्यांकन के लिये मार्च, 1950 में स्थापित योजना आयोग द्वारा ए. डी. गोरवाला समिति गठित की गई । उसकी रिपोर्ट प्रशासनिक सुधार के लिये आवश्यक प्रस्ताव निर्माण का आधार बनी । इन्हें बाद में प्रथम पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित किया गया ।

1953 एवं 1956 में पॉल. एच. ऐपलबाय द्वारा प्रस्तुत दो रिपोर्ट सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में प्रशासनिक सुधार संबंधी सोच में विशेष प्रभावशाली थे । अपनी द्वितीय रिपोर्ट 'भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का पुर्नमूल्यांकन में उन्होंने कार्य प्रणाली नियुक्ति, प्रशिक्षण, प्रशासन एवं संसद के मध्य संबंध, प्रशासन एवं योजना आयोग के मध्य संबंध तथा प्रशासन एवं लेखा नियन्ता एवं लेखा परीक्षक (Comptroller & Auditor General) के मध्य संबंध के विषय में अनेक सुझाव दिये ।

1954 में परियोजनाओं के क्रियान्वयन में विलम्ब को रोकने संबंधी सुझाव युका रिपोर्ट 'बजट एवं आर्थिक नियंत्रण और अन्य तरीकों के व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन' अशोक चंदा ने प्रस्तुत किया । चंदा ने विभिन्न सरकारी विभागों में विशेष प्रशिक्षण की अनुशंषा की ।

1963 में तृतीय पंचवर्षीय योजना के मध्य में आर्थिक उन्नति की गति बढ़ाने के लिये विकास कार्यक्रमों की प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने की आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप, गृह मंत्रालय में मार्च, 1964 में प्रशासनिक सुधार विभाग गठित कर केबिनेट सचिवालय से O&M खण्ड का स्थानान्तरण इस विभाग में कर दिया गया।

सार्वजनिक उद्यमों के बेहतर प्रबंधन के लिये 1965 में वित्त मंत्रालय में सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो गठित किया गया। जैसा कि पूर्व में भी कहा गया है, भारत सरकार ने प्रशासनिक सुधार दृष्टिगत रख अनेक समितियाँ एवं आयोग गठित किये। इन समितियों के अतिरिक्त पाँच वेतन आयोग के प्रस्ताव भी प्रमुख हैं।

4.3 पंचवर्षीय योजनाऐं एवं प्रशासनिक सुधार

योजना आयोग द्वारा भी देश के लोक प्रशासन में परिवर्तन हेतु अनुंशष की जाती रही है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में लोक प्रशासन पर एक अध्याय अवश्य होता है। योजना आयोग ही प्रशासनिक तंत्र की प्रकृति तय करता है। संसद की अनुमान समिति की रिपोर्ट भी अधिकतर प्रशासनिक सुधार संबंधी है। इस संबंध में सचिवालय एवं भारत सरकार विभाग (1950–51) के द्वितीय रिपोर्ट, जन सेवाओं पर 93 वीं रिपोर्ट (1965 –66), अखिल भारतीय सेवाओं पर 77 वीं रिपोर्ट (1983 – 84) और केबिनेट सचिवालय पर 89 वीं रिपोर्ट (1975–76) का उल्लेख करना उचित होगा।

इन समितियों की अनुशंषा पर सरकार द्वारा कई कदम उठाए गये। विशेष पुर्नगठन इकाई, केन्द्रीय O&M खण्ड तथा भारतीय लोक प्रशासन संस्था की स्थापना भी उल्लेखनीय है। मार्च, 1964 में गृह मंत्रालय में ही प्रशासनिक सुधार विभाग की स्थापना भारत सरकार द्वारा की गयी किन्तु अब यह एक स्वतंत्र विभाग है।

प्रथम एवं द्वितीय वेतन आयोगों के प्रतिवेदनों में लोक प्रशासन पर अनेक अवलोकन हुए। प्रशासनिक सुधार के लिये राज्य सरकारों द्वारा भी कई समितियाँ गठित की गई। वित्त मंत्रालय भी प्रशासनिक सुधार दृष्टिगत उपायों के क्रम में कई समितियाँ एवं उप समितियाँ गठित कर चुका है।

4.4 भारतीय लोक - प्रशासन संस्थान

पॉल एच. ऐपलबी की अनुशंषा के परिणामस्वरूप भारतीय लोक–प्रशासन संस्थान की स्थापना हुई। इस संस्थान में कई प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं तथा लोक–प्रशासन विषय संबंधी शोध भी करवाये जाते हैं। यह संस्था लोक प्रशासन पत्रिका भी निकालती है। सन्थानम् समिति की 1964 की अनुशंषा पर उच्च प्रशासनिक कर्मचारियों पर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच हेतु केन्द्रीय निगरानी समिति भी गठित की गयी। द्वितीय वेतन आयोग (1957) ने प्रशासकों की शिकायतों की सुनवाई का प्रावधान रखा। इसी प्रकार 1964 में ओ एण्ड एम. (O&M) खण्ड पूर्ण रूप से एक स्वतंत्र विभाग बन गया जिसका नाम प्रशासनिक सुधार विभाग पड़ा। यह गृह मंत्रालय के अधीन था।

प्रथम चरण की प्रमुख विशेषताऐं

प्रशासनिक सुधार के प्रथम चरण में कुशल प्रशासन हेतु कई संस्थाऐं स्थापित की गई। जिसकी कुछ प्रमुख विशेषताऐ इस प्रकार हैं। प्रथम, प्रशासनिक सुधार समानान्तर रेखाओं पर आधारित हैं, अर्थात् समय–समय पर समितियाँ गठित की गई। द्वितीय, प्रशासन की निष्ठा पर सवाल उठाने से

केन्द्रीय निगरानी समिति का गठन होना, तृतीय, संसद का प्रशासनिक सुधार मामलों में हस्तक्षेप, चतुर्थ, सरकार का व्यापार में सार्वजनिक उपक्रमों के रूप में प्रवेश, जिससे आर्थिक विकास में नौकरशाही का प्रभाव ज्ञात किया जा सके ।

द्वितीय चरण (1965– 1976)

प्रशासनिक सुधार आयोग गठित करने से पूर्व सभी प्रशासनिक सुधार अधिकतर काम–चलाऊ भाव, शैली एवं आकार में थे । अधिकतर समितियों ने छोटे–मोटे संशोधन के सुझाव दिये । इनमें से किसी ने भी पूर्ण प्रशासनिक तंत्र का विस्तृत मूल्यांकन करना उचित नहीं समझा ।

के. हनुमंथैया ने इस युग पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि पिछले बीस वर्षों में प्रशासन में सुधार नहीं, मात्र समाधान हुआ है । अत: इस चरण में सरकार द्वारा कई समितियाँ गठित की गयी किन्तु उनकी अनुशंसाओं के क्रियान्वयन में विलम्ब दिखाई दिया ।

प्रशासनिक सुधार आयोग (1966–70)

प्रशासनिक सुधार आयोग (1964) के गठन के प्रस्ताव में जो वर्णित उद्देश्य ये उनमें प्रमुख हैं – सार्वजनिक सेवाओं में कुशलता एवं निष्ठता बढ़ाना और सरकार की सामाजिक और आर्थिक नीतियों की पालना में सहायता करना । आयोग को निम्न बिन्दुओं पर विचार करने के निर्देश दिये गये.

1. भारत सरकार का सरकारी तंत्र एवं उसकी कार्यशैली ।
2. सभी स्तरों पर योजना तंत्र 1
3. केन्द्र–राज्य संबंध ।
4. वित्तीय प्रशासन ।
5. कार्मिक प्रशासन ।
6. आर्थिक प्रशासन ।
7. राज्य–स्तर पर प्रशासन ।
8. जिला प्रशासन ।
9. कृषि प्रशासन एवं नागरिक समस्या समाधान ।

इस प्रकार समिति को व्यापक विषयों पर विस्तृत अध्ययन कर रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी । यह प्रशासनिक सुधार के प्रयास का ठोस उदाहरण था । आयोग ने 20 प्रतिवेदन प्रस्तुत किये । आयोग द्वारा कुल 581 अनुशंसाये एवं सुझाव दिये गये । श्री हनुमंथैया के अनुसार सरकार ने 80% सुझाव स्वीकृत किये । आयोग द्वारा राज्य संबंधी सुझाव भी दिये गये जो केन्द्र के अधिकाधिक क्षेत्र में नहीं हैं किन्तु इन्हें लागू करने के संबंध में केन्द्र राज्यों पर नैतिक अधिकार अवश्य प्रयोग कर सकता है । यहाँ तक कि केन्द्र के संबंध में भी सुझाव माने जाने को बाध्य नहीं है । अत: आयोग की अनुशंसाओं की स्वीकृति की संख्या हतोत्साहित करती है ।

1979–80 में केन्द्रीय सुधार एजेन्सी के प्रयासों से प्रशासनिक ढाँचा, तंत्र एवं प्रणाली में अनेक परिवर्तन हुए । कार्मिक विभाग की स्थापना, सचिवालय कार्यप्रणाली में सुधार, सार्वजनिक प्रतिष्ठान ब्यूरो के कार्यप्रणाली में सुधार आदि संभव हो सके ।

प्रशासनिक सुधार विभाग ने प्रबंधन संबंधी अनेक अध्ययन किये जैसे कि संगठन संरचना, तरीके एवं प्रणाली, सूचना, व्यवस्था, कर्मचारी, संतुष्टि, आधुनिक कार्यालय मशीन, वित्तीय एवं

साज–सामान प्रशासन आदि । सभी राज्यों ने कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग, प्रशासनिक सुधार की दृष्टि से स्थापित किये । तथापि 1975–76 के आपातकाल ने लोक प्रशासन की छवि को गहरा धक्का लगाया ।

तृतीय चरण (1977– 1990)

आंतरिक आपातकाल पश्चात् मार्च, 1977 में चुनाव हुए तथा केन्द्र में जनता दल सत्ता में आई । जनता दल सरकार ने आपातकाल की अतियों को दर्शाने मात्र के लिये समितियाँ गठित की । प्रशासनिक सुधार के संबंध में काई ठोस कदम नहीं उठाए गये । 1980 में पुन: सत्ता की बागडोर काँग्रेस दल के हाथों में आई । इस पार्टी की सरकार द्वारा नियुक्त दो समितियाँ फज़ूल समिति (1980–82) तथा झा समिति (EAPC: 1981–85) ने नियम और कार्यप्रणाली की अपेक्षा उत्तरदायित्व पर अधिक बल दिया । परिणामस्वरूप 'वार्षिक कार्य योजना' प्रारंभ की गया ।

मार्च, 1985 में स्वतंत्र कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन विभाग स्थापित किया गया । इस समिति में कार्य संस्कृति पर विशेष बल दिया गया । सरकार का सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के लिये प्रशासन को तैयार करने का संकल्प था । सितम्बर, 1985 में प्रधानमंत्री के अधीन एक नवीन कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय सृजित किया गया । इस मंत्रालय का प्रबल जोर उद्देश्य निर्धारण द्वारा प्रबंधन करना था । समय–समय पर अंतर–मंत्रालय मंत्रणाएँ भी प्रारम्भ की गई जिससे कि त्वरित निर्णय लिये जा सके ।

प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग ने प्रशासनिक सुधार दृष्टिगत रख अनेक कदम उठाए । विभाग ने सरकारी कार्यालयों का नवीनीकरण कर उचित प्रबंधन के ठोस उपाय किये । सभी कार्यालयों को आधुनिक उपकरण क्रय हेतु बजट उपलब्ध कराए गये ।

उत्पादकता वृद्धि के लिये भी विभिन्न उपाय किये गये हैं । इस परियोजना से कर्मचारी मनोदशा, अधिक उत्पादकता तथा मूल्य में कमी संभव होगा । यह परियोजना रेलवे, डाक, डीडीए, स्वास्थ्य, श्रम, बैंक आदि विभागों पर लागू होता है जिसमें अधिक से अधिक लोग सम्मिलित हैं । अन्य उपायों में निजी वाहनों द्वारा चूंगी कर भुगतान, इलेक्ट्रोनिक एक्सचेंज द्वारा नये टेलीफोन नंबर, कम्प्यूटर द्वारा रेल आरक्षण आदि ने कागजी कार्यवाही में कमी लाकर प्रक्रियाओं को सरल बना दिया।

जन शिकायत निस्तारण हेतु भी ठोस उपाय किये गये हैं । कर्मचारी सुधार प्रक्रिया में भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का अनिवार्य प्रशिक्षण सम्मिलित है. । ये कार्यक्रम 6 से 9 वर्ष, 10 से 16 वर्ष तथा 16–20 वर्ष सेवारत अधिकारियों को कार्यक्रम क्रियान्वयन, प्रबंधन, निर्णय करने की तकनीक, नीति निर्धारण एवं विश्लेषण आदि में पारंगत कराती है । युवा प्रशासनिक सेवा अधिकारी तथा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र संस्थाओं के प्रबंधकों के लिये पन्द्रह मासिक राष्ट्रीय प्रबंधन शिक्षा कार्यक्रम की योजना सभी आई.आई.टी. तथा जेवियर श्रम संस्थान(जमशेदपुर) और प्रबंधन विकास संस्थान, गुड़गांव (हरियाणा) के सहयोग से प्रारंभ किया गया ।

द्वितीय एवं तृतीय चरण की विशेषताऐं

इन दो चरणों में प्रशासनिक सुधार के ठोस उपाय किये गये । इस अवधि में प्रशासनिक सुधार आयोग गठित हुआ, जिसने प्रशासनिक सुधार के कुल 581 सुझाव दिये । 'लोकपाल' तथा लोकायुक्त पद सृजित करने की अनुशंसा की प्रतिक्रिया भी सही रही । इसी अवधि में 'प्रशासनिक न्यायाधिकरण'

भी सरकार द्वारा सृजित किया गया । 1970–71 से केन्द्र सरकार ने 'निष्पादन बजट' प्रारम्भ किया है । इस अवधि में प्रशासनिक सुधार अधिक प्रबंध अनुस्थापित रहे । प्रशासन में मानवीय अंश का भी उदय हुआ । अमरीकी विचारधारा से प्रभावित भारतीय व्यवसाय प्रबंध शिक्षण संस्थानों इस मानवीय अंग सम्मिलित करने की प्रेरणा दी । राजकीय कर्मचारियों के सुधार के लिये संस्थागत प्रशिक्षण पर बल दिया गया । 1966 में गृह मंत्रालय में प्रशिक्षण खण्ड का सृजन हुआ । अब इस खण्ड का विलय कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार, परिवेदना एवं पेंशन विभाग में हो गया है । अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये किन्तु उनकी प्रासंगिकता पर प्रश्न उठे।

चतुर्थ चरण (1990 से)

इस अवधि में केन्द्र में अल्पमत, अस्थिर सरकारें तथा दुर्बल राजनैतिक नेतृत्व विशेष रहे । उदारीकरण से औद्योगिक नीतियों में नियंत्रण एवं अनुज्ञा की समाप्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ । 1991 के पश्चात् नई आर्थिक नीति ने भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को सरल बना दिया । इस अवधि में 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित हुऐ।

भारत सरकार ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का अध्ययन करने के लिये डॉ. राजा जे. चैलिया की अध्यक्षता में एक कर सुधार समिति का गठन 29 अगस्त, 1991 को किया । समिति की अंतरिम रिपोर्ट में प्रशासन को चुस्त–दुरुस्त करने की आवश्यकताओं को दर्शाया गया राजस्व विभाग की महत्ता सरकार द्वारा जाना जाये । समिति की 25 अगस्त, 1992 की अंतिम रिपोर्ट में कई अनुशंसाये थीं।

इस अवधि में राजनैतिक, राजकीय अधिकारी एवं औद्योगिक घरानों के मध्य अंर्तसंबंध देखा गया जब अनेक घोटाले सामने आये । इनमें प्रमुख हैं, बोफोर्स, सुरक्षा घोटाला, यूरिया एवं उर्वरक, हवाला तथा चर्चित चारा घोटाला । इस संबंध में राजनैतिक समर्थकों द्वारा हिंसा भड़काने की आशंका से राज्य के मुख्यमंत्री को गिरफ्तार नहीं किया जा सका । इससे स्पष्ट होता है कि प्रशासनिक सुधार अभी वास्तविकता से दूर है ।

पंचम वेतन आयोग एवं प्रशासनिक सुधार

पंचम वेतन आयोग ने राजकीय कर्मचारियों के वेतन वृद्धि के साथ प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया । अपने विशाल 1600 पृष्ठ तथा 172 अध्याय के प्रतिवेदन में एक संपूर्ण अध्याय 33 में प्रशासनिक सुधार पर चर्चा की गई है । इसके अंतर्गत परमिट अनुज्ञा प्रणाली की समाप्ति, निजी क्षेत्र में निवेश की समाप्ति एवं विभागीय प्रतिष्ठानों की निगमीकरण (Corporatisation) प्रमुख हैं । पाँचवें वेतन आयोग ने 10 वर्षों में 35 लाख पद समाप्त करने की भी अनुशंषा की जिसे सरकार ने नहीं माना है ।

अन्य सुझावों में सूचना का अधिकार, उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, राष्ट्रीय चुनाव कोष की स्थापना तथा भ्रष्टाचार निरोधक ऐजेन्सी स्थापित करना था । इससे पारदर्शिता में कमी, भ्रष्टाचार तथा जन हित प्रशासन संबंध समस्याओं से जूझने के उपाय सामने आये। आयोग ने यह भी अनुशंषा की कि कोई भी दस्तावेज तीन अधिकारियों से अधिक द्वारा पारित नहीं होंगे। इससे प्रशासन में चुस्ती सुनिश्चित हुई ।

आयोग ने संविदा नियुक्तियों को वैधता प्रदान करने की भी अनुशंषा की, विशेषकर पांच वर्ष की अवधि, समयबद्ध परियोजना जैसी स्थितियों में । संविदा नियुक्तियों को विशेषज्ञों के पार्श्व प्रवेश का द्वार माना गया । धारा 311 द्वारा प्रदत्त सेवा की सुरक्षा उत्तरदायित्व की भावना के विपरीत

है, दूसरी ओर संविदा नियुक्ति से इस उत्तरदायित्व की भावना बनी रहती है । आयोग द्वारा सैन्य बल में कमी का सुझाव भी असैन्य सरकारों का उत्तरदायित्व बढ़ाता है यद्यपि यह बहुत प्रासंगिक नहीं है ।

आयोग ने भारतीय प्रशासनिक सेवा को विशेष महत्व दिया है जिससे अन्य सेवाओं में रोष बढ़ है । आयोग का मानना है कि नौकरशाही परिवर्तन के मुख्य साधक हैं, वे ही अच्छाई के रखवाले तथा बुराई का दमन करने वाले हैं । यहाँ तक कि, आयोग का दावा रहा कि अखिल भारतीय सेवाओं से ही देश एकीकृत रहेगा । जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है, अखिल भारतीय सेवाओं के उपरान्त भी बंगाल के गोरखा, उत्तरप्रदेश के उत्तराखण्ड, असम में बोडो, महाराष्ट्र में विदर्भ, बिहार में झारखण्ड आदि विघटनकारी आंदोलन हुए । देश की एकता भावनात्मक लगाव, सांस्कृतिक बंधन एवं राष्ट्रीयता की भावना पर निर्भर है, न कि प्रशासन पर । आयोग की अखिल भारतीय सेवाओं की अधिक अनुशंसा भी अप्रासंगिक है क्योंकि राज्य सरकारों ने इस पर आपत्ति जतायी थी । आयोग ने कुछ लोकतंत्र विरोधी सुझाव दिये, जो कदापि अनुकरणीय नहीं हैं । यह आवश्यक है कि जनता को निर्णय लेने दिया जाए कि उन्हें नौकरशाही चाहिये अथवा सशक्त एवं स्वच्छ प्रजातंत्र ।

आयोग के अन्य सुझाव जैसे वर्ष में मात्र तीन राष्ट्रीय अवकाश (गणतंत्र दिवस, स्वाधीनता दिवस व गाँधी जयन्ती) और 12 आकस्मिक अवकाश, कार्य संस्कृति बढ़ाएगा । किन्तु क्या इसे लागू किया जायेगा? यह सुझाव कि बोनस का संबंध उत्पादन की अपेक्षा उत्पादकता से हो भी उचित है तथा स्वचलन (Automation) तथा कम्प्यूटरों द्वारा आधुनिकीकरण का सुझाव भी सराहनीय है ।

सरकार ने आयोग की अनुशंषाओं को कुछ परिवर्तन के साथ स्वीकार किया । आयोग द्वारा सेवानिवृत्ति की उम्र 58 से 60 बढ़ाना तथा कर्मचारी पद, 10 वर्षा में 30 प्रतिशत कम करने की अनुशंसा स्वीकार नहीं की गयी ।

4.5 राज्यों में प्रशासनिक सुधार

सुधार राज्य स्तर पर, अनेक राज्यों ने भी प्रशासनिक सुधार आयोग / समितियाँ नियुक्त किये हैं । उदाहरण के लिये, केरल प्रशासनिक सुधार आयोग, प्रशासनिक जाँच समिति, उड़ीसा 1958; आन्ध्रप्रदेश प्रशासनिक सुधार जाँच समिति, व 1964; पंजाब प्रशासनिक सुधार समिति, 1964; राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति, 1966; मध्य प्रदेश प्रशासनिक सुधार आयोग, 1969; तमिलनाडू प्रशासनिक सुधार आयोग, व 1973; तथा पश्चिम बंगाल प्रशासनिक सुधार समिति, 1982 ।

इन आयोग / समितियों की अनुशंसाओं पर राज्यों ने अपने प्रशासन में कई सुधार समाविष्ट किये ।

प्रशासनिक सुधारों की विशेषताऐं

भारत में प्रशासनिक सुधार अनेक दौर से –गुजर चुका और इस अवधि में जो विशेषताऐं दिखीं वो निम्न प्रकार हैं

(i) भारत में प्रशासनिक सुधार के तीन प्रमुख स्रोत हैं, प्रथम, कुछ सुधार राजनीतिक प्रक्रिया से जुड़े हैं जैसे – राज्यों का पुर्नगठन, मुख्यमंत्री व अन्य राजनेताओं के विरूद्ध जन सुनवाई (Scandal)

आदि । द्वितीय, कुछ सुधार, सुधार आयोग / समिति के पहल पर हुए है तथा तृतीय, कुछ सुधार केन्द्रीय ऐजेन्सी जैसे कर्मचारी एवं प्रशासनिक सुधार विभाग की पहल पर हुए हैं ।

(ii) केन्द्र सरकार के नेतृत्व में देश में तीनों स्तरों (केन्द्र, राज्य, स्थानीय) पर प्रशासनिक सुधार हुए हैं । यह केन्द्रीकृत योजना के कारण ही संभव हुआ है । केन्द्र सरकार ने राज्य सूची के विषयों पर भी समितियाँ गठित की हैं ।

(iii) प्रशासनिक सुधार के क्षेत्र में शैक्षणिक एवं शोध संस्थानों ने विशेष सहयोग नहीं दिया है । यहाँ तक कि, भारतीय प्रशासनिक सेवा संस्थान (IIPA) ने भी इस क्षेत्र में कोई योगदान नहीं दिया है ।

(iv) गैर–सरकारी संस्थाऐं, ऐच्छिक संस्थाऐं तथा नागरिक मंच आदि द्वारा प्रशासनिक सुधार के क्षेत्र में सक्रिय रूचि नहीं दिखाई दी ।

4.6 प्रशासनिक सुधार का प्रभाव एवं कमी

प्रथम, अनेक आयोगों एवं समितियों द्वारा सुधार के सुझाव के उपरान्त भी प्रशासनिक क्षेत्र को विस्तार से अध्ययन नहीं किया गया । द्वितीय, प्रशासनिक सुधार संबंधी अनुशंषाओं का उचित क्रियान्वयन कई वर्षों तक नहीं हो पाता है । तृतीय, राजनेता भी प्रशासनिक सुधार पर लघु परिवर्तनों को प्राथमिकता देते हैं । चतुर्थ, निष्ठा की कमी भी प्रशासनिक सुधार की प्रक्रिया को धीमा करती है । प्रशासनिक नैतिकता, जन उत्तरदायित्वता, प्रजातांत्रिकता एवं विकेन्द्रीकरण जैसे मुद्दे प्रशासनिक सुधार की शब्दावली के परे हैं । पंचम, अनेक समितियों द्वारा अनुशंसा किये जाने के उपरान्त भी प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रयास में कमी है । 1992 में ही 73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज स्थापित कर इस दिशा में पहला कदम उठाया गया । षष्ठम, वार्षिक कार्य योजना द्वारा मंत्रालयिक /विभागीय उत्तरदायित्व बढ़ाने के प्रयास भी धीमे पड़ गये ।

प्रशासनिक सुधार की सफलता राजनेता एवं नौकरशाही की सहायता पर निर्भर है किन्तु दोनों अपने निजी हित सिद्ध करने में लगे रहते हैं तथा प्रशासनिक सुधार संबंधी सोच का उनके पास समय नहीं है । प्रशासनिक सुधार प्रयासों में विगत 50 वर्षों से जो कमी देखी गई है, वह है नीति, संरचना एवं तात्पर्य में सामंजस्य ।

4.7 सारांश

प्रजातंत्र में प्रशासकों को राजनैतिक नेताओं के अधीन कार्य करना पड़ता है । अत: 21 वीं शताब्दी में प्रशासन को कुशल, प्रभावी, उद्देश्यपूर्ण, सत्य एवं गतिशील होना होगा । उसे पारदर्शी, जन उत्तरदायी एवं अनुक्रियात्मक होना होगा । प्रशासन की कुशलता सूचना एवं प्रसारण, कम्प्यूटर, टेलीसंचार जैसी टेक्नोलॉजी द्वारा गढ़ाई जा सकती है । भविष्य में प्रशासक क्लर्क न होकर, कम्प्यूटर का सफल उपभोग करने में सक्षम होंगे । इस प्रकार भविष्य में सुधार जनता को निर्णय लेने, न्यायिक सुधार, भ्रष्टाचार रोकथाम तथा प्रशासनिक सेवाओं के लिये नैतिकता व मूल्य तंत्र विकसित करने में सहायक होगा ।

4.8 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में प्रशासनिक सुधारों पर एक लेख लिखिए ।
2. विभिन्न पंच वर्षीय योजनाओं में प्रशासनिक सुधारों का उल्लेख कीजिए ।
3. राज्यों में प्रशासनिक सुधारों का उल्लेख कीजिए ।

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, चन्द्रमौलि, शर्मा अशोक एवं गोयल सुरेश : राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर. दी. एस. ए. पब्लीशर्स जयपुर, 1990
2. महेश्वरी, एस. आर.. स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1979
3. राजपूत, सरला रोल ऑफ चीफ मिनिस्टर इन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 1994
4. गहलोत, सुखवीर सिंह. राजस्थान में राज्य प्रशासन, राविरा नवम्बर, 1999
5. कटारिया, सुरेन्द्र भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2009

इकाई – 05

मुख्यमंत्री: पद, शक्तियाँ तथा राज्यपाल से सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 मुख्यमन्त्री की नियुक्ति
5.3 मुख्यमंत्री की शक्तियां
5.4 मुख्यमन्त्री तथा राज्यपाल के मध्य सम्बन्ध
5.5 मुख्यमन्त्री की प्रशासनिक भूमिका
5.6 निष्कर्ष
5.7 अभ्यास प्रश्न
5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पाओगे कि –

- मुख्यमंत्री के पद के बारे में जानकारी,
- मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के प्रावधान के बारे में,
- मुख्यमन्त्री की शक्तियों के बारे में,
- मुख्यमन्त्री एवं राज्यपाल के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में,
- मुख्यमन्त्री की राज्य प्रशासन में प्रशासनिक भूमिका के बारे में ।

5.1 प्रस्तावना

संविधान सभा की प्रारूप समिति द्वारा यह प्रावधान रखा गया है कि मन्त्रियों को राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए तथा राज्यपाल की इच्छापर्यन्त ही वे अपने पद पर बने रहने चाहिए । राज्य विधानसभा के प्रति मन्त्रियों के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में इसमें कुछ भी नहीं कहा गया था । किन्तु बाद में काफी विचार विमर्श के पश्चात् संविधान सभा द्वारा यह निश्चित किया गया कि मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जानी चाहिए तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री की सलाह पर की जानी चाहिए । सभी मन्त्री राज्यपाल की इच्छापर्यन्त ही अपने पद पर बने रहने चाहिए तथा मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से राज्य विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए । बाद में जब संविधान सभा में केन्द्रीय सरकार के प्रधानमन्त्री के कर्तव्यों पर निर्णय लिए गए तभी यह निर्णय भी लिया गया कि राज्य में मुख्यमन्त्री की स्थिति और कर्तव्य भी वैसे होंगे जैसे केन्द्र में प्रधानमन्त्री के हों ।

राज्यों में सरकारी तन्त्र को उसी प्रकार संगठित किया गया है जिस प्रकार संघीय सरकार को संगठित किया गया । राष्ट्रपति के समान ही राज्यों में राज्याध्यक्ष कहा जाता है जो कि एक संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में हैं । राज्य सरकार के मुखिया के रूप में मुख्यमन्त्री को रखा गया –है जो संघीय

स्तर पर प्रधानमन्त्री के समान है । संघ के समान राज्यों में भी प्रत्येक राज्य के लिए एक मन्त्रिपरिषद् है । मन्त्रिपरिषद् राज्य विधान सभा के एक अभिन्न अंग के रूप में है, अत: राज्य विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है । राज्यपाल, राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष है, अत: उनके नाम पर राज्य का सम्पूर्ण प्रशासन चलाया जाता है ।

परन्तु राज्य सरकार का वास्तविक शासनाध्यक्ष तो मुख्यमंत्री है । यह मन्त्रिपरिषद् का प्रमुख है अत: उसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है । उसके मन्त्रिमण्डल में कितने सदस्य होंगे तथा कब क्या परिवर्तन होगा यह मुख्यमन्त्री निश्चित करता है । राज्य के प्रति अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन में वह राज्यपाल को सलाह व सहायता प्रदान करता है । मन्त्रिमण्डल के विचारार्थ कौन से मामले रखे जाएं यह मुख्यमन्त्री ही निश्चित करता है । विधानसभा के सामने कौन से विधेयक रखे जाएं, यह भी मुख्यमन्त्री ही निश्चित करता है । विधानसभा के सत्र बुलाने, सत्रावसान करने तथा विधानसभा को भंग करने सम्बन्धी मामलों पर वह राज्यपाल को परामर्श देता है । यदि मुख्यमन्त्री त्यागपत्र दे देता है तो मन्त्रिमण्डल को भंग माना जायेगा । इन सब तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि राज्य में मुख्यमन्त्री की स्थिति उतनी ही मजबूत है जितनी केन्द्र में प्रधानमन्त्री की ।

5.2 मुख्यमंत्री की नियुक्ति

संविधान के अनुच्छेद 164 के अनुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जायेगी । इसमें मुख्यमन्त्री की योग्यताओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है । अत: मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करना राज्यपाल के लिए अनेक बार जटिल बन जाता है । विशेषकर उस समय जब विधानसभा में राजनीतिक दलों की स्थिति स्पष्ट नहीं हो । संविधान के अनुरूप राज्यपाल उसी व्यक्ति को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित कर सकता है जो विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल को नेता हो । वह विधानसभा या विधान परिषद् के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है । यदि विधानसभा का बहुमत दल किसी ऐसे व्यक्ति को अपना नेता मान ले जो विधानमण्डल का सदस्य न हो तो राज्यपाल ऐसे व्यक्ति को भी मुख्यमन्त्री पद के लिए आमन्त्रित कर सकता है । किन्तु ऐसे व्यक्ति को मुख्यमन्त्री बनने के बाद छः महीने की अवधि में विधानमण्डल का सदस्य बनना अनिवार्य है ।

मुख्यमन्त्री की नियुक्ति में राज्यपाल को जिन विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है उनका एक चित्र हम यहां प्रस्तुत कर सकते हैं:

1. मुख्यमन्त्री की नियुक्ति को लेकर उस समय राज्यपाल की पसन्द या नापसन्द का प्रश्न नहीं उठता है जब सदन में किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत होता है । उस समय मुख्यमन्त्री की नियुक्ति में राज्यपाल की भूमिका मात्र औपचारिक होती है ।
2. वही बात उस समय की होती है जब चुनाव से पूर्व बने सांझा दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है । सांझा दल के नेता को राज्यपाल सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है ।
3. राज्यपाल के सामने उस समय बड़ी विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है कि सदन में किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत न हो और न ही चुनाव से पूर्व कोई सांझा दल बना हो जिसने स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया हो । अब प्रश्न उठता है कि यदि चुनाव के बाद कुछ दल मिलकर सांझा–दल बना लें और बहुमत का दावा करें तो उसके नेता को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया जाये या नहीं? चतुर्थ आम चुनावों के बाद इस तरह का विवाद कई राज्यों में उठा था । कुछ राज्यों के राज्यपालों ने सांझा दल को मान्यता दे दी थी और कुछ राज्यों के राज्यपालों ने सांझा दल को

मान्यता नहीं दी गई थी – जैसे राजस्थान के सम्पूर्णानन्द जी ने चुनावों के बाद बने संयुक्त दलन को मान्यता नहीं दे दी थी । यदि हम संवैधानिक आवरण में देखें तो मान्यता नहीं देना अप्रजातांत्रिक दृष्टिकोण है । अत: काफी वाद–विवाद के बाद यह निर्धारित किया गया कि चुनावों के पश्चात् बने सांझा दल का नेता स्पष्ट बहुमत प्राप्त होने पर सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया जाना चाहिए ।

4. परन्तु उस समय परिस्थिति और भी विवादास्पद हो जाती है जब न तो कोई स्पष्ट बहुमत प्राप्त दल हो और न ही चुनाव के पूर्व या पश्चात् कोई सांझा दल बना हो । राज्यपाल को ऐसी परिस्थिति में कुछ समय इन्तजार करना चाहिये । शायद कुछ दल साथ मिलकर सरकार बनाने को तैयार हो जायें । उसका इसकी सूचना राष्ट्रपति को भी देनी चाहिए । इस समय राज्यपाल अपने स्वविवेक का वास्तविक रूप में उपयोग करना है । इस बात का ध्यान रखता है कि किसी भी अनावश्यक विवाद का सूत्रपात न हो । यदि सबसे बड़े दल की स्थिति मजबूत करता है तो अनेक बार उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित कर देता है परन्तु उसकी स्थिरता को ध्यान में रख कर ही ऐसा करता है ।
5. अनेक बार ऐसा भी होता है कि राज्यपाल किसी व्यक्ति को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करने से पूर्व स्वयं भी परिस्थिति का जायजा ले लेता है । यदि वह संतुष्ट होता है तो उसे आमन्त्रित करता है । यदि कोई भी दल इस स्थिति में नहीं है कि सरकार बना सके तो ऐसी उलझनपूर्ण स्थिति में वह महाधिवक्ता से सलाह लेता है ।
6. मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के अतिरिक्त (चुनावों के बाद) उस समय राज्यपाल को क्या करना चाहिए, जब कोई मुख्यमन्त्री त्यागपत्र दे दे या उसकी मृत्यु हो जाये? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है । यदि बहुमत प्राप्त दल किसी अन्य व्यक्ति को अपना नेता मान लेता है तब तो कोई परेशानी नहीं होती है जैसा कि तमिलनाडू में एक बार हुआ, अन्ना दुराई की मृत्यु के पश्चात् करुणानिधि को मुख्यमन्त्री बना दिया गया । कठिनाई का सामना उस समय करना पड़ता है जब अनेक महत्वाकांक्षी नेता मुख्यमन्त्री पद के दावेदार हों । ऐसी स्थिति में राज्यपाल को कुछ समय इन्तजार करना चाहिए जब तक कि परिस्थिति सामान्य व स्पष्ट न हो जाये । केन्द्र व राज्य में एक ही दल का बहुमत होने की स्थिति में ऐसे अवसरों पर प्राय: केन्द्रीय हस्तक्षेप भी होता रहा है । यदि राज्य में किसी अन्य दल को बहुमत मिला हो तो उस दल के केन्द्रीय नेता भी ऐसी स्थिति में हस्तक्षेप करते हैं । ऐसी राजनीतिक तनाव की स्थिति में राज्यपाल को कितनी भी प्रतीक्षा करनी पड़े परन्तु जब तक किसी व्यक्ति के पास पूर्ण बहुमत न हो, उसे मुख्यमन्त्री बनाने के लिए आमन्त्रित नहीं करना चाहिए, अन्यथा राज्य में कभी भी अस्थिरता का सामना करना पड़ सकता है ।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि मुख्यमन्त्री की नियुक्ति पूर्णतया राज्यपाल के स्वविवेक पर निर्भर करती है, परन्तु राज्यपाल को अपनी इस शक्ति का उपयोग बुद्धिमता पूर्ण तरीके से बिना किसी भेद–भाव के करना चाहिए । परन्तु हमारे यहां राज्यपालों को दो दुर्भाग्य पूर्ण स्थितियों का सामना करना पड़ा है ।

(i) एक तो यह कि हमारे यहां राज्य के नेतृत्व का सामना उस दल के केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा तय किया जाता है । सामान्यत: चुनावों के बाद राज्य के नेता तुरन्त दिल्ली भागते हैं और केन्द्रीय नेता

जिस भी व्यक्ति को चाहे राज्य पर थोप देते है, उसे ही मुख्यमन्त्री बनाना पड़ता है । चाहे उस व्यक्ति की राज्य विधानसभा के कैसी भी स्थिति हो, उस दल के विधायकों को दलीय अनुशासन के नाम पर उस व्यक्ति का मौन समर्थन करना पड़ता है । प्रभावशाली विधायक अपने मन्त्री पद की इच्छा के कारण समर्थन को विवश होते हैं ।

(ii) दूसरा, संविधान में यह कहीं भी नहीं लिखा हुआ है कि मुख्यमन्त्री को विधानसभा का नेता होना चाहिए और न ही यह स्वस्थ परम्परा हम देश में विकसित कर पाये हैं । इसके लिए हम मुख्यत: दोषी मानते हैं, कांग्रेस दल को । सामान्यत: राज्यपाल को उस व्यक्ति को मुख्यमन्त्री बनाना पड़ता है जिसे केन्द्रीय नेतृत्व हो चाहे वह चुनावों में हार ही क्यों न चुका हो । 1951 में महाराष्ट्र में यही हुआ था । मोरारजी देसाई चुनाव में हारने के पश्चात् उच्च सदन के सदस्य बन गये और केन्द्रीय निर्देशों पर उन्हें मुख्यमन्त्री बना दिया गया ।

अत: आवश्यकता इस बात की है कि राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के सम्बन्ध में अपनी स्वविवेक की शक्ति का उपयोग बहुत सचेत होकर करे ताकि वह इस दोषारोपण से बच सके कि राज्यपाल ने पक्षपातपूर्ण तरीके से नियुक्ति की है । मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के सम्बन्ध में उसे जल्दबाजी से काम नहीं लेना चाहिए परन्तु साथ ही अनावश्यक विलम्ब भी नहीं करना चाहिए ।

संविधान में आगे यह लिखा गया है कि मुख्यमंत्री अपने पद पर राज्यपाल की इच्छापर्यन्त काम कर सकेगा । इसका यह अभिप्राय नहीं है कि राज्यपाल किसी मुख्यमन्त्री को उसके पद से हटाकर अपने स्वविवेक से नया मुख्यमंत्री नियुक्त कर देगा । वास्तविकता यह है कि यदि उसने विधानसभा में अपना बहुमत खो दिया है तो राज्यपाल उसे त्यागपत्र देने के लिए कह सकता है । यदि राष्ट्र-नियोजन लागू करके फिर चुनाव करवाये जायें और वह व्यक्ति दुबारा स्पष्ट बहुमत से जीतकर आ जाये तो राज्यपाल को पुन: मुख्यमंत्री नियुक्त कर देता है।

5.3 मुख्यमंत्री की शक्तियां

मुख्यमंत्री के कार्य तथा शक्तियों में सिद्धान्त व व्यवहार में बहुत अन्तर है सैद्धान्तिक रूप से इसकी शक्तियाँ लगभग प्रधानमंत्री जैसी ही है । परन्तु व्यावहारिक रूप से मुख्यमंत्री या तो राज्य सरकार के प्रबल मुखिया के रूप में दिखाई पड़ता है या वह राज्य सरकार का एक बहुत कमजोर नेता हो सकता है । वास्तविक रूप से देखा जाये तो वह परिस्थितियों का दास होता है । यहाँ पहले हम इसके कार्यों व शक्तियों को देख लेते है:

(1) यह राज्य सरकार का कार्यकारी प्रमुख है इस रूप में वह अनेक मामलों में राज्यपाल को सलाह देता है – जैसे अपने मंत्रियों के चयन में मंत्रीमण्डल स्तर के मंत्री, राज्य मंत्री, उपमंत्री तथा संसदीय सचिव आदि के चयन में सलाह देता है । मंत्रियों में विभागों को वितरण करवाता है । इनके विभागों में कभी भी परिवर्तन करवा सकता है तथा कभी भी इनके पद से हटवा सकता है । व्यवहार में मुख्यमंत्री ही मंत्रियों की सूची राज्यपाल को देता है, जिसके अनुसार राज्यपाल उस सूची के लोगों को शपथ ग्रहण करवा कर मंत्रीमण्डल का औपचारिक गठन करा देता है । मंत्रीमण्डल के गठन के मामले में मुख्यमंत्री का स्वविवेक अन्तिम माना जाता है।

(2) यह मंत्रिपरिषद् का मुख्य अभियंता है, उसका निर्माण तथा उसे भंग करने का उत्तरदायित्व उसी का है । यह मंत्रिपरिषद की मेहराब का मुख्य पत्थर है। मंत्रिपरिषद् का मुखिया होने के नाते इसे कुछ मामलों को देखना पड़ता है:

(i) व्यवस्थापिका के सम्मुख रखने से पूर्व किसी नीति को अन्तिम रूप देना;

(ii) व्यवस्थापिका द्वारा अनुमोदित नीति के अनुसार कार्यपालिका पर सम्पूर्ण नियन्त्रण रखना;

(iii) राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में निरन्तर समन्वय बनाये रखना तथा उनकी शक्तियों का नियमन करना।

(3) यह अपनी मंत्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है तथा देखता है कि सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पालन किया जा रहा है या नहीं । यदि कोई मंत्रीमण्डल के नीति से मित्र अपने विचार रखता है तो वह उस मंत्री को त्यागपत्र देने के लिए कह देता है या राज्यपाल को, उसे पद से हटा देने की सलाह दे देता है । इस सम्बन्ध में मुख्यमंत्री का निर्णय अन्तिम और निर्विवाद माना जाता है ।

(4) राज्य प्रशासन से सम्बन्धित तथा विज्ञान के प्रस्तावों से सम्बन्धित जो भी निर्णय मंत्रिपरिषद् में लिए जाते हैं उनकी सूचना राज्यपाल को देता है ।

(5) राज्य के प्रशासन तथा विधान के प्रस्तावों से सम्बन्धित और भी अन्य सूचनाएं वह महत्वपूर्ण समझता है राज्यपाल को प्रेषित करता है । राज्यपाल भी उससे किसी भी प्रकार की प्रशासन संबंधी सूचना माँग सकता है।

(6) राज्यपाल जिन मामलों को मंत्रिपरिषद के सामने रखना चाहता है तो निर्णय के लिए उनको मुख्यमंत्री अपनी मंत्रिपरिषद् के समक्ष रखता है ।

(7) वह राज्यपाल तथा मंत्रिपरिषद् के मध्य संचार के साधनों के रूप में कार्य करता है । जैसे मंत्री किसी मामले के लिए राज्यपाल से मिलना चाहते हैं या राज्यपाल मंत्रियों से मिलना चाहते हैं तो मुख्यमंत्री उचित सूचना दोनों को देता है ।

(8) यह अपनी मंत्रिपरिषद् तथा राज्य विधानसभा के मध्य भी संचार के साधन के रूप में कार्य करता है । विधानसभा में जो भी विशेष प्रस्ताव रखे जाते हैं उनके लिए मुख्यमंत्री की पूर्वानुमति आवश्यक है । मंत्री विधानसभा में वही बोलते हैं जो वह निर्देश देता है । विधानसभा में सरकार की बहुत आलोचना हो रही हो तो वह स्वयं विरोधियों के तर्कों का उत्तर देता है तथा अपनी सरकार को गिरने से बचाता है ।

(9) मुख्यमंत्री बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है अत: दल में अनुशासन बनाये रखना इसका कर्तव्य है ।

(10) राज्य में राज्यपाल की नियुक्ति करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार को मुख्यमंत्री से सलाह लेनी होती है ।

(11) वह अपना त्यागपत्र कभी भी राज्यपाल को दे सकता है, जब भी चाहे किसी मंत्री को पद से हटवा सकता है, राज्य विधानसभा को भंग करवा सकता है तथा राष्ट्रपति शासन के लिए सलाह दे सकता है । परन्तु यह राज्यपाल की इच्छा पर निर्भर करता है कि जाने वाले मुख्यमंत्री की सलाह को माना जाये या नहीं माना जाये ।

मुख्यमंत्री मंत्रिपरिषद् का ही सदस्य होता है, परन्तु अपनी स्थिति के कारण यह अन्य मंत्रियों की अपेक्षा अधिक शक्तियों का उपभोग करता है । यह मंत्रिपरिषद् से संबंधित प्रतिदिन के कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्य भी करता है– जैसे मंत्रीमण्डल की बैठकों की कार्य–सूची पर, नियन्त्रण रखना, बैठकों में होने वाले विचार–विमर्श को सही दिशा प्रदान करना, आदि । इसके अतिरिक्त यह सरकार के विभिन्न विभागों के कार्यों को भी नियमित करता है । वह विभागों पर व्यक्तिगत नियन्त्रण के अतिरिक्त विभिन्न विभागों तथा मंत्रियों के संबंध में एक मंत्री का दूसरे मंत्री से टकराव हो सकता है, इस तरह के मामलों में मुख्यमंत्री दोनों की बात सुनकर समन्वय स्थापित करता है । इस सारी प्रक्रिया में मुख्यमंत्री से आशा की जाती है कि वह दोनों मंत्रियों के बीच प्रभावशाली तरीके से सहयोग और समन्वय स्थापित करेगा ।

मुख्यमंत्री की इन शक्तियों तथा कार्यों के अतिरिक्त हमें उसकी सत्ता के व्यावहारिक पहलू को भी देखना चाहिए । मुख्यमंत्री की वास्तविक स्थिति क्या होगी; यह मुख्यत: तीन परिस्थितियों पर निर्भर करती है:

(1) सत्तारूढ़ दल का मुख्यमंत्री जो कि बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है उसकी स्थिति बहुत मजबूत होती है, क्योंकि राज्यपाल भी उसकी बात मानने के लिए बाध्य होता है तथा व्यवस्थापिका उसके हाथ की कठपुतली की तरह होती है । इस पर दल के मुख्यमंत्रियों का वरद्–हस्त होता है । अधिकतर मामलों में वह प्रधानमंत्री का व्यक्ति होता है । निश्चित रूप से इस तरह का मुख्यमंत्री एक कमजोर विरोधी दल की बात को विधानसभा में कोई महत्व नहीं देता । उसको इस बात का पूर्ण विश्वास होता है कि जो भी विधेयक व प्रस्ताव सरकार द्वारा रखे जायेंगे वे सभी व्यवस्थापिका स्वीकार कर लेगी तथा उसके मन्त्रिमण्डल के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव विधान सभा में पारित नहीं होगा ।

(2) यदि, मुख्यमन्त्री एक ऐसे दल का नेता है, जिसका दल– केन्द्र में सत्तारूढ़ नहीं है, तो उसकी स्थिति इतनी मजबूत नहीं होगी । ऐसे मुख्यमन्त्री को एक विरोधी राज्यपाल का सामना करना पड़ सकता है, क्योंकि राज्यपाल केन्द्र द्वारा नियुक्त व्यक्ति होता है । 1967 में चतुर्थ आम चुनावों के पश्चात् गैर कांग्रेसी राज्य सरकारों को इस. तरह की परिस्थिति का सामना करना पड़ा था, क्योंकि केन्द्र में कांग्रेस सरकार ही सत्तारूढ़ थी और 9 राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें स्थापित हो गई थीं । इसी तरह परिस्थिति 1977 में भी थी, जब केन्द्र में जनता दल का शासन था तथा कुछ राज्यों में गैर जनता दल की सरकारें थी, वर्तमान में भी ऐसी ही स्थिति है । इस तरह की परिस्थिति में मुख्यमन्त्री को राज्यपाल की आलोचनात्मक भूमिका का सामना करना पड़ सकता है । परन्तु मुख्यमन्त्री को बहुत ही सावधानी से अपना कार्य करना चाहिए ताकि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों के उपयोग को रोका जा सके । मुख्यमन्त्री को विधानसभा की ओर से कोई आशंका नहीं होती है जक तक कि उसके दल के लोगों में कोई अनावश्यक तोड़–फोड़ न करे । इस तरह की स्थिति तमिलनाडू में ए. आई. डी. एम. के. सरकार के समक्ष तथा पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी साम्यवादी सरकार के समक्ष आ चुकी है ।

(3) एक संयुक्त सरकार का मुख्यमन्त्री वस्तुत: परिस्थितियों का दास बन जाता है, जो दल मिलकर सरकार बनाते हैं उनकी प्रसन्नता पर उसे अपने अस्तित्व के लिए निर्भर रहना

पड़ता है । किसी भी दल के अलग हो जाने या असहयोग करने का डर हमेशा सिर पर सवार रहता है । अत: उसे हमेशा इस बात के लिए सावधान रहना पड़ता है कि उसके दल में कोई दरार नहीं पड़े । 1967 से 1971 के काल में इस तरह की स्थिति का सामना मुख्यमन्त्रियों को करना पड़ा था, क्योंकि कुछ राज्यों में साझा सरकारें बनी थी । जहां भी साझा सरकारें खत्म हुई थी, उसका मुख्य कारण मुख्यमन्त्री के नेतृत्व का अप्रभावशाली होना था । सांझा सरकार के मुख्यमन्त्री के विरोधी सभी मोर्चों पर होते हैं – जैसे राजभवन में, मन्त्रिपरिषद् में, राज्य विधानसभा में तथा संघीय सरकार में भी ।

5.4 मुख्यमंत्री तथा राज्यपाल के मध्य संबंध

मुख्यमंत्री तथा राज्यपाल मध्य सम्बन्ध मुख्यमन्त्री तथा राज्यपाल के मध्य सम्बन्धों की समस्या बहुत नाजुक है । संवैधानिक रूप से राज्यपाल की सर्वोच्च स्थिति है परन्तु व्यावहारिक रूप में, प्रमुख प्रशासनिक मामलों में, मुख्यमन्त्री की निर्णायक आवाज होती है । क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 163 में लिखा है कि राज्यपाल को अपने कृत्यों का निर्वहन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमन्त्री होगा । मुख्यमन्त्री सिर्फ उन मामलों को छोडकर जो राज्यपाल के स्वविवेकीय क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं, अन्य सभी मामलों में उसे परामर्श देता है । अनुच्छेद 164 में लिखा है कि मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जायेगी तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति। मुख्यमन्त्री की सलाह पर राज्यपाल द्वारा की जायेगी तथा ये राज्यपाल की इच्छापर्यन्त ही अपने पद पर बने रहेंगे ।

यह स्पष्ट है कि मुख्यमन्त्री की नियुक्ति सम्बन्धी मामला राज्यपाल की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत आता है, परन्तु इस सम्बन्ध में कोई मामला न्यायालय में चुनौती के लिए नहीं ले जाया जा सकता । कलकत्ता उच्च न्यायालय में नवम्बर, 1967 में वहां के राज्यपाल धर्मवीर के विरूद्ध मुकदमा पेश किया गया था, क्योंकि उन्होंने अजय मुखर्जी को हटाकर पी. सी. घोष को मुख्यमन्त्री नियुक्त कर दिया था, परंतु यह मुकदमा दर्ज नहीं किया गया । इससे स्पष्ट होता है कि राज्यपाल की मुख्यमन्त्री को नियुक्त करने या उसे पद से हटाने की शक्ति पूर्णत: स्वविवेक प्रकृति की है ।

मुख्यमन्त्री के चयन से सम्बन्धित राज्यपाल की सीमित या असीमित शक्ति राज्य की राजनीतिक स्थिति पर निर्भर करती है । यदि विधानसभा में एक दल का पूर्ण बहुमत है तो यह सीमित है, क्योंकि बहुमत दल के नेता को मुख्यमन्त्री बनाने के लिए वह बाधित है । यदि विधानसभा में दलों की स्थिति अस्पष्ट है तो राज्यपाल की मुख्यमन्त्री को चयन करने की शक्ति असीमित है, क्योंकि ऐसी स्थिति में राज्यपाल अपनी स्वविवेकीय शक्ति का प्रयोग करता है । ऐसी स्थिति में वह चाहे सांझा दल के नेता या सबसे बड़े दल के नेता, किसी को भी मुख्यमन्त्री बनाने के लिए आमन्त्रित कर सकता है ।

जिस प्रकार राज्यपाल मुख्यमन्त्री को नियुक्त करने में अपनी स्वविवेकीय शक्ति का उपयोग कर सकता है उसी प्रकार निम्न तीन परिस्थितियों में मुख्यमन्त्री को पद से हटाने के लिए भी अपनी स्वविवेकीय शक्ति का उपयोग कर सकता है:

1. यदि राज्यपाल को इस बात का पूर्ण विश्वास है कि मुख्यमन्त्री ने विधानसभा में अपना बहुमत खो दिया है, तो वह मुख्यमन्त्री को पद से हटा सकता है ।

2. यदि राज्यपाल को यह विश्वास हो जाये कि मंत्रिपरिषद् के निर्णय संविधान की भावना का उल्लंघन कर रहे हैं या केन्द्र द्वारा निर्देशित आदेशों को नहीं मान रहे हैं और इसके कारण केन्द्र–राज्य विवाद उठ खड़े हुए हैं तो वह मुख्यमन्त्री को पद से हटा सकता है ।
3. यदि विधानसभा में पराजय के बाद भी मुख्यमन्त्री अपना त्यागपत्र नहीं दे या यह देखने के लिए कि विधानसभा में इसका पूर्ण बहुमत है या नहीं, विधानसभा का सत्र बुलाने से इनकार कर दे तो राज्यपाल मुख्यमन्त्री को पद से बर्खास्त कर सकता है ।

परन्तु इस प्रकार का कोई कड़ा कदम उठाने में राज्यपाल को भावनात्मक तरीके से या पक्षपातपूर्ण तरीके से काम नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे उद्देश्यपूर्ण तथा निष्पक्ष रवैया अपनाना चाहिए, ताकि सभी दलों को संतुष्ट किया जा सके ।

संविधान में तो बहुत ही स्पष्ट लिखा हुआ है कि मुख्यमन्त्री अपने पद पर राज्यपाल के 'प्रसाद पर्यन्त' ही रह सकता है । यहां 'प्रसाद पर्यन्त' शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है । 'प्रसाद पर्यन्त' शब्द की व्याख्या के क्रम में डी. अम्बेडकर का यह मानना था कि संविधान की भावना के अनुसार मंत्री अपने पद पर तभी तक रह सकते हैं जब तक कि उन्हें बहुमत का विश्वास प्राप्त हो । राज्यपाल, मुख्यमन्त्री को पद से तभी हटायेगा जब उसे इस बात का विश्वास हो जाये कि उसको विधानसभा का विश्वास प्राप्त नहीं है ।

यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि संकटकालीन परिस्थिति में ही राज्यपाल, मुख्यमन्त्री की सलाह मानने से इंकार कर सकता है, अन्यथा वह मुख्यमन्त्री की सलाह मानने के लिए बाध्य है । भूतपूर्व राज्यपाल श्री आर. आर. दिवाकर का कहना है कि कुछ मामलों में राज्यपाल व मुख्यमन्त्री की राय भिन्न हो जाती है जैसे – अपराधियों के दण्ड को कम करना या माफ कर देना, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति, कुलपतियों की नियुक्ति विश्वविद्यालय की सिंडीकेट के लिए सदस्यों का मनोनयन, राष्ट्रपति को भेजा जाने वाला राज्यपाल का गुप्त प्रतिवेदन, राज्य की अनुसूचित जाति तथा जनजाति के संबंध में राज्यपाल का प्रतिवेदन, आदि ।

राज्यपाल के कुछ महत्वपूर्ण कर्तव्य भी हैं परन्तु उनको, शक्ति की अपेक्षा प्रभाव से निष्पादित करना चाहिए । वह अपने कर्तव्यों को कैसे निभाता है यह राज्यपाल के व्यक्तित्व पर तथा मुख्यमन्त्री के साथ उसके सम्बन्धों पर निर्भर करता है । सामान्यत: मुख्यमन्त्री बहुत नाजुक होते हैं तथा राज्यपाल को राज्य प्रशासन के सम्बन्ध में सूचित करने में अनिच्छुक रहते हैं, जैसा कि उन्हें संविधान के अनुच्छेद 167 के अनुसार करना चाहिए । अत: यह बहुत आवश्यक है कि संतुलित व्यक्तित्व का व्यक्ति राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया जाये ताकि राज्यपाल तथा मन्त्रिपरिषद् आपसी समझ से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करके राज्य प्रशासन में स्वस्थ परम्पराएं स्थापित कर सकें । इसीलिए संविधान सभा में यह कहा गया था कि राज्यपाल को नियुक्ति से पूर्व उस राज्य के मुख्यमन्त्री से सलाह ले लेनी चाहिए, ताकि दोनों सुस्पष्ट समझ व सहयोग से कार्य कर सकें । यद्यपि विगत वर्षों में इस परम्परा का निर्वाह नहीं किया गया । जिस प्रकार मुख्यमन्त्री राज्य पर केन्द्रिय नेतृत्व द्वारा थोपे जाते हैं, उसी प्रकार राज्यपाल भी मुख्यमन्त्री की सलाह के बिना ही थोपे जाने लगे हैं ।

परन्तु राज्य प्रशासन के कुशल संचालन के लिए अति आवश्यक है कि मुख्यमन्त्री अपने सभी कार्यों में राज्यपाल की सलाह ले लें । दोनों को ही कार्यों के निष्पादन के लिए कुछ मूलभूत सिद्धांत बना लेने चाहिए और तदनुसार कार्य करते हुए कुछ स्वस्थ परम्पराएं स्थापित करनी चाहिए ।

5.5 मुख्यमंत्री की प्रशासनिक भूमिका

किसी भी मुख्यमन्त्री की, राज्य प्रशासन में मुख्य भूमिका, अपनी सरकार के विभिन्न विभागों व प्रशासनिक कार्यों में समन्वय स्थापित करना तथा उनका पर्यवेक्षण करना है । राजस्थान में, विभिन्न प्रशासनिक विभागों में सबसे अच्छा समन्वय मुख्यमन्त्री श्री सुखाड़िया के शासनकाल में था । जब भी किसी विभाग में कोई स्थानान्तरण किया जाता था तो राज्य प्रशासन में अधिक समन्वय तथा प्रशासनिक कार्य अधिक प्रभावशाली ढंग से हो सकेंगे इस उद्देश्य को ध्यान में रखा जाता था । मुख्यमन्त्री को विभागों में परिवर्तन कभी यह सोचकर करना चाहिए कि इनके इस विभाग में आ जाने से विभाग का कार्य अधिक कार्यकुशल ढंग से हो सकेगा । मुख्यमन्त्री को विभागों के कार्यों पर सख्त निगरानी रखनी चाहिये ताकि आवश्यकता पड़ने पर कभी भी परिवर्तन किया जा सके ।

जहां तक मुख्यमन्त्री व प्रशासन के मध्य समन्वय की बात है, कोई भी संसदात्मक प्रजातंत्र तक सफलता से कार्य नहीं कर सकता, जब तक कि विधायक, मंत्री व लोक–सेवक मिल–जुल कर सफलता से कार्य नहीं करें । तीनों को अपनी भूमिका ईमानदारी से निभाते हुए अपनेकार्यों का निष्पादन करना चाहिए । ये तीनों राज्य प्रशासन के सहयोगी हैं और यह भागीदारी यदि बेईमानी पर आधारित हुई तो इसका प्रभाव लोक कार्मिकों की नैतिकता पर पड़ेगा । परन्तु इन तीनों में एक दूसरे के प्रति अच्छी भावना और सहयोग पैदा करने की मुख्य जिम्मेदारी मुख्यमन्त्री की हे ।

यदि हम संवैधानिक दृष्टि से बात करें तो राज्य प्रशासन के लिए नीतियों का निर्माण मुख्यमन्त्री व मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है, परन्तु व्यावहारिक रूप से इन नीतियों के निर्माण में उच्च लोक–सेवकों द्वारा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जाती है । यही नहीं बल्कि लोक सेवक इन नीतियों के अनुरूप एक विस्तृत कार्यक्रम भी तैयार करते हैं । उच्च स्तरीय कार्मिक वर्ग, कार्यक्रमों तथा नीतियों के क्रियान्वयन के लिए, विभागीय वित्तीय स्रोतों को इकट्ठा करने के लिए तथा मध्य स्तर व निम्न स्तर द्वारा मुख्यालय व क्षेत्र में, वास्तविक रूप में जो क्रियान्वयन का कार्य किया जा रहा है, उसका पर्यवेक्षण करने के लिए, उत्तरदायी है । परन्तु यह सब कार्य किया जा रहा है, उसका पर्यवेक्षण करने के लिए, उत्तरदायी है । परन्तु यह सब कार्य करते हुए उच्च स्तरीय कार्मिक वर्ग मंत्रियों के प्रति उत्तरदायी है । मंत्री अपने विभागों को राजनीतिक तथा प्रशासनिक दोनों प्रकार का नेतृत्व प्रदान करते हैं । मंत्री केवल नीतियों का निर्माण ही नहीं करते हैं, बल्कि नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिए उच्च स्तरीय कार्मिकों को उत्साहित भी करते है, परन्तु इस बात का ध्यान रखते हैं कि कार्मिक वर्ग राजनीतिक रूप से तटस्थ रह कर कार्य कर सके । यद्यपि कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने की शक्ति प्रशासनिक अधिकारियों को हस्तांतरित कर दी जाती है, परन्तु मंत्री इन पर पर्यवेक्षण व नियंत्रण रखते हैं ।

किसी भी राज्य में मुख्य सचिव स्थायी लोक सेवा का प्रमुख होता है तथा मुख्यमन्त्री राज्य की राजनैतिक कार्यपालिका का प्रमुख होता है । मुख्यमन्त्री अपने मंत्रीमण्डल की सलाह से सभी राजनैतिक निर्णय लेता है तथा मुख्य सचिव इन निर्णयों के क्रियान्वयन व निष्पादन के लिए उत्तरदायी

है । मुख्य सचिव राजनैतिक व प्रशासकीय कार्यपालिका के मध्य एक सम्पर्क अधिकारी के रूप में कार्य करता है । यह मुख्यमन्त्री का विश्वासपात्र व्यक्ति होता है । मुख्य सचिव सभी मन्त्रिमण्डलीय बैठकों में भाग लेता है तथा इसी सलाह मुख्य नीतिगत मामलों पर ली जाती है । यह किसी भी नीति–निर्णय के क्रियान्वयन में होने वाली परेशानियों के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार प्रकट करता है । यद्यपि मुख्यमन्त्री चाहे तो उसके सुझावों की अवज्ञा कर सकता है, परन्तु प्रशासन को कुशलता से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों सहयोग से कार्य करें ।

मुख्यमन्त्री व अन्य सचिवों के मध्य कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता है । प्रत्येक सचिव अपने मन्त्री के प्रति उत्तरदायी है तथा वह मुख्य सचिव के प्रति भी उत्तरदायी है । मुख्यमन्त्री को सचिवों से प्रत्यक्ष रूप से बोलना नहीं पड़ता है बल्कि वह मुख्य सचिव के द्वारा कार्य करवा लेता है, परन्तु वह चाहे तो किसी भी सचिव से औपचारिक रूप से मिल सकता है । मुख्यमन्त्री उन विभागों के प्रतिदिन के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता है जो उसके अधीन नहीं है । सामान्यत: उसके पास दो या तीन विभाग होते हैं । उनके सम्बन्ध में वह स्वयं निर्णय ले सकता है, परन्तु अपने मन्त्रिमण्डल की सलाह से ही लेता है । अन्य विभागों में मन्त्री व सचिव के जैसे सम्बन्ध होते हैं, वैसे ही संबंध मुख्यमन्त्री के अपने विभागों में सचिवों के होते हैं । इसके पास सामान्यत: सामान्य प्रशासन विभाग तथा कार्मिक विभाग होते हैं ।

5.6 निष्कर्ष

मुख्यमन्त्री प्रशासन का नैतिक स्तर बनाये रखने के लिए उत्तरदायी है । व्यवस्थापिका में होने वाली आलोचना का जवाब देना इसका संवैधानिक तथा नैतिक कर्त्तव्य है । विधानसभा के सामने वह प्रशासन के संरक्षक की भूमिका निभाता है। मुख्यमन्त्री को राज्य स्तर के प्रशासन के साथ–साथ जिला स्तर के प्रशासन पर भी निगरानी रखनी पड़ती है । इसके लिए वह एक वार्षिक सम्मेलन बुलवाता है जिसमें सभी सचिव, विभागों के प्रमुख तथा जिलाधीश भाग लेते हैं । वह उस सम्मेलन की अध्यक्षता करता है । अत: राज्य प्रशासन के कुशल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं समस्त नीतियों के कार्यक्रमों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण करे, परन्तु उनके क्रियान्वयन का कार्य आवश्यक दिशा–निर्देश जारी करके सचिवों पर छोड़ दे, ताकि वे बिना किसी बाधा के अपना कार्य कर सकें । मुख्यमन्त्री को उनसे दबाव की अपेक्षा सहयोग व आपसी समझ से काम लेना चाहिए ताकि उनके मन में मंत्रियों के प्रति एक आदर की भावना पैदा हो सके। सचिवों पर नियंत्रण केवल उनको कार्य–कुशल व ईमानदार बनाये रखने तक ही किया जाना चाहिए । उनके कार्य में अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप अवांछनीय तथा अहितकर होगा ।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. राज्य प्रशासन में मुख्यमन्त्री की भूमिका की समीक्षा कीजिये ।
2. मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के प्रावधानों का उल्लेख कीजिये ।
3. मुख्यमन्त्री की शक्तियों की विवेचना कीजिये ।
4. मुख्यमन्त्री तथा राज्यपाल के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिये ।

5.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, चन्द्रमौलि, शर्मा अशोक एवं गोयल सुरेश : राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लीशर्स, जयपुर, 1990
2. महेश्वरी, एस. आर.. स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, मैकमिलन नई दिल्ली, 1979
3. राजपूत, सरला रोल ऑफ चीफ मिनिस्टर इन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1994
4. गहलोत, सुखवीर सिंह. राजस्थान में राज्य प्रशासन, राविरा नवम्बर, 1999
5. कटारिया, सुरेन्द्र : भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2009

इकाई – 06

राजस्थान लोक सेवा आयोग

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 राजस्थान लोक सेवा आयोग का विकास
6.3 संगठन
   6.3.1 आयोग का सचिवालय एवं स्टाफ
   6.3.2 सदस्यों का कार्यकाल
   6.3.3 वेतन एवं भत्ते
   6.3.4 त्याग–पत्र
   6.3.5 सेवा विमुक्ति
6.4 सांगठनिक संरचना
6.5 राजस्थान लोक सेवा आयोग के दायित्व / कार्य
   6.4.1 भर्ती प्रक्रिया का क्रियान्वयन: परीक्षा तथा साक्षात्कार का आयोजन
   6.4.2 पदोन्नति से सम्बन्धित दायित्व
   6.4.3 अनुशासनिक कार्यवाही सम्बन्धी दायित्व
   6.4.4 परामर्श सम्बन्धी दायित्व
6.6 महत्व
6.7 वार्षिक प्रतिवेदन
6.8 प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें
6.9 सारांश
6.10 शब्दावली
6.11 अभ्यास प्रश्न
6.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको इस योग्य होना चाहिए कि आपको:

1. राज्य कार्मिक, एजेन्सी को समझने;
2. राजस्थान लोक सेवा आयोग की भूमिका तथा कार्यों पर चर्चा करने;
3. लोक सेवा आयोग के क्रम विकास तथा उनकी परामर्शदात्री भूमिका पर चर्चा;
4. लोक सेवा आयोग की इकाईयों की चर्चा करने; एवं
5. राज्य लोक सेवा आयोग का महत्व ।

6.1 प्रस्तावना

कार्मिक वर्ग के प्रशासन में लोक सेवा आयोग का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान होता है । प्राय: सभी देशों में कार्मिक प्रशासन को उचित रूप से संचालित करने के लिए लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गई है ।

राजस्थान लोक सेवा आयोग का दायित्व राज्य प्रशासन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए अधिकारियों–कर्मचारियों का चयन करना है ।

6.2 राजस्थान लोक सेवा आयोग का विकास

1949 में राजस्थान का गठन होने से पहले आयोग रजवाड़ों में अपनी अलग–अलग शासन व्यवस्थायें थी । राजा द्वारा कुलीन वर्ग एवं स्वामी भक्ति के आधार पर राज्य सेवा में ले लिया जाता था । अधिकांश नियुक्तियाँ शासन में बैठे व्यक्तियों की अनुशंसाओं पर होती थी । प्रतियोगिता के आधार पर सबसे अच्छे व्यक्ति की प्रथा नहीं थी । रजवाड़ी में पढ़े लिखे लोग कम होते थे, अत: कई बार पढ़े लिखे उपलब्ध व्यक्तियों को रोजगार मिल जाता था, स्वतंत्रता–पूर्ण बड़े रजवाड़ों जैसे मेवाड़, मारवाड़, जयपुर आदि में अलग सिविल सर्विस गठित करने की प्रक्रिया आरम्भ हो गई थी । जिलो में वर्तमान कलेक्टर के स्थान पर हाकिम नियुक्त किये जाते थे । जागीर क्षेत्र मे जागीरदारों की हुकूमत चलती थी । उनकी प्रशासनिक व्यवस्था में एकरूपता नहीं थी, बीसवीं शताब्दी में राजस्थान के कुछ राज्यों ने अपनी प्रशासनिक सेवाएँ प्रारम्भ की तथा भर्ती के लिए आयोग की स्थापना जोधपुर में 1939, जयपुर में 1940 तथा बीकानेर में 1946 में राज्य लोक सेवा आयोग ने कार्यभार करना प्रारम्भ कर दिया । इन आयोगों का दायित्व भर्ती तथा सेवा सम्बन्धी नियमों का निर्माण तथा कुछ वर्गों के कर्मचारियों को नियुक्त करना था ।

स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान का एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । अन्तत: 1949 एवं उसके बाद 1956 में एकीकृत राजस्थान ने अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण किया । एकीकरण के पश्चात् जो राज्य का स्वरूप उभरा उसमें कई प्रकार की विषमताएँ थी । विभिन्न राज्यों का आकार, जनसंख्या, आर्थिक राजनैतिक–सांस्कृतिक–सामाजिक दृष्टि से भिन्नताएँ तथा विशिष्टताएँ थी । उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर जैसे राज्यों का कुशल तथा सुसंगठित प्रशासनिक तंत्र था जबकि कुछ राज्यों में सामन्ती प्रथा पर आधारित प्रशासनिक व्यवस्था कायम थी । ऐसे में सम्पूर्ण राज्य के लिए प्रशासनिक एकरूपता लाना आवश्यक था ।

इसी उद्देश्य से 16 अगस्त, 1949 को राजस्थान की तत्कालीन सरकार राज प्रमुख ने एक अध्यादेश जारी करके राजस्थान लोक सेवा अयोग की स्थापना की । अध्यादेश में यह कहा गया था कि राजपत्र में प्रकाशित होने की तिथि से यह आयोग वैधानिक रूप से गठित हो जायेगा । इस तरह 20 अगस्त 1949 को राजस्थान गजट में इसके प्रकाशन के साथ ही यह आयोग अस्तित्व में आ गया । भारत का संविधान 1950 में लाग हुआ । इसके अन्तर्गत केन्द्र व राज्य स्तरों पर लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई ।

6.3 संगठन

राजस्थान लोक सेवा आयोग के प्रारम्भिक काल में यह व्यवस्था की गई थी कि आयोग का अध्यक्ष तथा सदस्य राजप्रमुख द्वारा नियुक्त किये जायेंगे । इन सदस्यों में आधे सदस्यों की संख्या, सेवा शर्तें तथा अन्य सेवा नियमों का निर्धारित करे । इसी अध्यादेश की व्यवस्था के अनुसार 28 जुलाई, 1950 को भी श्री एस. सी. त्रिपाठी तथा श्री देवीशंकर तिवारी एवं श्री एन. आर. चडोरकर सदस्य नियुक्त किये गये । 1968 में आयोग की सदस्यों की संख्या बढ़ाकर दो से तीन कर दी गई । लेकिन धीरे–धीरे साथ में यह भी अनुभव किया गया कि सदस्यों में यह संख्या भी पर्याप्त नहीं है परिणामस्वरूप 1973 में यह सदस्य संख्या चार तथा 1981 में पाँच कर दी गई । इन संशोधनों को दृष्टिगत रखते हु ए आयोग का संगठन इस प्रकार है -

1. अध्यक्ष
2. सदस्य तथा
3. आयोग सचिवालय के कार्यरत अधिकारी एवं कर्मचारी ।

सर्वप्रथम हम आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के सांगठनिक पक्षों पर चर्चा करेंगे ।

अध्यक्ष

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 316 (1) में यह प्रावधान है कि संघ लोक सेवा आयोग या संयुक्त लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष राष्ट्रपति द्वारा और लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष उस राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया जायेगा । राजस्थान लोक सेवा आयोग अध्यक्ष मु ख्यमंत्री की सलाह पर राजस्थान के राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया जाता है । वर्तमान में आमतौर पर आयोग के वरिष्ठ सदस्य को ही अध्यक्ष पर नियुक्त करने की परम्परा राजस्थान में निभाई जा रही है ।

लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष प्रशासनिक सेवा, पुलिस सेवा, इंजीनियरिंग सेवा, शिक्षण, वकालत आदि क्षेत्रों से चुने जाते हैं । राजस्थान लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष पद पर सामान्यतया सेवानिवृत्त उच्च शिक्षा अधिकारी, प्रशासक एवं अभियन्ता नियुक्त किये जाते रहे हैं कभी–कभी जनसेवा के क्षेत्र के व्यक्ति भी अध्यक्ष बनाये गये हैं । इस पद पर आसीन प्रत्येक व्यक्ति का प्रभाव आयोग के क्रियाकलाप एवं नैतिकता के मानदण्डों पर पड़ता है । यह सुझाव भी दिया जाता है कि अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया जाने वाला व्यक्ति यथा संभव उस राज्य से बाहर का होना चाहिए तथा पराजित राजनीतिज्ञों से आयोग को मुक्त रख जाना चाहिए ।

सदस्य

संविधान के अनुच्छेद 316(1) के अनुसार यह प्रावधान किया गया है कि राजस्थान लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जायेगी, आयोग में जहाँ तक सम्भव हो आधे ऐसे सदस्य होंगे जो अपनी नियुक्ति तक भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कम से कम दस वर्ष तक कार्य किया हो ।

सदस्यों का कार्यकाल

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों का कार्यकाल अनेक पद ग्रहण करने की तिथि से 6 वर्ष या 62 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक होता है । सेवाकाल समाप्त होने पर अध्यक्ष तथा सदस्य इसी आयोग में सेवा विस्तार का लाभ नहीं उठा सकते तथा किसी भी केन्द्रीय या राज्य सरकार के पद को ग्रहण नहीं कर सकते । आयोग के अध्यक्ष रहे व्यक्ति को संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष

या सदस्य नियुक्त किया जा सकता है या अन्य किसी राज्य के लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है । राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को उसी आयोग का अध्यक्ष, संघ लोक सेवा अयोग का सदस्य या अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है । ज्ञातव्य है कि संघ लोक सेवा आयोग में सेवा निवृत्ति आयु 65 वर्ष है ।

वेतन एवं भत्ते

लोक सेवा आयोग के सदस्य निष्पक्ष रूप से कार्य कर सके इसकी व्यवस्था संविधान में की गई है । राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को 80,000 रुपये मासिक वेतन एवं सदस्यों को 75,000 रुपये मूल वेतन देय होता है । साथ में राज्य के सचिव स्तर के अधिकारियों को देय महंगाई भत्ते तथा अन्य परिलाभ भी प्रदान किये जाते हैं । यदि कोई राज्य सेवानिवृत्त व्यक्ति आयोग का अध्यक्ष या सदस्य नियुक्त किया जाता है तो उसके वेतन राशि काट ली जाती है । सेवाकाल में इन्हें सभी सुविधाओं यथार्थ, यात्रा भत्ता, चिकित्सा तथा आवासीय सुविधायें प्रदान की जाती है । जो राज्य सरकार के सचिव स्तर के अधिकारी को देय होती है । आयोग का सम्पूर्ण व्यय राज्य की संचित निधि पर भारित होता है । संविधान के प्रावधान के अनुसार इनके सेवालाभ में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है यदि सदस्य को अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर राज्यपाल द्वारा अस्थायी अध्यक्ष का कार्य दायित्व सौंपा जाता है तो उसके लिए उसे अतिरिक्त भत्ता दिया जाता है । यह भत्ता तीस दिवस कम से कम या चार माह से अधिक के लिए प्राप्त नहीं हो सकता ।

त्याग पत्र

अध्यक्ष या सदस्य चाहे तो स्वेच्छा से अपना त्याग पत्र अपने नियुक्त वाले अधिकारी के पास भेज सकते हैं तथा सेवा मुक्त हो सकते हैं ।

सेवा विमुक्ति

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों को पदच्युत करने का अधिकार राज्यपाल को प्राप्त है, किन्तु राज्यपाल ऐसा केवल निम्नलिखित परिस्थितियों में कर सकते हैं –

1. अध्यक्ष या सदस्य के विरूद्ध भ्रष्टाचार का आरोप किसी न्यायालय में सिद्ध हो जाए, या
2. वह किसी न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया जाये, या
3. वह कोई वैतनिक नौकरी करने लगे, या
4. मानसिक या शारीरिक दृष्टि से कर्त्तव्य पालन के लिए अयोग्य हो जाए, या
5. यदि किसी सदस्यों का किसी सरकारी ठेके में स्वार्थ संबंध हो जाये या उसमें उत्पन्न किसी लाभ का भागी हो तो उसको कदाचार समझा जायेगा एवं इस आधार पर उसे हटाया जा सकता है ।

राजस्थान में इस प्रकार की पदच्युति अभी तक किसी अध्यक्ष अथवा सदस्य की नहीं की गई है ।

6.3.1 आयोग का सचिवालय एवं स्टाफ

राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह लोक सेवा आयोग के कार्मिकों की संख्या तथा उनकी सेवा के सम्बन्ध में नियम विनियम निर्धारित करे । इन्हीं नियमों के प्रावधानुसार आयोग में एक सचिव होता है । अरापत्रित व राजपत्रित कार्मिकों की संख्या राज्यपाल द्वारा समय–समय पर निर्धारित की जाती है ।

सचिव ही आयोग प्रशासन का व्यावहारिक कार्यपालक होता है । जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है । राजस्थान लोक सेवा आयोग का सचिव आई. ए. एस. सेवा का सदस्य ही रहा है । सचिव कि किसी भी प्रकार की नियुक्ति के सम्बन्ध में राज्यपाल की अनुमति आवश्यक है । उसके वेतन भत्तों का निर्धारण भी राज्यपाल द्वारा किया जाता है । सचिव का कार्यकाल सामान्यत: पाँच वर्ष का होता है । किन्तु इस नियम का पालन अक्सर नहीं किया जाता है।

सचिव के प्रति किसी भी प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाही का अधिकार अध्यक्ष को ही है। ऐसी कार्यवाही के विरूद्ध सचिव को अधिकार है कि वह राज्यपाल को अपील करे ।

आयोग सचिवालय के अराजपत्रित कर्मचारियों की नियुक्ति अध्यक्ष की अनुमति से सचिव द्वारा की जाती है । इन कर्मचारियों पर वहीं सेवा शर्तें लागू होती हैं जो राज्य सचिवालय में कार्यरत समान स्तर के कर्मचारियों के लिए निर्दिष्ट हैं । सचिव को अधिकार है कि वह आवश्यकता पड़ने पर कर्मचारियों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करे । ऐसी किसी कार्यवाही के विरूद्ध अपील आयोग के अध्यक्ष के समक्ष की जा सकती है ।

सचिव के अधीन उप सचिव, सहायक सचिव, अनुभाग अधिकारी तथा अन्य कार्यालय कर्मचारी होते हैं । ये सभी अधिकारी तथा कर्मचारी आयोग के सेवारत व्यक्तियों में से ही पदोन्नति के आधार पर नियुक्त किये जाते हैं । यहां भी सचिव ही इनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने में सक्षम है तथा ऐसी कार्यवाही के विरूद्ध आयोग के अध्यक्ष के समक्ष अपील की जा सकती है ।

6.4 संगठनिक संरचना

आयोग सचिवालय में कार्यकुशलता, विशिष्टता तथा विभिन्न स्तर पर विभिन्न वर्गों के अधिकारियों व कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना बढ़ाने के उद्देश्य से इसे छ: भागों में बाँटा गया है जो इस प्रकार है –

1. प्रशासनिक संभाग
2. भर्ती संभाग
3. परीक्षा संभाग
4. लेखा संभाग
5. विधि संभाग
6. शोध संभाग

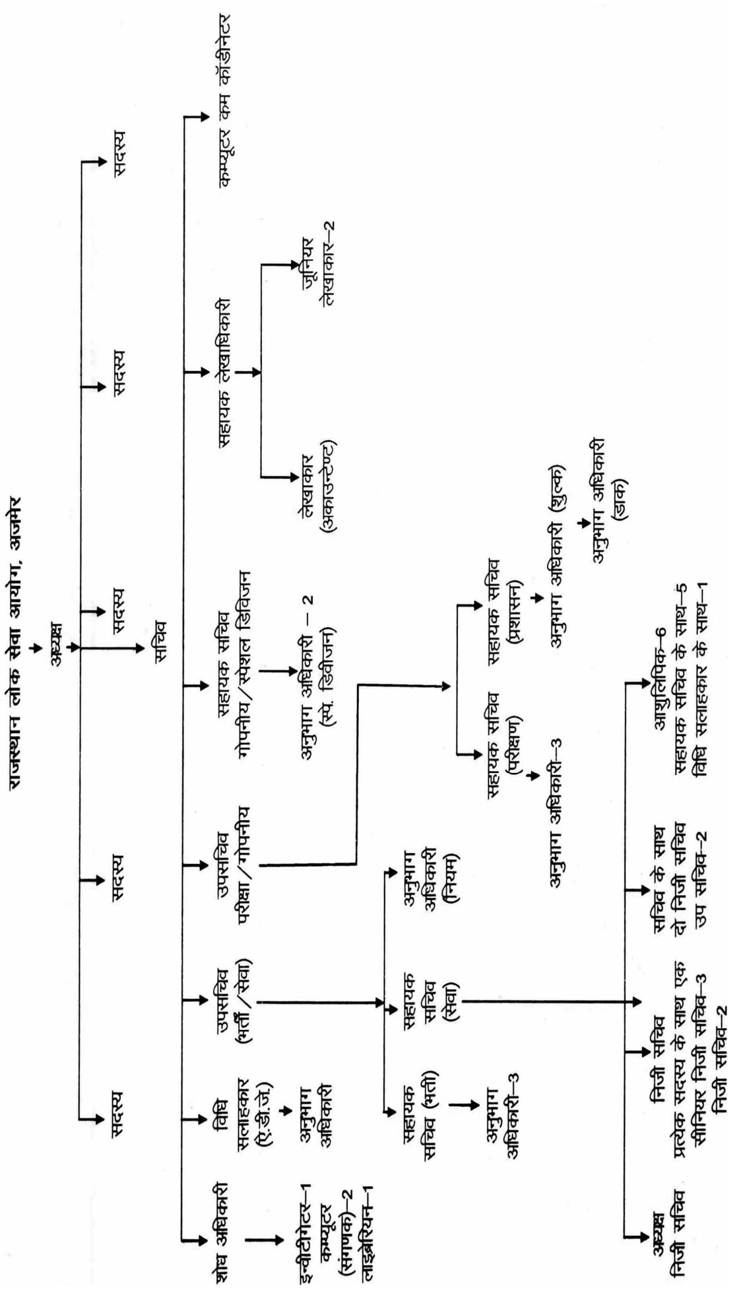

1. प्रशासनिक संभाग

प्रशासनिक संभाग संस्थापन तथा निरीक्षण विभागों में बाँटा गया है। संस्थापन विभाग सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सेवा शर्तें निर्धारित करने के लिए उत्तरदायी है, जबकि निरीक्षण विभाग का कार्य है – सुरक्षा व्यवस्था, आपूर्ति, भंडार की देखभाल, रिकार्ड की व्यवस्था आदि ।

2. भर्ती संभाग

आयोग का सबसे महत्त्वपूर्ण दायित्व भर्ती का है । इस दृष्टि से भर्ती संभाग का महत्व स्वयं सिद्ध है । विभिन्न पदों के लिए आयोजित परीक्षाओं के आवेदन–पत्र को प्राप्त करना, तत्सम्बन्धी रिकार्ड

रखना, परीक्षा की कार्यवाही करना तथा साक्षात्कार परिणाम तैयार करना इसी संभाग का दायित्व है। विभागीय पदोन्नति के लिए भी यही विभाग उत्तरदायी है ।

3. परीक्षा संभाग

सभी प्रकार के परीक्षा सम्बन्धी कार्यों के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए उत्तरदायी है । ये कार्य निर्धारित पद्धति के अनुसार किये जाते हैं । परीक्षा सम्बन्धी सुधार कार्यक्रम, साक्षात्कार तथा संवीक्षा कार्यों के समन्वयन के लिए भी यही विभाग उत्तरदायी है ।

4. लेखा संभाग

लेखा संभाग का मुख्य कार्य बजट बनाना तथा आय–व्यय का हिसाब–किताब रखना है ।

5. विधि संभाग

विधि संभाग आयोग से सम्बन्धित न्यायालय के मामले, अपील इत्यादि की कार्यवाही करने के लिए जिम्मेदार है ।

6. शोध संभाग

शोध संभाग भर्ती तथा परीक्षा प्रक्रिया में समय के अनुसार निरन्तर सुधार की आवश्यकता है इस सम्बन्ध में शोध कार्य व सुधार से सम्बन्धित सुझाव के लिए शोध संभाग स्थापित किया गया है । यही संभाग आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन भी तैयार करता है ।

6.5 राजस्थान लोक सेवा आयोग के दायित्व / कार्य

आयोग के विभिन्न संभागों से सम्बन्धित संक्षिप्त जानकारी से स्पष्ट है कि आयोग के प्रमुख दायित्व इस प्रकार है –

6.4.1 भर्ती प्रक्रिया का क्रियान्वयन परीक्षा तथा साक्षात्कार का आयोजन

राजस्थान लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए जो अध्यादेश 1949 में जारी किया गया था उसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि राज्य की असैनिक सेवा तथा असैनिक पदों पर भर्ती के लिए परीक्षाओं का आयोजन करना आयोग का दायित्व होगा। राजस्थान लोक सेवा आयोग (दायित्व की सीमाएँ) विनिमय, 1951 के द्वारा उन क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है जिनमें भर्ती करने के लिए आयोग को कार्य नहीं करना है । उन उल्लिखित निषिद्ध क्षेत्रों को छोडकर सभी पदों की नियुक्तियों के लिए आयोग उत्तरदायी है ।

राज्य की प्रशासनिक, पुलिस, लेखा, सहकारिता आदि सेवाओं के रिक्त पदों व नव सृजित पदों पर भर्ती का कार्य आयोग करता है । रिक्त पदों के सम्बन्ध में विज्ञापन प्रमुख राष्ट्रीय, राज्य–स्तरीय, स्थानीय समाचार–पत्रों तथा रोजगार समाचार में प्रकाशित किये जाते हैं । निर्धारित तिथि तक आये आवेदन पत्रों को छाँटकर भर्ती के लिए परीक्षाएँ आयोजित की जाती है। कुछ समय पूर्व तक अभ्यार्थियों की संख्या इतनी अधिक नहीं होती थी, अत: लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार के माध्यम से उम्मीदवारों का चयन कर लिया जाता था। शिक्षा के प्रचार–प्रसार, बढ़ती जनसंख्या, उच्च पदों के लिए बढ़ती महत्वाकांक्षा तथा अधिक जानकारी की उपलब्धता के कारण प्रार्थना पत्रों को इतनी अधिक संख्या बढ़ गई है कि उन सबके सीधे लिखित परीक्षा के लिए आमंत्रित करना संभव नहीं' है। अत: 1934 में राज्य एवं अधीनस्थ सेवाओं में चयन हेतु संवीक्षा परीक्षा प्रारंभ की गई जिसमें अभ्यार्थियों की सामान्य ज्ञान तथा एक वैकल्पिक विषय में परीक्षा ली जाती है । इस परीक्षा में जो

निर्धारित प्रतिशत अंक प्राप्त करते हैं उन्हें मुख्य लिखित परीक्षा के लिए आमंत्रित किया जाता है । तत्पश्चात उनमें सफल उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है । इन दायित्वों के निर्वहन के लिए आयोग को लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, पर उम्मीदवारों को बेहिसाब बढ़ती संख्या को देखते हुए ही इस पद्धति को प्रारंभ किया गया है ।

इस पद्धति द्वारा चयनित सर्वोत्तम उम्मीदवारों के नाम आयोग अपनी अनुशंसा के साथ सम्बन्धित विभागों में भेज देता है । उम्मीदवारों को नियुक्त देने का दायित्व सम्बन्धित प्रशासनिक विभाग का है । आयोग तो चयन . करने का परामर्श ही देता है । सामान्यतया आयोग द्वारा अनुशंसित सभी उम्मीदवारों को नियुक्ति दे दी जाती है । पर यदि किसी कारण से राज्य सरकार किसी उम्मीदवार के सम्बन्ध में कोई विपरीत निर्णय लेती है तो उसे इसका स्पष्टीकरण आयोग को देना होता है । जो मामले राज्य सरकार द्वारा अस्वीकृत कर दिये जाते हैं, आयोग उनका उल्लेख अपने प्रतिवेदन में करता है, जिसे विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है । सामान्यतया इस प्रकार के मामलों की संख्या नगण्य ही रहती है ।

6.4.2 पदोन्नति से सम्बन्धित दायित्व

सेवा में पदोन्नति की व्यवस्था कार्यकुशलता एवं मनोबल की वृद्धि के सहायक होती है । कार्ट्ज तथा कान्ह ने कर्मचारियों के लिए संगठन में पदोन्नति की व्यवस्था को प्रेरक माना है । एण्डरसन के अनुसार भी कर्मचारियों द्वारा किये गये अच्छे कार्यों को इनाम प्रदान करना चाहिए । भेदभाव रहित पदोन्नति के समान अवसर, बेहतर कार्य के लिए प्रशंसा, अनुशासनहीन दायित्वहीन कार्य के लिए सजा से संगठन में काम करने का वातावरण बना रहता है ।

राजस्थान लोक सेवा आयोग न केवल राज्य सरकार की सेवाओं में कर्मचारियों की भर्ती के लिए उत्तरदायी है अपितु आरंभ से ही पदोन्नति के दायित्व से भी सम्बद्ध रहा है । पदोन्नति के लिए सामान्यतया दो प्रकार की प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है:

1. परीक्षा के द्वारा एवं
2. विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा ।

राजस्थान की लगभग सभी सेवाओं में सीधी भर्ती के अतिरिक्त पदोन्नति द्वारा भी भर्ती की व्यवस्था की गई है । भारतीय संविधान के अनुच्छेद 320(3) मे निर्देश दिया गया है कि पदोन्नति के लिए विभागीय समितियाँ होती है जिनकी सामान्यतया संरचना इस प्रकार होती है –

1. राजस्थान लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य;
2. सचिव, कार्मिक विभाग, राजस्थान सरकार;
3. विभागाध्यक्ष अथवा उसका प्रतिनिधि; एवं
4. प्रत्याशियों के कार्य को जानने वाला विशेषज्ञ ।

विभागीय पदोन्नति समितियों की बैठकें सामान्यतया जयपुर में स्थित राजकीय सचिवालय में ही आयोजित की जाती है । इस हेतु आवश्यकता पड़ने पर राजस्थान लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष अथवा सदस्य समय–समय पर जयपुर प्रवास करते रहते हैं । इस समिति का दायित्व है कि वह प्रत्याशियों के सेवा अभिलेखों का अध्ययन करे । योग्यता, वरिष्ठता तथा पद के लिए पात्रता के संबंध

में जाँच के आधार पर यह एक सूची बनाती है । रिक्त उच्च पदों पर इसी सूची के क्रमानुसार कार्मिकों की नियुक्ति की जाती है ।

यह प्रक्रिया कुछ सीमा तक पदोन्नति के प्रश्न को हल करने व कर्मचारियों को संतुष्ट कर पाने में सक्षम है, पर इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं, जो कभी–कभी प्रशासनिक संगठन में असंतोष उत्पन्न करती है । कई बार विभागीय पदोन्नति के समितियों की बैठकें समय पर आयोजित नहीं हो पाती है । इस बारे में अधिकांश विलम्ब सरकारी विभागों के कारण होता है । सम्बन्धित मंत्री अथवा अधिकारियों की तत्परता एवं रूचि के अभाव में इन समितियों की बैठकें बुलाये जाने में अनावश्यक विलम्ब भी देखा गया है । समय निकलने के बाद मिले लाभ से कर्मचारियों को मनोबल क्षीण होता है।

6.4.3 अनुशासनिक कार्यवाही सम्बन्धी दायित्व

जिस प्रकार योग्यता एवं ईमानदारी के लिए प्रशंसा का महत्व है उसी प्रकार उच्छृंखलता व उत्तरदायित्व विहीन व्यवहार के लिए दण्ड भी आवश्यक है । अनुशासनात्मक कार्यवाही नियोक्ता तथा कर्मचारियों के मध्य संतुलित सम्बन्ध बनाये रखने में सहायक है । इसका उद्देश्य नकारात्मक नहीं, अपितु कर्मचारियों को कर्त्तव्यनिष्ठ, उत्तरदायी व संगठन के प्रति जवाबदेह बनाना है । डॉ. एल. डी. व्हाइट ने अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए निम्नलिखित कारणों को पर्याप्त आधार बताया है –

1. कर्त्तव्यपालन में लापरवाही
2. कार्य में विलम्ब;
3. कार्य–कुशलता का अभाव;
4. कानूनों व नियमों का उल्लंघन;
5. भ्रष्ट व अनैतिक आचरण;
6. उच्च पदस्थ अधिकारियों की अवज्ञा;
7. कार्य स्थल पर नशा करना आदि ।

उपर्युक्त स्थितियों में कर्मचारियों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है । राजस्थान राज्य सरकार यदि किसी कर्मचारी को उपर्युक्त में से किसी प्रकार के विघटन के कारण को दोषी पाये तो वह उक्त कर्मचारी के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही का निर्णय ले सकती है तथा इस सम्बन्ध में राजस्थान लोक सेवा आयोग को मामले की जानकारी देते हुए उनका परामर्श ले सकती है । आयोग के परामर्श बाध्यकारी तो नहीं होते पर सरकार अधिकतर उनके निर्देश को स्वीकार करती है । आयोग का दायित्व होता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए निर्धारित प्रक्रिया की अनुपालना की गई है या नहीं एवं कर्मचारी को अपनी बात कहने तथा स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया गया है अथवा नहीं ।

6.4.4 परामर्श सम्बन्धी दायित्व

स्थानान्तरण, पद स्थापन ,पदस्थापन क्षतिपूर्ति, न्यायिक मामले के लिए खर्च आदि की नीति के सम्बन्ध में राज्य सरकार आयोग से परामर्श लेती है । वरिष्ठता–निर्धारण सेवा नियमों का परीक्षण भी आयोग का दायित्व है । राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर तत्कालीन आवश्यकतानुसार अस्थायी

नियुक्तियाँ कर ली जाती है । ऐसी नियुक्तियों का आयोग से अनुमोदन कराना आवश्यक है अन्यथा कर्मचारियों को सेवा के सारे लाभ प्राप्त नहीं होते ।

6.6 महत्व

राजस्थान लोक सेवा आयोग की संगठन विधि से लेकर कार्य प्रणाली, स्थिति, अधिकार तथा उसके दिये परामर्शों का सरकार द्वारा क्रियान्वयन ये सभी क्षेत्र चर्चा का विवाद का विषय रहे हैं । यही कारण है कि समय–समय पर इनमें परिवर्तन तथा संशोधन की माँग की जाती रही है ।

एक विवाद अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रक्रिया का है । कई बार आलोचना की जाती है कि वर्तमान पद्धति में यह पूर्ण संभावना है कि मुख्यमंत्री की अपनी पसन्द का व्यक्ति ही इन पदों पर नियुक्त होता है । राजनीतिक आधार पर नियुक्त व्यक्ति राजनीतिक प्रभाव में कार्य करे ऐसी संभावना बनी रहती है । इस संदर्भ में नियुक्ति पद्धति में परिवर्तन के सुझाव दिये जाते रहे हैं, यथा राज्य लोक सेवा अयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के समय संघ लोक सेवा अयोग के अध्यक्ष की सलाह ली जानी चाहिए । राजनीति में सक्रिय रहे व्यक्तियों तथा किन्हीं विशिष्ट राजनीतिक अथवा कट्टर सामुदायिक दृष्टिकोण के व्यक्ति को इन पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए । प्रतिनिध्यात्मकता के नाम पर न्याय एवं वस्तुनिष्ठता के मानकों को तिलांजलि नहीं दी जानी चाहिए।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की सेवानिवृत्ति की आयु 62 वर्ष निर्धारित की गई है तथा सेवानिवृत्ति के पश्चात् कोई अन्य लाभकारी रोजगार न करने का प्रतिबन्ध भी लगाया गया है । विशेषज्ञों का मानना है कि आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष कर देनी चाहिए ताकि उनके अनुभव तथा बौद्धिक क्षमताओं का अधिकतम उपयोग किया जा सके तथा उन बुद्धिजीवियों की सेवा का लाभ उठाया जा सके जिनकी सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष है ताकि वे अभी अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात् आयोग को अपने अनुभव का लाभ दे सकें ।

कर्मचारियों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि राज्य सरकार कई बार आयोग की अनुशंसाओं की उपेक्षा की देती है, क्योंकि आयोग की राय को मानने के लिए राज्य सरकार कानूनी तौर पर बाध्य नहीं है । इस सम्बन्ध पुनर्विचार की आवश्यकता है ।

राजस्थान लोक सेवा आयोग की संवैधानिक स्थिति स्वायत्त निकाय के रूप में है, लेकिन व्यावहारिक रूप में कई अवसरों तथा क्षेत्रों में इसकी स्वायत्तता अर्थहीन हो जाती है, उसकी भूमिका ऐसे सलाहकार की हो जाती है जिसकी राय मानना या न मानना राज्य सरकार की स्वेच्छा पर निर्भर करता है । कार्यपालिका ने इसके लिए कई तरीके निकाले हैं । आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन विधानसभा पटल पर इसलिए रखा जाता है ताकि उस पर व्यापक विचार–विमर्श हो, तथा सरकार की कार्यशैली जन प्रतिनिधियों के सामने स्पष्ट हो । पर प्रतिवेदन पर चर्चा न होने से यह उद्देश्य भी उपेक्षित रह गया है । संविधान के अनुच्छेद 321 के प्रावधानों के अनुसार राज्यपाल को अधिकार है कि वह उन क्षेत्रों को सुनिश्चित करे जहाँ आयोग की सलाह की आवश्यकता नहीं है । 1951 में राजस्थान लोक सेवा आयोग के कार्यों को परिसीमित करते हुए अधिनियम पारित किया गया । 1961 में संशोधन द्वारा कुछ सेवाओं को आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया। ऐसी परिसीमन करने वाली प्रक्रियाओं का न रुकने वाला सिलसिला शुरू हुआ । फलत 1983 में एक संशोधन और प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार आयोग की सलाह भर्ती, नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदोन्नति, अनुशासनात्मक कार्यवाही के कुछ मामले में आवश्यक नहीं है यथा –

1. नवीन सेवाओं तथा पदों का सृजन तथा संगठन ।
2. सेवाओं तथा पदों का वर्गीकरण ।
3. सेवाओं तथा पदों की भर्ती की सामान्य पद्धति ।
4. विशिष्ट वर्ष में किसी सेवा के रिक्त स्थानों पर भर्ती की संख्या का निर्धारण ।
5. सरकारी कर्मचारियों की प्रथम नियुक्ति के समय वेतन का निर्धारण तथा किसी पद के स्थानान्तरण पदधारियों के वेतन का निर्धारण ।
6. पदोन्नति द्वारा भर्ती किये गये कर्मचारियों के वेतन का निर्धारण ।
7. सरकारी कर्मचारियों के परिवीक्षा (प्रोबेशन), प्रशिक्षण तथा सेवाओं में स्थायीकरण की शर्तें ।

6.7 वार्षिक प्रतिवेदन

संविधान की धारा 322 में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य लोक सेवा आयोग अपना वार्षिक प्रतिवेदन राज्यपाल को प्रस्तुत करेंगे । राज्यपाल इस प्रतिवेदन को विधानमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे । इस प्रतिवेदन में एक ज्ञापन भी लगाया जायेगा जिसमें उन मामलों का सकारण विवरण दिया जायेगा जिन पर आयोग की सलाह नहीं मानी गई । लोक सेवा आयोग की सिफारिशों में निथक्षता होती है अत: सरकार से यह आशा की जाती है कि वह सार्वजनिक हित में आयोग की सिफारिशों की उपेक्षा नहीं करेगी । यह आवश्यक है कि सरकार संविधान की भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए आयोग के परामर्श को स्वीकार करें एवं अपनी विवेकाधीन शक्तियों का दुरुपयोग न करे ।

6.8 प्रशासनिक सुधार आयोग कि सिफ़ारिशें

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सेवी वर्ग प्रशासन पर अपने ग्यारहवें प्रतिवेदन में राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की भर्ती के सम्बन्ध में कुछ सुझाव प्रस्तुत किये है । जो अग्रांकित प्रकार हैं–

1. राज्य लोक सेवा आयोग के लिए नियुक्तियां करते समय राज्यपाल को संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष से विचार–विमर्श करना चाहिए ।
2. राज्य लोक सेवा आयोग का कम से कम एक सदस्य अन्य राज्य का होना चाहिए ।
3. आयोग की सदस्यता के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता स्नातक उपाधि होनी चाहिए ।
4. सरकारी अधिकारियों में से लिया जाने वाला सदस्य कम से कम 10 वर्ष तक विभागीय अध्यक्ष अथवा सचिव रह चुका हो ।
5. आयोग के अध्यक्ष अथवा सदस्य ऐसे लोग नियुक्त किये जाये तो सभी में विश्वास प्रेरित कर सकें । ये शिक्षा, कानून, विज्ञान, तकनीकी, प्रशासन, इन्जीरियरिंग आदि एक या अधिक विशेषज्ञ हो ।
6. आयोग के सचिवालय में विविध योग्यताओं से युक्त कर्मचारी वर्ग का रहना चाहिए । इन्हें शिक्षा, विज्ञान और व्यावहारिक प्रशासन का अनुभव होना चाहिए ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राज्य लोक सेवा आयोग शक्ति और सम्मान का संगम है । यह एक स्वतंत्र निकाय है एवं सरकार का अधीनस्थ अंग नहीं है । आयोग को बहुत अधिक सतर्कता, स्वतंत्रता, निष्पक्षता एवं दूरदर्शिता से कार्य करते हुए नागरिक सेवा में ऐसे व्यक्तियों का चयन करना चाहिए जिनसे जनता का प्रशासन में विश्वास बढ़े ।

6.9 सारांश

राज्य कार्मिक अभिकरण के क्रम विकास और महत्व के सम्बन्ध में चर्चा की है जो नीति निर्धारण से लेक अन्य संवर्धानात्मक तथा कार्यक्रमों तक सभी कार्मिक गतिविधियों के लिये जिम्मेदार है । राजस्थान के लोक सेवा आयोग के क्रम विकास और कार्यों से संबंधित है, जो सिविल अधिकारियों की भर्ती तथा लोक सेवा के अन्य मामलों के लिये जिम्मेदार है । लोक सेवा आयोग परामर्शदात्री भूमिका का निर्वहन भी करता है ।

6.10 शब्दावली

1. दिवालियापन: ऐसा व्यक्ति, जिसके पास ऋण, धन लौटाने के लिए पर्याप्त धन, माल या सम्पत्ति न हो ।
2. जीवनवृत्ति प्रबन्ध: संगठन में लोगों को अधिक चुनौती पूर्ण, स्वायत्त एवं जिम्मेदारी पूर्ण पद और कार्य सौंप कर उनकी व्यवस्थागत क्रमिक प्रगति –सुनिश्चित करना । नये विचार प्रदायक साधन एक ऐसा माध्यम है जिससे विचारों को मुख्य व्यवस्था तक सफलतापूर्वक पहुँचाया जा सकें ।
3. जनशक्ति: यह ऐसा उद्देश्यों, नीतियों, कार्यक्रमों के विकास और निर्धारण की प्रक्रिया है जो आर्थिक एवं अन्य उद्देश्यों की उपलब्धि के लिये जनशक्ति का विकास, प्रयोग तथा वितरण करेंगे ।
4. संवर्ग प्रबन्ध : लोक सेवकों की कार्यकुशलता एवं मनोबल को बढ़ाने के विचार से संवर्ग की संरचना को युक्तियुक्त बनाये रखने के लिये लोक सेवाओं के संवर्गों की समीक्षा करना । इसमें भावी कार्मिकों सम्बन्धी अपेक्षाओं के संबंध में अनुमान लगाया जाता है ।

6.11 अभ्यास प्रश्न

1. राज्य कार्मिक एजेंसी की आवश्यकता पर टिप्पणी करें ।
2. राजस्थान लोक सेवा आयोग की स्थापना के क्या उद्देश्य हैं?
3. राजस्थान लोक सेवा आयोग के कार्यों की व्याख्या करें ।

6.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वी. एम. सिन्हा, कार्मिक प्रशासन आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1965, पृ. 1०4
2. रमेश अरोड़ा व गीता चतुर्वेदी, भारत में राज्य प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर,2001, पृ. 177
3. भारतीय संविधान अनुच्छेद, 315
4. भारतीय संविधान अनुच्छेद, 315 (1)
5. भारतीय संविधान 41 में संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा संशोधित ।
6. फेलिक्स, ए. निग्रो, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, हाल्ट, न्यूयार्क, 1963
7. एस. एल. गोयल, लोक कार्मिक प्रशासन, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली ।

इकाई – 07

राज्य सचिवालय

इकाई कि रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 सचिवालय की आवश्यकता
7.3 राज्य सचिवालय: पृष्ठभूमि
7.4 राज्य सचिवालय: संगठन
7.5 राज्य सचिवालय: कार्य
7.6 सचिवालय की कार्य प्रणाली
7.7 सचिवालय के कार्मिक
7.8 सचिवालय प्रशासन की समस्याएँ
7.9 समाधान
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.13 सन्दर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- सचिवालय का अर्थ, भूमिका एवं आवश्यकता को समझ सकेंगे,
- सचिवालय की संगठन प्रणाली एवं कार्यों का वर्णन कर सकेंगे,
- राजस्थान में सचिवालय सम्बन्धी व्यवस्था की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- सचिवालय में पदस्थ कार्मिक प्रणाली की जानकारी ज्ञात कर सकेंगे,
- सचिवालय प्रशासन की समस्याएं एवं उनका समाधान प्रस्तुत करने योग्य हो सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

एक पुरानी कहावत के अनुसार दुनिया में कोई भी दो व्यक्ति एक–से नहीं होते । ऐसा ही प्रशासनिक संस्थाओं के सम्बन्ध में माना जा सकता है । यह देखना अपने आप में दिलचस्प होता है कि सांगठनिक जीवन में एक संगठन अन्य से कितने भिन्न होते है । इनकी भिन्नता इन्हें महत्व एवं आवश्यकता सम्बन्धी तत्वों का ज्ञान प्रदान करती है । ऐसी संस्थाओं में सचिवालय निरपवाद रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है । सचिवालय शब्द का आशय है सचिव का कार्यालय । सचिव मंत्री का प्रमुख सलाहकार होता है, अत: उसे अपने इस कार्य के सम्पादन हेतु सहायक के रूप में एक कार्यालय की आवश्यकता होती है एवं यह कार्यालय ही सचिवालय कहलाता है । प्रत्येक सरकार का अपना

सचिवालय होता है । भारत में संघ स्तर पर एवं प्रत्येक स्तर पर सचिवालय की व्यवस्था की गई है जो प्रशासनिक तंत्र का केन्द्र बिन्दु होता है । इसमें संघ व राज्य सरकार के कई विभाग होते हैं । विभागों के राजनीतिक प्रमुख ' 'मंत्री' ' एवं प्रशासनिक प्रमुख ' 'सचिव ' होते है । सचिव सम्पूर्ण सरकार का सचिव है न कि किसी मंत्री विशेष का । सचिवालय विभागों की संख्या सचिवों की संख्या से अधिक होती है अत: एक सचिव कई विभागों का सचिव भी बनाया जाता है ।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 154(1) द्वारा राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित की गई है, जिसका प्रयोग वह अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से करता है एवं इन अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा राज्यपाल को बेहतर ढंग से सलाह व सहायता हेतु सचिवालय जैसी संस्था की रचना की गई है ।

सचिवालय देश के लोक प्रशासन में अपरिहार्य एवं वांछनीय होने के कारण एक अनिवार्य संस्था है । भारत में सचिवालय व्यवस्था नीति निर्माण एवं टेन्योर प्रणाली पर आधारित है ।

7.2 सचिवालय कि आवश्यकता

सामान्यत: यह आवश्यक नहीं होता कि निर्वाचित राजनैतिक कार्यपालिका के सदस्य प्रशासकीय कार्यों में निपुण ही हों उनके कार्यकाल की अनिश्चितता बनी रहती है । संसदीय व्यवस्था में उनकी परिवर्तनशीलता भी उनके प्रशासकीय कार्य में निपुणता हासिल करने में प्रमुख बाधा बनी रहती है । इसलिए राजनैतिक कार्यपालिका को सदैव प्रशासकीय नियमों, विनियमों एवं अन्य जटिलताओं से अवगत करवाने हेतु प्रशासन में अनुभव और विशिष्ट ज्ञान रखने वाले कार्मिकों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है । विशेष रूप से स्वतंत्रता के शीघ्र पश्चात् राजनैतिक संचालक अनुभवहीन और अपरिपक्व थे, क्योंकि इस प्रकार की जनतांत्रिक संस्थाओं में कार्य करने का उन्हें अवसर प्राप्त नहीं हुआ था ।

नीति निर्माण के लिए विभिन्न प्रकार की सूचनाओं, सामग्री, आकड़ों और तथ्यों की आवश्यकता होती है । सचिवालय ही यह सब एकत्रित करके संक्षिप्त रूप में राजनैतिक कार्यपालिका को उपलब्ध करवाता है ।

विधायन की प्रक्रिया इतनी जटिल होती है कि विधि के विशेष ज्ञान के बिना इस कार्य को कोई व्यक्ति कर नहीं सकता है । विधान मण्डल में प्रस्तुत कानून का प्रारूप मंत्रिगण विशेषज्ञ की सहायता के बिना तैयार नहीं कर सकते है । अत: सचिवालय में कार्यरत विशेषज्ञों पर मंत्रियों को विधायन सम्बन्धी कार्यों के लिए निर्भर रहना पड़ता है ।

राजनैतिक कार्यपालिका के सदस्य अन्य कार्यों में इतने व्यस्त रहते है कि नीति निर्धारण और विधायी कार्यों के लिए वे समुचित समय नहीं निकाल पाते है । उन्हें अपन चुनाव क्षेत्र को संभालना होता है, दल से संबंधित कार्यों में उनका बहुत समय निकल जाता है । हर समय उनसे मिलने के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती है और फिर थोड़ा समय उन्हें अपने व्यवसाय और परिवार को भी देना होता है । सारांश में यह कहा जा सकता है कि मंत्रियों का इतना व्यस्त जीवन रहता है कि यदि उन्हें अपने विभाग के कार्यों की तकनीकी जानकारी भी हो तो भी अपने कार्य को बिना सचिवीय सहायता के सम्पन्न नहीं कर सकते हैं ।

7.3 राज्य सचिवालय कि पृष्ठभूमि

सचिवालय व्यवस्था भारतवर्ष के लिए कोई नई चीज नहीं है । इसकी शुरूआत अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में कर दी थी । अत: सचिवालय व्यवस्था देश को अंग्रेजी शासन से विरासत में प्राप्त हुई है । ऐतिहासिक रूप से राजस्थान राज्य सचिवालय का अतीत कोई विशेष लम्बा नहीं है । राजस्थान राज्य सचिवालय की स्थापना राजस्थान राज्य की समाकलन प्रक्रिया के समापन के तुरन्त पश्चात् जयपुर में की गई । प्रारम्भ में राज्य सचिवालय की स्थापना विधायक निवास भवन में की गई । अप्रैल 1949 में इसे विधायक निवास भवन से वर्तमान भवन में स्थानान्तरित किया गया । प्रारम्भ में राज्य सचिवालय में अनेक अधिकारी व कर्मचारियों की शैक्षणिक योग्यता, कार्यकुशलता, सेवा दशाओं आदि में भारी अन्तर था। सचिवालय का अपना कोई अतीत नहीं होने के कारण सारा कार्य कोरे कागज पर (क्लीन स्लेट) पर प्रारम्भ किया गया। कोरे कागज के अपने कुछ लाभ भी थे तो कुछ इसकी हानियाँ भी थी । राजस्थान राज्य शासन सचिवालय में प्रारम्भ में कार्यकरण पद्धति और कार्यविधि नियम वहीं अपनाये गये जो कि पड़ोसी राज्यों के सचिवालयों में प्रचलित थे । शनै: शनै: उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन किया गया । वर्तमान में राज्य सचिवालय का मुख्य उद्देश्य राजनैतिक कार्यपालिका को नीति निर्माण और विधायी कार्यों में हर सम्भव सहायता करना है । राज्य सचिवालय में मंत्रीपरिषद् के सभी सदस्य, सचिवगण और सम्पूर्ण कर्मचारी मण्डल बैठकर कार्य करते है । इसी सचिवालय में राज्य प्रशासन से संबंधित नीतियां एवं कार्यक्रम तैयार किये जाते है । यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि राज्य सचिवालय द्वारा राज्य कार्यपालिका आदेशों और विभिन्न विधानों को पर्यवेक्षित, निर्देशित एवं नियंत्रित किया जाता है । सम्पूर्ण राज्य प्रशासन की कुशलता राज्य सचिवालय के कुशल संचालन पर निर्भर है ।

7.4 राज्य सचिवालय का संगठन

मुख्यमंत्री के परामर्श के आधार पर राज्यपाल द्वारा राज्य में विभागों का निर्माण किया जाता है । विभागों द्वारा राज्य प्रशासन का संचालन किया जाता है । यह राज्य प्रशासन का शीर्षस्थ कार्यालय होने के साथ–साथ शक्तियों का केन्द्र बिन्दु भी है । जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि राजनैतिक कार्यपालिका के शीर्ष पर मुख्यमंत्री होता है जिसके अधीन मंत्रीमण्डल स्तर के मंत्री, राज्य मंत्री, उप मंत्री और संसदीय सचिव होते है । राज्य सचिवालय में स्थाई कार्यपालिका के शीर्ष पर 'मुख्य सचिव होता है । यह राज्य सचिवालय का 'प्रधान अधिकारी' होने के साथ–साथ मुख्यमंत्री एवं सम्पूर्ण मंत्रीमण्डल का प्रमुख परामर्शदाता है । वह राज्य सचिवालय के कुशल संचालन के लिए उत्तरदायी है।

सम्पूर्ण राज्य सचिवालय कुछ विभागों में विभाजित रहता है । प्रत्येक विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष ' शासन सचिव' कहलाता है । वह बहुत अनुभवी और राज्य प्रशासन में एक वरिष्ठ अधिकारी होता है । दो–एक विभागों को छोडकर प्राय: ये राज्य केडर के भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी होते है । शासन सचिव मंत्री विशेष के सचिव नहीं होकर वह राज्य सरकार के लिये उस विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष माना जाता है । कुछ बड़े विभागों में सचिव के अधीन "अतिरिक्त सचिव" और "विशिष्ट सचिव" के पदों का सृजन किया जाता है । सचिव के सामान्य नियंत्रण में रहते हुए विभाग के ही अनुभाग विशेष का स्वतंत्र नियंत्रण इन्हें सौंप दिया जाता है । आवश्यकतानुसार एक या एक से अधिक 'उप सचिव' की नियुक्ति की जाती है । यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक विभाग में उप

सचिव का पद ही हो । अपवादों को छोड़ प्राय: अधिकांश विभागों में उप सचिव का पद देखने को मिलता है । उप सचिवों को विभाग के कुछ एक महत्वपूर्ण कार्य सौंप दिये जाते है । जिससे सचिव के कार्य का बोझ हल्का हो जाये और वह नीतिगत मामलों के लिये समुचित समय दे सके । विभाग के कार्य संचालन में व्यावहारिक तौर पर सचिव को सर्वाधिक सहायता उप सचिव से प्राप्त होती है । उप सचिव या तो भारतीय प्रशासनिक सेवा का कनिष्ठ अधिकारी होता है या राज्य प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है । राजस्थान लेखा सेवा के वरिष्ठ अधिकारियों को भी कभी–कभी वित्त विभाग में उप सचिव के पदों पर नियुक्त कर दिया जाता है । इसी प्रकार उप सचिव के अधीन आवश्यकतानुसार एक या एक से अधिक सहायक सचिव होते है। ये प्राय: राज्य सचिवालय सेवा के सदस्य होते है । विभाग में इनके अधीन अनुभाग अधिकारी, सहायक, शीघ्र लिपिक, वरिष्ठ लिपिकार कनिष्ठ लिपिक, और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी होते है । इनकी संख्या अलग–अलग विभाग में अलग–अलग पायी जाती है । प्राय: प्रत्येक विभाग कुछ उप–विभागों, अनुभागों या खण्डों और उप–अनुभागों या उप खण्डों में विभाजित किया जाता है ताकि कार्य की स्पष्टता बनी रहने के साथ–साथ विभागीय कार्य में कुशलता बनी रह सके । प्रत्येक अनुभाग का प्रमुख अनुभाग अधिकारी कहलाता है । अनुभाग में आने वाले समस्त पत्रों और कागजों पर उचित कार्यवाही की व्यवस्था हेतु अनुभाग अधिकारी जिम्मेदार होता है । अति आवश्यक कागजों को सहाय या उप सचिव तक भेजने की भी व्यवस्था वही करता है । अनुभाग अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निर्णय के 'क्या' की अपेक्षा इस पर अधिक जोर दे कि वह सम्पन्न 'कैसे' किया जाये । नियमों के अन्तर्गत अब यह व्यवस्था की गई है कि सामान्य तौर पर कोई भी कागज तीन स्तर तक ही यात्रा करे । यह एक प्रशंसनीय कदम है । इससे कार्यों में होने वाला अनावश्यक विलम्ब दूर हो सकता है, लेकिन व्यवहार में कार्य परम्परागत तरीके से ही होता है । राज्य सचिवालय के संगठनात्मक सौपान को ठीक से समझने हेतु देखिए चार्ट संख्या 1.1 का अवलोकन कीजिए ।

सचिवालय में प्राय: सचिवों की संख्या से विभागों की संख्या अधिक होती है । यही कारण है कि किसी सचिव के पास एक ही विभाग होता है तो किसी के पास एक से अधिक विभाग होते है । वर्तमान में लगभग 25 सचिव या आयुक्त एवं शासन सचिव ऐसे है जिनके अधीन केवल एक–एक विभाग ही है । लगभग 22 सचिव ऐसे है जिनके पास एक से अधिक विभाग भी नियंत्रण में है । सामान्यतया शासन सचिव सामान्यज्ञ (जनरलिस्ट) होते है । दो विभाग इसके अपवाद माने जाते है । राजस्थान सरकार का मुख्य अभियन्ता सार्वजनिक निर्माण विभाग का सचिव स्तर का अधिकारी माना जाता है । इसी प्रकार विधि एवं न्याय विभाग का शासन सचिव भी राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है । वर्तमान में यह दोनों अपनी इन्हीं विशेषज्ञ सेवाओं से है ।

चार्ट 1.1

राजस्थान सचिवालय का संगठनात्मक सोपान

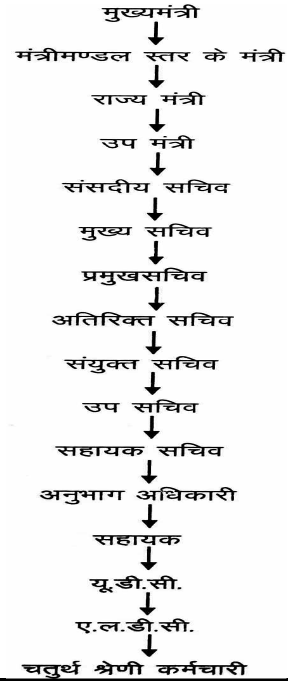

7.5 राज्य सचिवालय

राज्य सचिवालय का मुख्य कार्य मंत्रिपरिषद् को नीति–निर्माण में सहायता देना है । नीति–निर्माण हेतु आवश्यक सूचना, सामग्री और आँकड़े एकत्रित करके सचिवालय द्वारा सार रूप में मंत्रिपरिषद् के सम्मुख रखे जाते है । सचिवालय द्वारा राज्य प्रशासन का पर्यवेक्षण, नियन्त्रण और निर्देशन भी किया जाता है । सचिवालय राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों और कार्यक्रमों की क्रियान्विति की देखरेख करता है । इसके अतिरिक्त सचिवालय द्वारा समय–समय पर सरकारी कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी किया जाता है । राज्य सचिवालय के कार्यों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है:

(1) नीति निर्माण:–

राज्य सचिवालय का प्रमुख कार्य मंत्री को नीति निर्माण में सहायता देना है । निर्वाचन के समय मंत्री अनेक वायदे और चुनावी घोषणा करता है । चुनावी वायदों और घोषणाओं को ध्यान में रखकर जनता उसे चुनाव में समर्थन देती है । चुनावी वायदों और घोषणाओं को पूरा करने के लिए मंत्री को कुछ नीतियाँ बनानी होती है । राज्य प्रशासन को कुशलता से चलाने और जन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अनेक नीतियाँ बनानी होती है । इन नीतियों के निर्माण हेतु राज्य सचिवालय सम्बन्धित मंत्री को आवश्यक आकड़े, सूचना और सामग्री प्रस्तुत करता है । इन्हीं सूचनाओं और सचिवालय के द्वारा प्रस्तुत परामर्श के आधार पर मंत्री नीतियों को अंतिम रूप देता है । नीति–निर्माण के पश्चात् सचिवालय इन्हें स्पष्ट भाषा में सभी सम्बन्धियों को प्रेषित करता है ।

(2) समन्वयात्मक कार्य–

राज्य सरकार में विभिन्न विभागों और अभिकरणों के मध्य समन्वय स्थापित करने में सचिवालय महती भूमिका अदा करता है । राजनैतिक कार्यपालिका के मध्य मुख्यमंत्री मुख्य समन्वयकर्ता के रूप में कार्य करता है तो मुख्य सचिव प्रशासन में समन्वय स्थापित करता हैं । मुख्यमंत्री और मंत्रीमण्डल को भेज जाने वाले सभी कागजात मुख्य सचिव के माध्यम से ही जाते हैं । इस प्रकार सभी प्रशासनिक निर्णय मन्त्रिमण्डल में मुख्य सचिव की उपस्थिति में लिये जाते हैं । सचिवालय और राज्य प्रशासन में समन्वय स्थापित करना मुख्य सचिव का प्रमुख दायित्व है । लगभग सभी महत्वपूर्ण नीतियाँ, वित्तीय मामले, कार्मिक प्रशासन के अनेक मसले बिना मुख्य सचिव और मुख्यमंत्री स्वीकृति के तय नहीं किये जा सकते। बजट की प्रक्रिया, लेखांकन, प्रशासन में काम मे लिये जाने वाले तरीके व प्रोफोर्मा निर्धारित कर देना भी समन्वय को सुगम बनाता हैं । समय–समय पर आयोजित निरीक्षण और विभागों द्वारा तैयार किये जाने वाले प्रतिवेदन भी प्रशासन में दोहरापन, आपसी टकराव आदि को पूर्णत: समाप्त नहीं, तो कम अवश्य कर देते हैं । सारांश में यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक और प्रशासनिक नेतृत्व सचिवालय के माध्यम से सम्पूर्ण राज्य प्रशासन को सूत्रबद्ध कर देता है ।

(3) सचिवालय सहायता–

राज्य सचिवालय और मंत्रीमण्डल सचिवालय का तो निर्माण ही सचिवालय सहायता उपलब्ध करवाने के लिये हु आ है। ये सभी मंत्रियों को सहायता उपलब्ध करवाते हैं । विचाराधीन प्रत्येक विषय से सम्बन्धित आकड़े एवं सूचना के साथ अपनी ओर से उपयुक्त निर्णय हेतु आवश्यक परामर्श भी देते रहते हैं । मंत्रीमण्डल की बैठक की कार्यसूची तैयार करना, बैठक का नोटिस और कार्यसूची सदस्यों को प्रेषित कर विषय पर निर्णय लिये जाने के पश्चात् सभी संबंधितों को अवगत कराना, निर्णयों के क्रियान्वयन की देखरेख, उनका निष्पक्ष मूल्यांकन और निर्णयों में आवश्यक संशोधन करवाने के दायित्वों का निर्वाह इसी सचिवालय को करना पड़ता है ।

(4) प्रशासकीय नेतृत्व प्रदान करना–

मुख्य सचिव और सभी शासन सचिव अपने अधीन विभागों को ही नहीं वरन् सम्पूर्ण राज्य प्रशासन को प्रशासकीय नेतृत्व प्रदान करते हैं । सम्पूर्ण राज्य प्रशासन की क्षमता इसी बात पर निर्भर है कि मुख्य सचिव और सभी शासन सचिवों की प्रशासकीय दक्षता, कुशलता और नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता कितनी है । सचिवालय की कुशलता पर ही राज्य प्रशासन की कुशलता पर ही राज्य प्रशासन कठिनाई होती है, तो वे लोग दिशा–निर्देश और मार्गदर्शन हेतु बड़ी आशा भरी दृष्टि से मुख्य सचिव और शासन सचिवों की ओर देखते हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य प्रशासन को ही राज्य सचिवालय प्रशासनिक नेतृत्व उपलब्ध कराता है ।

(5) विधायी कार्य–

राज्य सचिवालय के द्वारा उनके कृत्य किये जाते हैं । सरकार द्वारा विधान मण्डल के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले सभी विधेयक, यहीं तैयार किये जाते हैं । यह विधान मण्डल के अधिवेशन बुलाने, स्थगित करने, सत्र का समापन करने और विधानसभा भंग करने जैसे महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायता करता हैं । और विधानमण्डल के सत्र में नहीं होने पर जो अध्यादेश जारी किये जाते हैं वे यहीं तैयार होते हैं । राज्यपाल द्वारा समय–समय पर विधानमण्डल को दिये जाने वाले अभिभाषण यह सचिवालय तैयार करता है । विधानमण्डल की अनेक समितियों द्वारा लिए गए महत्वपूर्ण निर्णयों

से सम्बन्धित अभिकरणों और विभागों को अवगत कराया जाता है । विधानमण्डल में पूछे गया प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के उत्तर बिना इस सचिवालय की सहायता के दिये ही नहीं जा सकते हैं ।

(6) आर्थिक नियोजन सम्बन्धित कार्य–

देश में आर्थिक नियोजन को अपनाया गया है । सचिवालय राज्य की योजना बनाकर योजना आयोग को भेजता है । सचिवालय राज्य में उपलब्ध भौतिक एवं मानवीय साधनों का आकलन करके योजनाबद्ध विकास की दृष्टि से योजना की प्राथमिकताएँ निर्धारित करता है । योजना आयोग से राज्य की योजना स्वीकृत करवाने, योजना के सफल क्रियान्वयन, समय–समय पर इसका मूल्यांकन करवाने और जरूरतों पड़ने पर योजना के क्षेत्र में सचिवालय की अहम भूमिका है ।

(7) वित्तीय एवं बजट सम्बन्धित कार्य–

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में सचिवालय की सक्रिय भागीदारी है । राज्य की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ बनी रहे इसके लिए सचिवालय निरन्तर प्रयासरत रहता है । वित्तीय प्रशासन में वित्त विभाग की केन्द्रीय भूमिका है । यह विभाग अन्य विभागों के सहयोग द्वारा ही राज्य का बजट बनवाकर स्वीकृत हेतु विधान मण्डल के सम्मुख रखता है । विधान मण्डल में बजट पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर सम्बन्धित विभाग तैयार करवाता है । बजट के सफल क्रियान्वयन के लिये वित्त विभाग पर्यवेक्षक की भूमिका निभाता है और सभी कार्यालयों से सम्पर्क बनाये रखता

(8) कार्मिक प्रशासन एवं प्रशासन सुधार–

राज्य में लोक सेवा भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थान्तरण, सेवा दशायें, अनुशासनात्मक कार्यवाही, आदि के विषय में यही नीति निर्धारित की जाती है और नियम बनाये जाते है । यही नहीं, इस विषय में उन नीतियों और नियमों का बहुत हद तक क्रियान्वयन भी यहीं किया जाता है । बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासन अपने का ढालता रहे इसके लिये कार्मिक प्रशासन और प्रशासन सुधार विभाग निरन्तर सजग और सक्रिय रहता है । इस विभाग का 'संगठन एवं विधि प्रकोष्ठ विभिन्न विभागों की जांच करके उनमें सुधार हेतु सुझाव देता रहता है । जरूरत पड़ने पर प्रशासन सुधार समितियाँ गठित करके इस क्षेत्र में सचिवालय आवश्यक कदम उठाता है ।

(9) विविध कार्य–

केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों, मंत्रालयों और संस्थाओं से और अन्य राज्यों से संपर्क और संचार कार्य सचिवालय के माध्यम से किया जाता है । सचिवालय राज्य की सांख्यिकी संस्थाओं के मध्य समन्वय बनाये रखते है तथा मंत्रियों और विभागों के मध्य उभरे विवादों को निपटाता है । यह सचिवालय उन सभी मामलों से भी सम्बद्ध रहता है जिन्हें राज्यपाल अथवा मुख्यमंत्री मंत्रीमण्डल के सम्मुख रखना चाहे ।

7.6 सचिवालय की कार्यप्रणाली

सम्पूर्ण सचिवालय के कार्य में एकरूपता बनी रहे और कुशलता का अच्छा स्तर बना रहे इस उद्देश्य से 'सचिवालय नियमावली' (Secretariat Manual) तैयार की गयी है । कार्यालय में किस प्रकार कार्यवाही की जाए इसका सम्पूर्ण विवरण सचिवालय नियमावली में दिया गया है । इस नियमावली में समय–समय पर आवश्यकतानुसार संशोधन किया जाता है । सचिवालय नियमावली तैयार करवाने, इसे अद्यतन बनाए रखने, प्रकाशित करवाने और सभी विभागों और संभागों को प्रेषित करने का दायित्व

कार्मिक एवं प्रशासन सुधार विभाग के प्रशासनिक सुधार अनुभाग I का है । इस समय प्रचलित नियमावली दो भागों में बंटी हुई है । भाग I में सरकारी काम के संचालन की विधि का विस्तृत विवरण है तथा भाग II में परिशिष्ट के रूप में नाना प्रकार के प्रपत्र, विभिन्न पदाधिकारियों के कर्तव्य आदि दिये गये हैं ।

सचिवालय नियमावली में कार्यालय में कार्यविधि, कुछ कर्मचारियों और अधिकारियों के कर्तव्य, कार्मिक प्रशासन के मामले, अनुशासनात्मक कार्यवाही की विधि, अवकाश के नियम, कार्यालय में बाह्य व्यक्तियों के प्रवेश सम्बन्धी नियम डाक निस्तारण की विधि, दो या दो से अधिक विभागों से सम्बन्धित विषयों को निपटाने की प्रक्रिया, काम में लिये जाने वाले अनेक प्रफोर्मा आदि का विवरण मिलता है।

सरकार के काम के सुविधापूर्वक संचालन हेतु राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 166 के खण्ड (2) और (3) के द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा 'कार्य– विधि नियम' जारी किये जाते हैं । समय–समय पर इनमें आवश्यकतानुसार संशोधन किया जाता है । कार्यविधि नियमावली का उद्देश्य विभाग को बांटे गये कार्य के निपटान के मामले में प्रत्येक विभाग के अधिकार, उत्तरदायित्व तथा दायित्वों की व्यवस्था करना है । विभाग को बांटे गये कार्य का निपटान कार्यभारी मंत्री अथवा उसके निर्देशानुसार किया जाता है । इन कार्य–विधि नियमों में निम्न बातों का भी उल्लेख किया गया है ।

(क) ऐसे मामले या मामलों की श्रेणियाँ जिन्हें पूर्व अनुमोदन के लिए राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रीमण्डल अथवा उसकी समितियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना होता हैं, तथा

(ख) वे परिस्थितियाँ, जिनमें निपटाये जाने वाले कार्य से मूलतः संबंधित विभाग को अन्य संबंधित विभागों से परामर्श करना होता है और अंतिम निर्णय लेने से पहले उनकी सहमति प्राप्त करनी होती है ।

सचिवालय में प्रत्येक फाइल के दो भाग होते है । एक भाग टिप्पणियों से संबंधित होता है तथा दूसरा भाग पत्र व्यवहार से संबंधित है । टिप्पणी वाले भाग में संबंधित विषय पर विभाग का अभिमत और कार्यवाही के लिए विभागीय सुझावों के बाद अग्रिम आदेश पारित किये जाते है । पत्र व्यवहार वाले भाग में किसी भी विषय पर भेजे गये तथा प्राप्त सभी पत्रों को क्रमानुसार पंजीकृत किया जाता है ।

सचिवालय की कार्यप्रणाली में जो एक बहुत बड़ा दोष वर्षों से चला आ रहा है, वह है–नोट शीट की प्रणाली । सचिवालय की कार्य प्रणाली के अध्ययन के दौरान सचिवालय में कुछ अधिकारियों में इसे 'बाबू पर आधारित नोट शीट प्रणाली' की संज्ञा दी । सचिवालय में प्रत्येक मामला या फाइल सबसे पहले कनिष्ठ लिपिक के पास से होकर गुजरती है और सोपान में प्रत्येक कर्मचारी और अधिकारी के पास होती हुई मुख्य सचिव या विभागीय सचिव या जो भी अधिकारी उस पर निर्णय लेने के लिए सक्षम है उस तक जाती है और उसी क्रम में होते हुए 'छोटे बाबू, के पास लौटती है । इस लम्बी यात्रा में अनावश्यक विलम्ब होता है । नोट बार–बार लिखने और उसे समर्थित या असमर्थित करने में अनावश्यक समय जाया होता है । यही नहीं, बाबू जो फाईल पर नोट डाल देता है उसे सामान्यतया अन्य अधिकारी अस्वीकार या चुनौती नहीं देते । इस प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता है । सम्बन्धित बाबू और सक्षम अधिकारियों के मध्य पाए जाने वाले लम्बे सोपान की औपचारिकता को छोटा किया

जाए । बाबू और सक्षम अधिकारी या सचिव के मध्य ज्यादा से ज्यादा 2 से 3 अधिकारियों के ही सम्मुख फाईल जाए इससे अधिक के सामने नहीं ।

7.7 सचिवालय कर कार्मिक

सचिवालय का प्रशासनिक अध्यक्ष मुख्य सचिव होता है । वह स्वयं भी कुछ महत्वपूर्ण विभागों का अध्यक्ष एवं मुख्यमंत्री का मुख्य परामर्शक होने के अलावा सम्पूर्ण सचिवालय संगठन और राज्य प्रशासन का मुख्य समन्वयक और नियन्त्रक होता है ।

प्रत्येक विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष ' 'शासन सचिव ' (सेक्रेटरी टु गवर्नमेंट) होता है । यह प्राय: अखिल भारतीय सेवा (आई.ए.एस.) का वरिष्ठ और अनुभवी सदस्य होता है । वह मंत्री विशेष का ही सचिव नहीं होता बल्कि उसे शासन सचिव भी कहा जाता है, जो सम्पूर्ण सरकार के लिए उस विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष माना जाता है । सचिव के अधीन राजस्थान में कुछ महत्वपूर्ण विभागों में अतिरिक्त सचिव (एडीशनल सेक्रेट्री) तथा किसी किसी में विशेष सचिव (स्पेशल सेक्रेट्री) होते है । एक विभाग के ही विशेष अनुभाग का स्वतन्त्र चार्ज, सचिव के सामान्य नियन्त्रण में रहते हुए इन्हें दे दिया जाता है । इसके नीचे एक या अधिक उप सचिव (डिप्टी सैक्रेटरी) होते है । बड़े विभागों में एक से अधिक और छोटे में एक उप सचिव नियुक्त किया जाता है । उप सचिव विभाग के कामकाज के संचालन में सचिव की व्यावहारिक तौर पर सर्वाधिक मदद करता है । उप सचिव से नीचे सहायक सचिव होता है । सहायक सचिव भी विभाग की आवश्यकतानुसार एक से अधिक हो सकते है ।

अधिकारी वर्ग की इस श्रृंखला की मदद हेतु अनुभाग अधिकारी (सैक्शन आफिसर), सहायक, स्टेनोग्राफर, वरिष्ठ लिपिक, कनिष्ठ लिपिक और टाइपिस्ट आदि होते है । इनकी संख्या प्रत्येक विभाग में उसकी आन्तरिक संरचना की आवश्यकता के अनुसार होती है । सभी विभागों में उनकी आवश्यकतानुसार चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, दफ़्तरी, चौकीदार आदि नियुक्त किये जाते है ।

चयन एवं नियुक्ति

सचिवालय में विभाग के सर्वोच्च प्रशासकीय पद पर सचिव की नियुक्ति का निर्णय अंतिम रूप से संबन्धित मंत्री से अनौपचारिक परामर्श के बाद मुख्यमंत्री का निर्णय अन्तिम होता है । सचिव से लेकर उप सचिव तक के सभी अधिकारी प्राय: आई.ए.एस. अधिकारियों में से ही नियुक्त किये जाते है । इनमें से कुछ लोग राज्य सेवा से पदोन्नति प्राप्त आई. ए. एस. भी होते है । उप सचिव के पद पर कभी–कभी राज्य सेवा एवं सचिवालय सेवा के पदोन्नत अधिकारी भी अनुभव की दृष्टि से नियुक्त किये जाते है । सचिवों की नियुक्ति के समय प्राय: उनके विगत अनुभव उनके विशिष्ट ज्ञान और रूचि का भी ध्यान रखा जाता है । सचिवों के मन्त्रियों से अपने निजी सम्बन्ध, सम्बन्धित मंत्री का मुख्यमंत्री से सम्बन्ध आदि कारक भी उनकी विभिन्न विभागों में नियुक्ति में प्रभावी कारक की भूमिका निभाते हैं ।

इस प्रकार सचिवालय में अधिकारियों की नियुक्ति प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा नहीं वरन् पदोन्नति द्वारा की जाती है । सचिवालय में महत्वपूर्ण पद पर पहुँचने वाले अधिकारियों को क्षेत्रीय प्रशासन का पर्याप्त अनुभव व ज्ञान हो, वे कुशल ईमानदार व तकनीकी रूप से दक्ष हो, नियुक्ति के समय यह ध्यान रखा जाता है कि अधिकारी की योग्यता, अनुभव एवं उपयुक्तता उचित हो । प्रशासनिक सुधार आयोग, राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति एवं पंजाब प्रशासनिक सुधार समिति ने यह अभिशंषा की

थी कि राज्य सरकार के सचिवों का चयन मुख्यमंत्री द्वारा सही तरीके से, एक उच्च स्तरीय समिति की सिफारिशों के आधार पर किया जाना चाहिए । चयन का एक मात्र आधार योग्यता, अनुभव एवं उपयुक्तता हो ।

सचिवालय के प्रत्येक विभाग को उप विभाग, अनुभागों एवं शाखाओं में बांटा जाता है । प्रत्येक सहायक सचिव के अधीन एक या अधिक शाखाएं और अनुभाग होते है । प्रत्येक अनुभाग एक अनुभाग अधिकारी द्वारा नियन्त्रित होता है ।

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के कारण हुई, राज्य के कार्यों की वृद्धि के परिणामस्वरूप सचिवालय का आकार / प्रकार भी विगत वर्षों से बहुत बढ़ गया है । अनेक बार ऐसा लगता है कि इस अनावश्यक वृद्धि से कार्यों का दोहराव व अतिराव हो रहा है । सरकारी कामकाज में समय एवं श्रम की बचत हेतु पदसोपान के स्तरों को घटा कर एक युक्ति संगत स्तर तक लाना होगा।

7.8 सचिवालय प्रशासन की समस्याएँ

सचिवालय प्रशासन द्वारा सदैव चुनौतीपूर्ण कार्य किये जाते है । विषयों का आवंटन, निर्णय प्रक्रिया में सुधार, फाइल गुजरने के अत्यधिक चरण पर्याप्त मात्रा में शक्तियों का प्रत्यायोजन नहीं किया जाना, पारदर्शिता, लोक मित्रतापूर्ण भावना की कमी, स्वयं को अन्य कार्मिकों से उच्च एवं विशिष्ट समझने की भावना आदि अनेक समस्याएं है जिन्होंने सदैव राज्य स्तरीय प्रशासनिक सुधार समितियों एवं अन्य प्रशासनिक क्षेत्र से जुड़े अकादमिक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है । इनमें से कुछ का आगे विवेचन किया गया है:–

1. जब नई सरकार का गठन होता है तब विगत सरकार के समय में कार्य कर रहे लगभग सभी उच्च अधिकारियों का स्थानान्तरण कर दिया जाता है । राजनीतिक परिवर्तन का प्रथम आघात सचिवालय को ही सहन करना पड़ता है । ऐसी स्थिति में नव पदस्थापित कार्मिक अपने नए आकाओं का विश्वास जीतने हेतु उचित अनुचित कार्य करते है ।
2. पदस्थापन की कार्यकाल प्रणाली (Tenure System) का सही ढंग से पालन नहीं किया जाता है । ऐसी स्थिति में अनेक बार उच्च स्तरीय लोक सेवक केन्द्र एवं राज्य सचिवालय में ही कार्यरत रहते है तथा व्यवहार में उन्हें क्षेत्र प्रशासन का समुचित अनुभव नहीं हो पाता है ।
3. सचिवालय में सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण हो गया है । कार्यकारी विभागाध्यक्ष अनेक बार यह महसूस करते है कि वह सचिवालय विभागों के अधीनस्थ हो गये है ।
4. उच्चतर पद सचिवालय में निहित होने के कारण अधिकतर लोकसेवक सचिवालय में अपना पदस्थापन चाहते है ।
5. सचिवालय लाल फीताशाही के शिकार है । यहाँ निर्णय प्रक्रिया अत्यधिक धीमी, है । सचिवालय में प्रत्येक कार्य अनेक चरणों एवं कार्यकारियों से होकर गुजरता है । फलत: सामान्य कार्य में भी अत्यधिक विलम्ब हो जाता है ।
6. सचिवालय में कार्मिकों की संख्या आवश्यकता से ज्यादा है । राजधानी नगर में रहने की लालसा, सचिवालय से मिलने वाले अन्य फायदे आदि के कारण कार्मिक सचिवालय में रहकर कार्य करना चाहते है ।

7. सचिवालय के कार्मिक श्रेष्ठता के अहं की भावना से पीडित है । यहाँ तक कि कार्यपालिका अभिकरणों के विरूद्ध इनमें उदण्डता और घमण्ड होता है । कार्यपालिका अभिकरणों को उनके उत्तरदायित्व वहन में प्रोत्साहन देने की अपेक्षा, सचिवालय उनके मार्ग में रोड़े अटकाता है । एक नीति निर्माण संस्था अपने कार्यों को अधिक कुशलता से सम्पन्न कर सकती है । अगर यह वास्तव में परिस्थितियों के घनिष्ठ सम्पर्क में हो ।

7.9 समाधान

उपर्युक्त प्रत्येक आलोचना में सत्य का एक अंश अवश्य है । यह जीवनदायक होगा अगर सचिवालय को इन दुर्बलताओं और अपवित्रताओं से मुक्त कर दिया जाए जो इसके चारों ओर त्रुटिपूर्ण गृह प्रबन्ध के कारण एकत्रित हो गई है । इस लक्ष्य हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है :–

1. सचिवालय को केवल नीति–निर्माण कार्य तक ही सीमित रहना चाहिए । गैर–नीति निर्माण कार्य पूर्णरूपेण कार्यपालिका का दायित्व होना चाहिए । इसका आशय यह है कि कार्यपालिका अभिकरणों को प्रकार्यों, शक्तियों और सत्ता का अधिक से अधिक प्रतिहस्तान्तरण किया जाए ।
2. इसकी प्रकार्य शैली को भी सुविधाजनक बनाया जाए तथा कार्यालय के वर्चस्व से मुक्ति पा ली जाए । दूसरे शब्दों में, इसे अधिकारी–अभिमुखीकृत प्रशासन अवधारणा के आधार पर कार्य करने चाहिए । इसके अतिरिक्त सचिवालय और क्षेत्रों के मध्य यथार्थ सम्पर्क बनाए रखने के लिए कार्मिकों का व्यवस्थित स्थानान्तरण होना चाहिए ।
3. इस बात के लिए वैध तर्क नहीं है कि उच्च स्तरों पर सचिवालयों में नियुक्त अधिकारियों के भत्ते क्षेत्र में नियुक्त अधिकारियों के भत्ते की अपेक्षा अधिक होने चाहिए । अत: सचिवालय में नियुक्त अधिकारियों में विशेष भत्ते उनकी नियुक्ति के एक वर्ष बाद समाप्त कर दिये जाने चाहिए । सचिवालय में नियुक्त अधिकारी को अतिरिक्त भत्ते इसीलिए दिये जाते है कि उसे नए स्थान में व्यवस्था–प्रबन्ध के लिए व्यय करना पड़ता है । अत: इस अतिरिक्त भले को एक वर्ष से अधिक देने का कोई औचित्य नहीं है ।

एक सचिवालय में कई विभाग होते है । इनकी संख्या कुल कार्य बोझ, कुल निश्चित विषयों को दी गई वरीयताएं, समय की आवश्यकता इत्यादि कारणों से विशाल है । एक विभाग का राजनीतिक प्रमुख, मंत्री तथा प्रशासनिक प्रमुख, सचिव होता है यह स्मरण रखना चाहिए कि सचिवालय में अनेक विभाग बनाए गए है । ताकि सरकार में पूर्ण रूप से कार्यकुशलता बनी रहे ।

7.10 सारांश

सचिवालय एक कार्यालय है । यह एक ऐसा संगठन है जो सरकार को उसके उत्तरदायित्व निभाने में सहायक होता है। सचिवालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । यह मंत्रियों को राजकीय नीति–निर्माण में सहायता देता है । सचिवालय एक स्टाफ संस्था है । अत: राज्य के प्रभावी शासन संचालन हेतु उचित सलाह एवं अन्य जानकारियां उपलब्ध कराता है । सचिवालय का संगठन लगभग सम्पूर्ण राज्यों में एक समान सा ही है । इसमें उच्च स्तर पर मुख्य सचिव होता है जो सम्पूर्ण सचिवालय का नेतृत्व करता है । सचिवालय में उच्चतर कार्मिक का आधार कार्यकाल प्रणाली में निहित है । राज्य में सुव्यवस्थित प्रशासन हेतु सचिवालय प्रत्यक्षतः उत्तरदायी होता है । व्यवहार में सचिवालय राज्य

के लोक प्रशासन में अपरिहार्य और वांछनीय होने के कारण एक अनिवार्य संस्था है । वर्तमान शासन व्यवस्था में इसकी अनिश्चित निरंतरता पर कोई भी गंभीर प्रश्न चिह्न नहीं लगा सकता ।

7.11 शब्दावली

सचिवालय – वह स्थान जहां सचिव इत्यादि अधिकारियों के कार्यालय होते हैं।

टेन्योर प्रणाली – सचिवालय में उच्च स्तरीय अधिकारियों के पदस्थापन की प्रणाली जिसमें क्षेत्र का अनुभव प्राप्त अधिकारी निश्चित .कार्यकाल हेतु आते है ।

विधायी – नियम, कानून आदि से संबंधित ।

7.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. श्रीराम माहेश्वरी, भारतीय प्रशासन, ओरियण्टल लांग्मेन, 2001, नई दिल्ली,
2. राजस्थान सरकार, प्रशासनिक सुधार समिति, प्रतिवेदन, जयपुर ।
3. रविन्द्र शर्मा, राज्य प्रशासन, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर ।
4. राजस्थान सरकार, प्रशासनिक सुधार आयोग (शिवचरण माथुर) जयपुर, मार्च 2001

7.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. राज्य सचिवालय के कार्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन करो ।
2. सचिवालय प्रशासन में निहित समस्याओं का उल्लेख करते हुए उनके समाधान के उपाय सुझाइये।
3. सचिवालय की कार्यप्रणाली समझाइये ।
4. राज्य सचिवालय की आवश्यकता पर टिप्पणी कीजिए ।
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए ।

   (अ) कार्यकाल प्रणाली (Tenure system)
   (ब) राजस्थान में सचिवालय का विकास
   (स) सचिवालय में कार्मिक व्यवस्था
   (द) सचिवालय में कार्य प्रणाली

इकाई – 08

मुख्य सचिव: राज्य प्रशासन में उसकी भूमिका एवं महत्व

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मुख्य सचिव का चयन

8.3 मुख्य सचिव के कार्य और भूमिका

8.4 मुख्य सचिव एक सलाहकार के रूप में

8.5 मुख्यसचिव समन्वयक के रूप में

8.6 मुख्य सचिव – विभागाध्यक्ष के रूप में

8.7 अन्य महत्वपूर्ण कार्य

8.8 आपातकाल में मुख्य सचिव की भूमिका

8.9 राष्ट्रपति शासन के दौरान मुख्य सचिव की भूमिका

8.10 निष्कर्ष

8.11 अभ्यास प्रश्न

8.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आज जान पाओगे कि –

- राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका के बारे में,
- मुख्य सचिव के विभिन्न कार्यों के बारे में
- मुख्य सचिव एक विभागाध्यक्ष के रूप में
- राष्ट्रपति शासन के दौरान मुख्य सचिव की भूमिका के बारे में ।

8.1 प्रस्तावना

राज्य प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने में मुख्य सचिव महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। संसदीय शासन प्रणाली में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका प्रशासन के तीन आधारभूत स्तम्भ होते हैं । किसी भी राज्य की कार्यपालिका को संगठन की दृष्टि से तीन भागों में बांटा जा सकता है :

(i) राज्यपाल और मन्त्रिमण्डल जो मुख्य रूप से नीति–निर्माण के लिए उत्तरदायी होते हैं;

(ii) सचिवालय संगठन को राज्यपाल और मन्त्रिमण्डल को नीति–निर्माण में आवश्यक सहायता देता है; तथा

(iii) विभिन्न कार्यकारी विभाग जो सचिवालय द्वारा निर्धारित नीतियों की अनुपालना और क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होते हैं ।

सचिवालय राज्य सरकार का मुख्य प्रशासनिक अंग है जो कि संविधान की राज्य सूची में वर्णित विषयों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है । मन्त्रिमण्डल को विभिन्न नीतियों से सम्बन्धित विषयों की विस्तृत जानकारी सचिवालय द्वारा ही प्राप्त होती है । प्रत्येक विभाग एक निर्वाचित मन्त्री के अधीन कार्य करता है । प्रशासन की दृष्टि से प्रत्येक विभाग का एक सचिव होता है, जो सम्बन्धित मन्त्री को नीति निर्माण से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध कराता है तथा मन्त्रिमण्डल द्वारा निर्धारित नीतियों के क्रियान्वयन के लिए जिम्मेदार होता है । सचिव के अधीन अतिरिक्त सचिव, उप सचिव, सहायक सचिव तथा अन्य अधीनस्थ कार्यकारी होते हैं, जिनकी संख्या अलग–अलग विभागों में भिन्न होती है । सचिव स्थायी अधिकारी होते हैं और विभाग के शीर्षस्थ लोक सेवक होने के नाते व्यावहारिक रूप से इन्हें विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष कहा जा सकता है । यह भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) के अधिकारी होते हैं । तथा मन्त्रियों की तरह इनका चयन एक निश्चित अवधि (पांच वर्ष) के लिए न होकर, सेवानिवृत्ति तक होता है और इस कारण उसे सचिवालय का कार्यकारी अध्यक्ष या मुख्य प्रशासनिक. अधिकारी कहा जा सकता हे ।

वर्तमान राजस्थान का निर्माण विभिन्न राजपूताना राज्यों के एकीकरण का परिणाम है । एकीकरण की यह प्रक्रिया 1948 में प्रारम्भ हुई और 1956 में समाप्त हुई । 1948 से लेकर 1958 तक की अवधि में जिन व्यक्तियों की मुख्य सचिव के पद पर नियुक्ति की गई, वे सभी, केवल एक को छोडकर, (श्री किशनपुरी) अन्य राज्य सेवाओं अथवा केन्द्रीय सेवा के व्यक्ति थे । इसका मुख्य कारण यह माना जाता है कि एकीकरण की प्रक्रिया के दौरान किसी एक राजपूताना राज्य के व्यक्ति को मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त करने से अन्य राज्यों के व्यक्तियों में असंतोष उत्पन्न हो सकता था।

1958 में अखिल भारतीय सेवा के राजस्थान राज्य कॉडर के भगवान सिंह मेहता को मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त किया गया, जिनका कार्यकाल उनके बाद में नियुक्त किये गये सभी अन्य व्यक्तियों से लम्बी अवधि का रहा । 1958 के बाद से जिन व्यक्तियों ने मुख्य सचिव के पद पर कार्य किया है उनकी सूची निम्न प्रकार है

क्रं.सं .	नाम	अवधि
1.	बीमेहता .	मई 1966 से अक्टूबर 1958
2.	के यू मेनन .पी .	अक्टूबर 1968 से सितम्बर 1966
3.	आर माथुर .डी .	सितम्बर 1969 से मई 1968
4.	जेड झाला .एस .	मई 1971 से अगस्त 19689
5.	एस खुराना .एल .	अगस्त 1975 से जून 1971
6.	मोहन मुखर्जी	जुलाई 1977 से जून 1975
7.	जीभनोत .के .	दिसम्बर 1977 से जनवरी 1981
8.	एम वली .के .एम .	जनवरी 1984 से फरवरी 1981
9.	आनन्द मोहन लाल	मार्च 1987 से फरवरी 1984
10.	बीमाथुर .एल .बी .	मार्च से निरन्तर 1987,

8.2 मुख्य सचिव का चयन

सभी राज्यों में मुख्य सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा का एक वरिष्ठ अधिकारी होता है । इसका चयन मुख्यतः वरीयता के आधार पर किया जाता है, किन्तु यह देखा गया है कि कभी–कभी मुख्य सचिव के चयन में योग्यता और अन्य बातें भी निर्णायक होती हैं । मुख्य सचिव का चयन राज्य का मुख्यमन्त्री करता है । वह अगर चाहे तो अनौपचारिक रूप से अपने केबिनेट के साथियों से परामर्श कर सकता है किन्तु अन्तिम निर्णय मुख्यमन्त्री का ही होता है ।

मुख्य सचिव के चयन मे जिन मुख्य तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है वे निम्नलिखित हैं:

1. वरीयता
2. सेवा अभिलेख, कार्य निष्पादन तथा योग्यता; और
3. मुख्यमंत्री का अधिकारी मे विश्वास ।

सामान्यतया राज्य में कार्यरत भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठतम व्यक्तियों में से उनकी योग्यता के आधार पर मुख्य सचिव का चयन किया जाता है तथा मुख्यमन्त्री इस तथ्य को भी ध्यान में रखता है कि वह अधिकारी उसकी अपेक्षाओं को पूरा कर पायेगा या नहीं । हाल ही में हुए तीन मुख्य सचिवों के चयन से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है कि मुख्य सचिव का चयन तथा सेवा काल सम्बन्धित मुख्यमन्त्री पर निर्भर करता है । सामान्यतया मुख्यमन्त्री अपनी पसन्द के व्यक्ति को ही मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त करता है इस कारण यह कहा जा सकता है कि मुख्य सचिव के चयन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका मुख्यमन्त्री की ही होती है । राज्य प्रशासन को सुचारु रूप से और प्रभावी ढंग से चलाने के लिए यह आवश्यक भी है कि मुख्यमन्त्री और मुख्य सचिव के आपसी संबन्ध परस्पर ठोस विश्वास पर आधारित हों। मुख्य सचिव के पद की महत्ता को ध्यान में रखते हुए ही प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह सुझाव दिया है कि मुख्य –सचिव का चयन बहुत ही सावधानी से किया जाना चाहिए । वह एक वरीयतम प्रभावी व्यक्ति होना चाहिए जिसे अपनी योग्यता, अनुभव ईमानदारी और निष्पक्षता के कारण सभी अधिकारियों का विश्वास और आदर प्राप्त हो । अगर हम राजस्थान राज्य प्रशासन के इतिहास को देखें तो सामान्यतया मालूम होगा कि राजस्थान के एकीकरण के बाद से केवल भगवनसिंह मेहता ही एकमात्र ऐसे मुख्य सचिव रहे हैं जिन्होंने आठ वर्ष की अवधि से अधिक तक मुख्य सचिव के पद पर कार्य किया है । इसका मुख्य कारण मुख्यमन्त्री मोहनलाल सुखाड़िया की लम्बा कार्यकाल तथा मुख्य सचिव के साथ उनके परस्पर घनिष्ठ संबन्ध ही रहे हैं । इसके अलावा श्री मेहता ने एकीकरण के बाद की समस्याओं का कुशलता से सामना किया और संपूर्ण प्रशासन तंत्र को एक नया मोड़ दिया जिससे राजस्थान आज अग्रणी राज्यों में माना जाता है।

8.3 मुख्य सचिव के कार्य और भूमिका

मुख्य सचिव को राज्य प्रशासन का केन्द्र–बिन्दु कहा जाता है । उसके औपचारिक कर्तव्यों का वर्णन राज्य सरकार के कार्य विधि नियमों (Rules of Business) में किया गया है । ' किन्तु यह नियम राज्य प्रशासन में उसकी जो वास्तविक प्रभावी भूमिका होती है उसका सही दिग्दर्शन नहीं कराते । सामान्यतया मुख्य सचिव तीन प्रकार से कार्य करता है । सबसे पहले तो मन्त्रिमण्डलीय सलाहकार के रूप में कार्य करता है । दूसरा, वह संपूर्ण प्रशासनिक तंत्र का मुखिया होता है ओर राज्य प्रशासन के समन्वयक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । तीसरा, मुख्य सचिव कुछ विभागों

का कार्यकारी अध्यक्ष भी होता है और इस तरह वह विभागीय अध्यक्ष की कुछ जिम्मेदारियां भी निभाता है । मुख्य सचिव की वास्तविक भूमिका और शक्तियों को समझने के लिए इन कार्यों को विस्तार से जानना आवश्यक है ।

8.4 मुख्य सचिव एक सलाहकार के रूप में

मुख्य सचिव राज्य मन्त्रिमण्डल का सचिव होता है । मंत्रीमण्डल की बैठकों में जो भी मामले प्रस्तुत किये जाते हैं वह सभी मुख्य सचिव के द्वारा ही प्रेषित किये जाते हैं, चाहे वह किसी भी विभाग से संबंधित हों । मन्त्रिमण्डलीय सचिव के रूप में मुख्य सचिव जो कार्य करता है उनमें मन्त्रिमण्डल की बैठकों का ब्यौरा (Agenda) तैयार करना, उनकी व्यवस्था करना तथा कार्यवाहियों का रिकार्ड रखना शामिल है । राजस्थान में व 1960 में अलग से एक मन्त्रिमण्डल सचिवालय विभाग (Cabinet Seceretariat Department) की स्थापना की गई । 1960 में राज्य सरकार के संगठन एवं पद्धति विभाग की सिफारिश पर अलग से इस मन्त्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना की गई थी । इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य मन्त्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत किये जाने वाले मामलों की प्रक्रिया में एकरूपता स्थापित करना, मन्त्रिमण्डल का ध्यान अत्यावश्यक मामलों की ओर आकर्षित करना तथा मन्त्रिमण्डल के निर्णयों के प्रभावी क्रियान्वयन में सहायता पहुंचाना था । 1960 से पहले राजस्थान में ऐसा कोई संगठन नहीं था जो आवश्यक सांख्यिकी या अन्य जानकारी के लिए एक सूचना कोष के रूप में कार्य कर सके । इस कमी को पूरा करने के लिए मन्त्रिमण्डल सचिवालय विभाग की स्थापना की गई, जिसका मुखिया मुख्य सचिव होता है । यह विभाग मुख्य सचिव को, मन्त्रिमण्डल सचिव के रूप में कार्य करने में सहायता उपलब्ध कराता है ।

इन औपचारिक कार्यों के अलावा मुख्य सचिव का एक महत्वपूर्ण कार्य मन्त्रिमण्डल को नीति निर्माण के सम्बन्ध में आवश्यक सहायता और सलाह देता है । खासतौर पर यह मुख्यमन्त्री के सलाहकार के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । मुख्य सचिव मन्त्रिमण्डल की सभी बैठकों में भाग लेता है । इन बैठकों में मुख्य सचिव से अनेक महत्वपूर्ण मामलों पर सलाह ली जाती है । वह स्वयं अपनी ओर से किसी भी मामले पर विचार प्रस्तुत कर सकता है । इस तरह से वह नीति निर्माण की प्रक्रिया में भी भागीदार होता है । संवैधानिक रूप से नीति–निर्माण के लिए मुख्यमन्त्री और मन्त्रिमण्डल ही उत्तरदायी होते हैं किन्तु मुख्य सचिव तथा अन्य वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी सलाहकारों के रूप में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं । सामान्यत: इन अधिकारियों की सलाह की अवहेलना नहीं की जाती, क्योंकि स्थायी अधिकारी होने के कारण इनका अनुभव उन मन्त्रियों से ज्यादा होता है, जो कि केवल कुछ ही वर्षा के लिये चुनकर आते हैं । इसके अलावा इन अधिकारियों का नीतियों के क्रियान्वयन से भी सीधा सम्बन्ध होता है, और कोई भी नीति अगर सहो रूप से क्रियान्वित नहीं की जा सकती तो वह महत्वहीन हो जाती है । मुख्य सचिव से राज्य प्रशासन की व्यापक नीति एवं तत्सम्बन्धित निर्णय सम्बन्धित सभी मामलों पर सलाह ली जाती है और उस पर यह जिम्मेदारी होती है कि वह दिन प्रतिदिन को प्रशासनिक गतिविधियों तथा नीति–क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली कठिनाईओं को ध्यान में रखते हुए सम्बन्धित नीति के विषय में अपने सुझाव दे । मन्त्रिमण्डल के बैठकों के अलावा मुख्य सचिव अनौपचारिक रूप से भी मुख्यमंत्री की समय–समय पर आवश्यक सुझाव और सलाह दे सकता है । यहां पर यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि नीति निर्माण की प्रक्रिया में मुख्य सचिव की भूमिका

की सीमाएं उसके मुख्यमन्त्री से आपसी सम्बन्ध तथा स्वयं के नेतृत्व सम्बन्धी गुणों और प्रशासनिक कार्यकुशलता पर निर्भर करती है ।

8.5 मुख्यसचिव समन्वयक के रूप में

राज्य प्रशासनिक तन्त्र के मुखिया के रूप में मुख्य सचिव विभिन्न सचिवालय विभागों के कार्यों के समन्वय के लिए उत्तरदायी होता है । प्रशासनिक स्तर पर मुख्य सचिव के पास नीति निर्माण सम्बन्धी महत्वपूर्ण अधिकार होते हैं । सम्पूर्ण सचिवालय प्रशासन पर मुख्य सचिव का नियन्त्रण होता है और वह सचिवालय के कार्यों को सुचारु और अधिक प्रभावी ढंग से चलाने के लिए कोई भी कदम उठा सकता है । मुख्य सचिव का यह भी उत्तरदायित्व होता है कि वह यह ध्यान में रखे कि राज्य सरकार विभिन्न विभागों से सम्बन्धित जो भी नियम बनाये, उनमें कुछ अंश तक एकरूपता हो । राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति (1963) ने अपने प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया है कि वर्तमान नियमों और कार्यकलापों में परिवर्तन सम्बन्धी सभी सुझाव, योजनायें या सिद्धान्त मुख्य सचिव द्वारा ही उठाये जाने चाहिए ।

मुख्य सचिव किसी भी विभाग से सम्बन्धित किसी भी मामले की पत्रावली का निरीक्षण करने के लिए सक्षम होता है । वह जब भी चाहे किसी विभाग की कोई भी पत्रावली मंगा सकता है, और कोई सचिव उसकी इस आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता । ऐसे मामलों के अध्ययन के पश्चात वह चाहे तो पत्रावली सम्बन्धित मंत्री को आवश्यक आदेश के लिए लौटा सकता है या अपने सुझावों के साथ मुख्यमन्त्री को भेज सकता है । यह अधिकार उसे विभिन्न विभागों की गतिविधियों और कार्यों पर नियन्त्रण रखने मे सहायक होता है जो कि प्रशासनिक कार्यों के प्रभावी समन्वय के लिए बहुत आवश्यक है ।

प्रशासनिक सुधार आयोग (1966–70) के अध्ययन दल न राज्य प्रशासन पर अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया है कि मुख्य सचिव के पद को अधिक शक्तिशाली बनाया जाना आवश्यक है क्योंकि मुख्य सचिव को मुख्यमन्त्री के अधीन मुख्य समन्वयक के रूप में कार्य करना होता है । सरकारी सचिवों के समूह का मुखिया होने के कारण यह आवश्यक है कि मुख्य सचिव एक वरिष्ठ अधिकारी हो और अत्यधिक कार्यकुशलता और योग्यता रखता हो । उसे राज्य की सभी सेवाओं का न केवल विश्वास और आदर प्राप्त होना चाहिए बल्कि केन्द्र में भी उसकी अच्छी प्रतिष्ठा होनी चाहिये ।

राजस्थान में विभिन्न राज्य स्तरीय योजना और विकास समन्वय समितियां (Planning and Development Co–ordination Committee) कायम की गई है तो विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य करती है । वर्तमान में इन समितियों की संख्या 13 है । मुख्य सचिव इन सभी समितियों का अध्यक्ष होता है । इन समितियों की बैठकों में सम्बन्धित विभागाध्यक्षों को आमंत्रित किया जाता है तथा वित्त सचिव एवं विशेष सचिव आयोजना सभी समितियों की बैठकों में भाग लेते हैं । इन समितियों का मुख्य उद्देश्य अन्त–विभागीय मतभेदों को दूर करना और परस्पर सद्भावना की भावना को बढ़ावा देना है । इन समितियों द्वारा लिये गये निर्णय अन्तिम सरकारी निर्णय माने जाते हैं । इन समितियों के माध्यम से मुख्य सचिव विभिन्न विभागीय योजनाओं की प्रगति और उनके क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों से अवगत रहता है । समितियों के अध्यक्ष के रूप में मुख्य सचिव आपसी विभागीय मतभेदों को आसानी से दूर कर सकता है और इस प्रकार राज्य प्रशासन को सफलतापूर्वक संचालित कर सकने में सक्षम होता है ।

मुख्य सचिव योजना विभाग तथा कार्मिक और प्रशासनिक सुधार विभाग का सचिव होने के कारण भी समन्वयक का कार्य अधिक सक्षमता से कर सकता है । इसके अलावा वह सचिवों की बैठकों के अध्यक्षता करता है और इस प्रकार उसे विभिन्न विभागों से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों पर आपसी विचार विमर्श द्वारा उचित समन्वय और सहयोग स्थापित करने में सहायता मिलती है । जिला. स्तर पर प्रशासनिक कार्यों. के समन्वय के लिए क्षेत्रीय अधिकारियों की बैठकें होती हैं, जिनकी अध्यक्षता मुख्य सचिव करता है । इस प्रकार वह राज्य और जिला प्रशासन के समन्वय के रूप में भी कार्य करता है । सभी विकास और नियामकीय विभागों के प्रतिनिधि तथा जिलाधीश इन बैठकों में भाग लेते हैं तथा इसमें क्षेत्रीय समस्याओं तथा जिलाधीशों के कार्य में आने वाली कठिनाइयों पर विचार विमर्श किया जाता है । यह बात भी महत्वपूर्ण है कि हर एक प्रशासनिक विभाग एक मन्त्री या राज्यमन्त्री के अधीन कार्य करता है, और जिलाधीश की एक ऐसा प्रशासनिक अधिकारी है जिसका किसी राजनैतिक मन्त्री से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता । मुख्य सचिव ही एक ऐसा व्यक्ति है जो जिलाधीशों के कार्यों पर नियन्त्रण रख सकता है और उसका यह उत्तरदायित्व होता है कि वह जिलाधीश के कार्यों के बारे में पूर्ण जानकारी रखे ।

मुख्य सचिव अपने राज्य तथा केन्द्र और अन्य राज्य सरकारों के बीच आवश्यक संचार माध्यम का कार्य करता है । केन्द्र में होने वाली मुख्य सचिवों की वार्षिक बैठक में वह अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करता है । इसके अलावा वह राष्ट्रीय विकास आयोग तथा जोनल कौन्सिल की बैठकों में भी भाग लेता है । सामान्यत: अंतराज्यीय सद्भाव और मतभेदों के सभी मामलों पर मुख्य सचिव की सलाह ली जाती है । इस तरह मुख्य सचिव केन्द्र व राज्य प्रशासन तथा विभिन्न राज्यों के प्रशासन के साथ अपने राज्य का प्रशासनिक समन्वय बिठाने में कड़ी का काम करता है ।

8.6 मुख्य सचिव – विभागाध्यक्ष रूप में

मुख्य सचिव कुछ विभागों के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य करता है । इस संदर्भ में मुख्य सचिव की स्थिति में विभिन्न राज्यों में अंतर होता है । राजस्थान में सामान्य प्रशासन 'कार्मिक और प्रशासनिक सुधार' मन्त्रिमण्डल सचिवालय तथा योजना विभाग मुख्य सचिव के अधीन है । मुख्य सचिव की अत्यधिक व्यवस्था के कारण इन सभी विभागों में दैनिक कार्यों का मुख्य उत्तरदायित्व एक उप सचिव या विशेष सचिव का होता है, जो मुख्य सचिव की देखरेख में कार्य करता है । इन सभी विभागों में कुछ महत्वपूर्ण मामले ऐसे होते हैं जिन पर अन्तिम निर्णय मुख्य सचिव का ही लेता है । ऐसे सभी मामलों का उल्लेख संबंधित विभागों के ' स्टेंड़िंग आर्डर' ' में स्पष्ट होता है ।

8.7 अन्य महत्वपूर्ण कार्य

उपरोक्त सभी कार्यों के अलावा कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य ऐसे हैं जिनके कारण मुख्य सचिव के पद की गरिमा और बढ़ जाती है । इनमें से एक मुख्य कार्य है राज्य में कानून और व्यवस्था कायम रखने से सम्बन्धित मामले । मुख्य सचिव के लिए यह आवश्यक होता है कि वह राज्य की कानून और व्यवस्था की स्थिति के बारे में पूर्ण जानकारी रखे । इसके लिए उसे राज्य के पुलिस महानिरीक्षक, गृह आयुक्त तथा जिला मजिस्ट्रेटों से नियमित सम्पर्क बनाये रखना होता है । सामान्यत: कानून और व्यवस्था संबंधी सभी महत्वपूर्ण मामलों पर मुख्य सचिव से विचार विमर्श किया जाता है और इसकी

जिम्मेदारी होती है कि वह मुख्यमन्त्री को किसी भी संभावित अव्यवस्था की स्थिति के बारे में जानकारी कराए और ऐसी स्थिति से निपटने के लिए आवश्यक सहायता सुलभ कराए ।

8.8 आपातकाल मुख्य सचिव की भूमिका

आपातकाल में मुख्य सचिव की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है और वह व्यावहारिक रूप से सम्पूर्ण राज्य प्रशासनिक तन्त्र का केन्द्र बिन्दु बन जाता है । ऐसे समय में मुख्य सचिव का यह कर्तव्य होता है कि वह महत्वपूर्ण निर्णयों के शीघ्र क्रियान्वयन की दिशा में कार्य करे और अनावश्यक देरी न होने दे । संकट की स्थिति में कायम की जाने वाले सभी महत्वपूर्ण समितियों का मुख्य सचिव सदस्य बनाया जाता है, जिनमें महत्वपूर्ण उच्च स्तरीय निर्णय लिये जाते हैं ।

8.9 राष्ट्रपति शासन के दौरान मुख्य सचिव की भूमिका

राष्ट्रपति शासन के दौरान भी मुख्य सचिव अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। ऐसी अवधि के दौरान वह सीधे राज्यपाल के निर्देशन में कार्य करता है तथा सम्पूर्ण राज्य प्रशासन के संचालन के लिए उत्तरदायी होता है । मन्त्रीमण्डल के अभाव में, सभी महत्वपूर्ण निर्णय मुख्य सचिव के द्वारा ही लिये जाते हैं तथा सभी सचिवालय विभाग उसके निर्देशन में ही कार्य करते हैं ।

8.10 निष्कर्ष

मुख्य सचिव के कार्यों के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह राज्य प्रशासन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है किन्तु जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है कि उसकी भूमिका स्वयं उसके नेतृत्व संबंधी गुणों और कार्य कुशलता पर निर्भर करती है । उसका प्रभाव अन्य उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के सद्भाव और सहयोग पर निर्भर करता है । एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष उसका नागरिकों से निजी सम्पर्क भी है । उसे अपने व्यस्त समय में कुछ समय लोगों से मिलने के लिये निकालना आवश्यक है । साथ ही उसे विरोधी दलों के नेताओं तथा अन्य सार्वजनिक और निजी संगठनों के अध्यक्षों से भी सम्पर्क बनाये रखना होता है । यह इसलिये भी आवश्यक है क्योंकि इन्हीं सम्पर्कों के माध्यम से वह राज्य की समस्याओं के बारे में उपयोगी जानकारी प्राप्त करता है और प्रशासनिक नीतियों के बारे में लोगों की प्रतिक्रियाएं जान पाता है ।

मुख्य सचिव के वृहत् कार्य क्षेत्र को देखते हुए यह आवश्यक है कि कुछ चुने हुए महत्वपूर्ण मामलों तक ही वह अपने को सीमित रखे और कम महत्वपूर्ण मामलों में ज्यादा हस्तक्षेप न करे । इससे वह राज्य के महत्वपूर्ण विकास कार्यों के लिए ज्यादा समय दे सकेगा । इसके अलावा वह इसलिये भी आवश्यक है कि सभी छोटे–छोटे मामलों में हस्तक्षेप करने से एक और तो अन्य अधिकारियों का मनोबल कम होता है और साथ ही इससे साथियों के नाराज होने की भी संभावना रहती है । एक सफल मुख्य सचिव के लिए यह आवश्यक है कि अपनी कुशाग्रता और दूरदृष्टि के द्वारा अपने साथियों तथा कनिष्ठ अधिकारियों का विश्वास प्राप्त करे; तभी राज्य प्रशासन अधिक सफलतापूर्वक एवं प्रभावी तरीके से कार्य कर सकता है ।

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका की विवेचना कीजिए ।
2. मुख्य सचिव के कार्यों का उल्लेख कीजिए ।

3. एक विभागाध्यक्ष के रूप में मुख्य सचिव की समीक्षा कीजिए ।
4. मुख्य सचिव के द्वारा निर्वहन किये जाने वाले विभिन्न कार्यों का उल्लेख कीजिए ।

8.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जियाउद्दीन खां व अन्य, स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन राजस्थान, जयपुर आशा पब्लिशिंग हाऊस, 1973
2. एस. आर. माहेश्वरी, स्टेट गवर्नमेंट्स इन इण्डिया, नई दिल्ली, मेकमिलन, 1963
3. राजस्थान सरकार, प्रशासनिक सुधार समिति का प्रतिवेदन, जयपुर, 1977
4. भारत सरकार, प्रशासनिक सुधार आयोग, रिपोर्ट ऑन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 1969
5. बी. मेहता, डायनॉमिक्स ऑफ स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद, 1975

इकाई – 09

गृह विभाग

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 गृह विभाग: संगठनात्मक स्वरूप

9.2.1 राजनैतिक स्वरूप

9.2.2 सचिवालय स्तर

9.2.3 क्षेत्रीय स्वरूप

9.3 गृह विभाग भूमिका एवं कार्य

9.3.1 पर्यवेक्षण, नियंत्रण एवं निर्देशन

9.3.2 आपराधिक न्याय प्रशासन

9.3.3 कानून व्यवस्था एवं आंतरिक सुरक्षा तथा शांति की स्थापना

9.3.4 अनुज्ञा पत्र जारी करना

9.3.5 विदेशी नागरिकों एवं विदेशी गतिविधियों पर नियंत्रण

9.3.6 सेवी वर्ग एवं कार्मिक प्रशासन का संचालन

9.3.7 अभियोजन एवं अपराधिक मामलों की देखरेख

9.3.8 मुद्रणालय से संबंधित कार्य

9.3.9 समन्वयात्मक कार्य

9.3.10 विविध कार्य

9.4 गृह विभाग का क्षेत्राधिकार

9.4.1 पुलिस संगठन

9.4.2 नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड

9.4.3 जेल एवं कारागार

9.4.4 परिवहन

9.4.5 अभियोजन शाखा

9.4.6 विधि विज्ञान प्रयोगशाला

9.4.7 मुद्रण, स्टेशनरी एवं सरकारी प्रेस

9.5 गृह विभाग: महत्व, चुनौतियां एवं भावी परिवेश

9.6 सारांश

9.7 महत्वपूर्ण शब्दावली

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.9 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित है

(i) विद्‌यार्थियों को गृह विभाग के संगठनात्मक स्वरूप से परिचित करवाना ।

(ii) गृह विभाग की भूमिका, कार्य एवं महत्व को प्रतिपादित करना ।

(iii) गृह विभाग के क्षेत्राधिकार की समीक्षा करना ।

(iv) गृह विभाग की चुनौतियों एवं भावी परिवेश को रेखांकित करना ।

(v) शासन एवं प्रशासन के समग्र संदर्भों में गृह विभाग के अंतर्गत कार्यरत विभिन्न संगठनों के महत्व एवं कार्यों का निरूपण कर गृह विभाग के शासकीय एवं प्रशासकीय महत्व का विश्लेषण करना ।

9.1 प्रस्तावना

मानव मात्र के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्य कार्यों तथा गतिविधियों के समुचित संचालन में राज्य, सरकार, शासन एवं प्रशासन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । प्रजातांत्रिक संदर्भों में राजकीय व्यवस्थाओं के निर्माण में जनमत एवं जन सहभागिता की भूमिका अहम् मानी जाती है । जनता अपने मत के जरिये जन प्रतिनिधियों को चुनती है जो सरकार का निर्माण करते है । सरकार सब प्रकार की गतिविधियों के संचालन के लिये अनेक प्रकार के विभाग का निर्माण करती हैं । इन विभागों का निर्माण मंत्रालय, सचिवालय, मुख्यालय एवं क्षेत्रीय स्तरों पर किया जाता है । मंत्रालय स्तर पर जो विभाग निर्मित होते है उनके प्रभारी मंत्री होते है जो केबिनेट, राज्य एवं उपमंत्री कहलाते है । मंत्रालय –स्तरों पर निर्मित होने वाले विभागों में वित्त, राजस्व, गृह चिकित्सा, सार्वजनिक निर्माण, उद्‌योग, समाज कल्याण, शिक्षा जैसे अनेक विभागों का निर्माण विविध प्रकार की मानव गतिविधियों की आवश्यकताओं के अनुसरण में किया जाता है । राज्य सरकार की समग्र गतिविधियों के संदर्भ में गृह मंत्रालय / गृह विभाग विशेष महत्व रखता है । शासन एवं प्रशासन के विविध पक्षों को सामान्य प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, राजस्व प्रशासन, नियामक प्रशासन, सामाजिक प्रशासन एवं विकास प्रशासन के माध्यम से संचालित किया जाता है । गृह विभाग बुनियादी तौर पर कानून एवं व्यवस्था, शांति की स्थापना एवं अपराधिक और न्याय व्यवस्था से संबंधित होता है । अत: शासन एवं प्रशासन के सभी पहलुओं से यह प्रभावित होता है तथा शासन एवं प्रशासन की उपर्युक्त रानी स्थितियों को गृह विभाग प्रभावित भी करता हैं । यही वजह है कि शासकीय एवं प्रशासकीय व्यवस्था से जुड़ी किसी भी चर्चा के संबंध में गृह विभाग के प्रसंग को आवश्यक समझा जाता है । अत: जरूरी है कि हम गृह विभाग के विभिन्न स्वरूपों, उसके संगठन, भूमिका, कार्य एवं महत्व पर चर्चा करे ।

9.2 गृह विभाग : संगठनात्मक स्वरूप

गृह विभाग किसी भी सरकार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं बड़ा विभाग माना जाता है । गृह विभाग के अंतर्गत अनेक संगठन कार्यरत रहते है एवं प्रत्येक संगठन के माध्यम से अनेक प्रकार के कार्य एवं दायित्वों का निर्वाह किया जाता है । केन्द्र सरकार में इस विभाग को गृह मंत्रालय एवं राज्य सरकारों के संदर्भों में इसे गृह विभाग के रूप में पहचाना जाता है । गृह विभाग का संगठन

राजनैतिक एवं प्रशासनिक स्वरूप लिये होता है । प्रशासनिक संदर्भों में इसके स्वरूप को सचिवालय, मुख्यालय एवं क्षेत्रीय स्तरों पर समझा जा सकता है ।

9.2.1 राजनैतिक स्वरूप

राजनीतिक स्तर पर गृह के प्रभारी को गृह मंत्री कहा जाता है, जो केबीनेट स्तर के एक अनुभवी एवं वरिष्ठ मंत्री होते है । गृह मंत्री की सहायता के लिये आवश्यकतानुसार राज्य मंत्री एवं उपमंत्री नियुक्त किये जाते है । गृह विभाग के महत्व को देखते हुये प्रायः यह पोर्टफोलियो मुख्यमंत्री स्वयं अपने पास रखते है । गृह मंत्री शासकीय, राजनैतिक एवं प्रशासकीय दृष्टिकोण से इतने महत्वपूर्ण होते है कि प्राय: उन्हें मुख्यमंत्री के बाद मंत्रीमण्डल में दूसरे नंबर की वरीयता हासिल होती है । गृहमंत्री एक तरफ जहां अपने अधीनस्थ मंत्रियों के नियंत्रण, समन्वय एवं पर्यवेक्षण के लिये उत्तरदायी होते है वही सचिवालय स्तर पर स्थापित गृह विभाग के अधिकारियों यथा गृह सचिव एवं गृह विभाग के अधीन कार्यरत अन्य संगठनों के सचिवों के पर्यवेक्षण, नियंत्रण एवं मार्गदर्शन के साथ–S विभागों के मुख्यालयों एवं क्षेत्रीय इकाईयों पर भी पर्यवेक्षण, नियंत्रण के लिये भी उत्तरदायी होते है ।

9.2.2 सचिवालय स्तर

गृह विभाग के शीर्षस्थ राजनैतिक नेतृत्व (गृहमंत्री) के अधीन प्रशासनिक स्तर पर विभाग की विभिन्न गतिविधियों के संचालन के लिये सचिवालय स्तर पर अनेक अधिकारी एवं कर्मचारी कार्यरत रहते है । गृह विभाग के सचिवालय स्तर पर इस प्रशासकीय ढांचे के प्रभारी अधिकारी को गृह सचिव / प्रमुख शासन सचिव गृह / अति. मुख्य सचिव गृह के नाम से जाना जाता है जो एक वरिष्ठ भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी होते है । उनकी सहायता के लिये अतिरिक्त, विशिष्ट, उप, सहायक सचिव नियुक्त किये जाते है जो अलग–अलग शाखाओं के प्रभारी होते है तथा उन्हें अपने कार्यों के संपादन के लिये समुचित मात्रा में कार्यालय कर्मी, लिपिक एवं उपयुक्त कार्यकारी संसाधन उपलब्ध करवाये जाते है ।

चार्ट– 4.1

गृह विभाग : संगठनात्मक स्वरूप

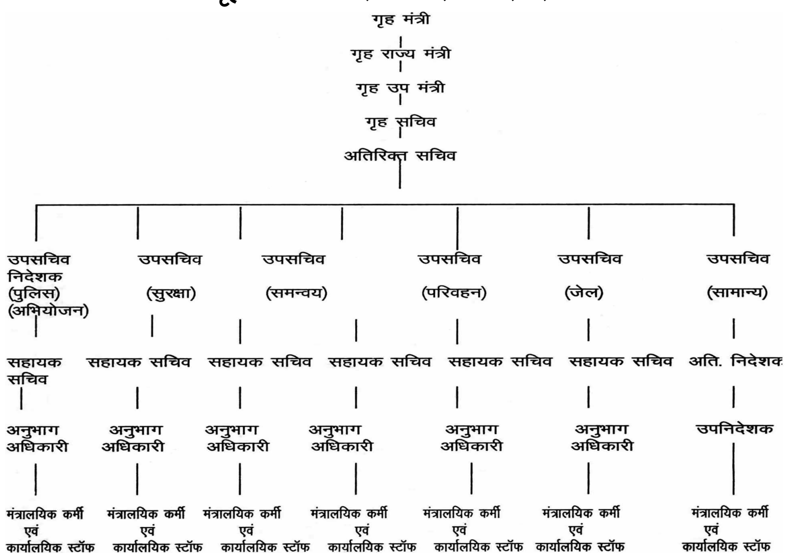

गृह विभाग चूंकि एक महत्वपूर्ण सरकारी विभाग होता है एवं इस विभाग पर कार्यभार एवं उत्तरदायित्व भी अधिक होते है अत: इसका संगठन पर्याप्त रूप से सुदृढ़ होना जरूरी है । गृह विभाग आमतौर पर पुलिस, परिवहन, जेल, नागरिक सुरक्षा, अभियोजन जैसे महत्वपूर्ण संगठनों से संबंधित होने के साथ–साथ अनेक प्रकार की समन्वयात्मक गतिविधियों का भी संचालन करता है । अत: इस विभाग के विभिन्न शाखाओं के संचालन के लिये उपयुक्त अधिकारियों की नियुक्ति के अलावा मत्रांलयिक लेखाकार, विधि सहायक आदि–आदि स्टाफ के रूप में उपलब्ध रहते है । मंत्रालय एवं सचिवालय स्तर पर गृह विभाग के संगठन को निम्नांकित चार्ट के जरिये प्रतिपादित किया जा रहा है ।

9.2.3 क्षेत्रीय स्वरूप

गृह विभाग के अंतर्गत कार्य करने वाले विभिन्न संगठनों की विविध इकाईयां मुख्यालय एवं क्षेत्रीय स्तरों पर स्थापित की जाती है । उदाहरण के लिये पुलिस, परिवहन, जेल, अभियोजन, नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड आदि अनेक संगठन गृह विभाग के अधीन कार्यरत है तथा इन संगठनों के मुख्यालय प्राय: राजधानी मुख्यालय पर स्थापित होते है एवं इन संगठनों की विभिन्न क्षेत्रीय इकाईयां खण्ड, जिला, उपजिला और स्थानीय स्तरों पर स्थापित की जाती है । मंत्रालय एवं सचिवालय स्तर पर जारी आदेशों एवं निर्देशों की अनुपालना मुख्यालयों एवं क्षेत्रीय इकाईयों के माध्यम से की जाती है । गृह विभाग के इन विभिन्न संगठनों के कार्यों, दायित्वों एवं भूमिका का समुचित निर्वाह भी इन मुख्यालयिक एवं क्षेत्रीय इकाईयों के द्वारा किया जाता हैं ।

9.3 गृह विभाग: भूमिका एवं कार्य

किसी भी सरकार का गृह विभाग उसके विविध कार्यकलापों के संपादन में महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं, क्योंकि यह विभाग मूलरूप से आंतरिक सुरक्षा, कानून एवं व्यवस्था की स्थापना तथा अपराध नियंत्रण से संबंध रखता है । यदि आंतरिक सुरक्षा, कानून व्यवस्था एवं अपराध नियंत्रण की स्थितियां संतोषजनक है तो सरकार की छवि जनसामान्य की नजरों में अच्छी मानी जायेगी और यदि ये परिस्थितियां प्रतिकूल रहती है तो एक तरफ जहां सरकार को गंभीर आलोचना का शिकार होना पडता है वही दूसरी ओर सामाजिक विकास एवं आर्थिक प्रगति पर विपरीत प्रभाव पड़ने की वजह से सरकार की छवि भी राज्य, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खराब होती है । अत: स्पष्ट है कि गृह विभाग की भूमिका एवं कार्य सरकार, समाज एवं सामान्य नागरिक के लिए विशेष महत्व के माने जाते है । गृह विभाग की समग्र भूमिका एवं कार्यों को निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है ।

9.3.1 पर्यवेक्षण, नियंत्रण एवं निर्देशन

गृह विभाग के अंतर्गत कार्यरत सभी संगठनों के कार्यकलापों पर पर्यवेक्षण, समुचित नियंत्रण एवं समय–समय पर इन संगठनों में कार्यरत कर्मियों को दिशा बोध एवं निर्देशन करने का कार्य गृह विभाग का होता है । पर्यवेक्षण, नियंत्रण एवं निर्देशन प्रदान करने की अपनी इस भूमिका एवं तदविषयक कार्यों के निर्वाह के लिए गृह विभाग अपने अधीन कार्यरत इन संगठनों को स्थायी आदेशों, सर्कुलरों एवं कार्यालयिक संप्रेषण की विविध विधाओं के माध्यम से निर्देश जारी करता है । अपने निर्देशों की

अनुपालना करवाने एवं विभाग द्वारा निष्पादित कार्यों की गुणवत्ता को परखने तथा वांछित प्रगति से सूचित होने के लिये गृह विभाग अपने अधीन कार्यरत संगठनों से समय–2 पर प्रतिवेदन भी प्राप्त करता रहता है ।

9.3.2 अपराधिक न्याय प्रशासन

गृह विभाग अपराधिक न्याय प्रशासन की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है । अपराधिक न्याय प्रशासन के सभी पक्षों यथा विधि, कानून, पुलिस, न्यायालय, अभियोजन एवं जेल से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से गृह विभाग का संबंध बना रहता हैं । अपराधिक न्याय प्रशासन के विविध तत्वों के बीच समन्वय स्थापित करने का काम गृह विभाग का होता है तथा पुलिस, अभियोजन एवं जेल जैसे अपराधिक न्याय प्रशासन के अहम् अंगों से तो गृह विभाग का सीधा संबंध होता है तथा वह इन अपराधिक न्याय प्रशासन की महत्वपूर्ण इकाईयों पर सीधा पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण रखता है।

9.3.3 कानून व्यवस्था एवं आंतरिक सुरक्षा तथा शांति की स्थापना

समाज में कानून एवं व्यवस्था की स्थिति संतोषजनक बनी रहे तथा आंतरिक सुरक्षा की स्थितियां संतोषप्रद बनी रहकर समाज में शांति तथा अमन और चैन बना रहे इसकी जिम्मेदारी गृह विभाग की होती हैं । अपराधों की रोकथाम, अपराध नियंत्रण, अपराध अन्वेषण तथा विविध प्रकार के आंदोलनों पर नियंत्रण तथा सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद जैसी भयावह एवं विघटनकारी स्थितियों पर नियंत्रण एवं रोकथाम करने का उत्तरदायित्व भी गृह विभाग का माना जाता है । कानून एवं व्यवस्था और अपराधों की रोकथाम से संबंधित आसूचना का संग्रह भी गृह विभाग के निर्देशन में किया जाता हैं। किसी भी समाज में कानून एवं व्यवस्था की स्थिति और अपराध नियंत्रण के उपाय गृह विभाग की सफलता के अहम् मानदण्ड माने जाते है ।

9.3.4 अनुज्ञापत्र जारी करना

गृह विभाग विभिन्न प्रकार के अनुज्ञापत्र जारी करता है । यह विभाग शस्त्रों के लाइसेंस जारी करता है तथा शस्त्रागार, आग्नेयस्त्र गोलाबारूद एवं विस्फोटक पदार्थों से संबंधित विविध व्यवस्थाओं का संचालन एवं नियमन करता हैं । यह विभाग सिनेमा, रंगमंच एवं मनोरंजन से जुडी विभिन्न स्थितियों पर भी नियंत्रण रखता है तथा इनसे संबंधित अनुज्ञापत्रों को जारी करने का कार्य भी इसी विभाग का है । विभिन्न देशों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन, फिल्मों पर सेंसर का कार्य भी गृह विभाग द्वारा संपादित किया जाता है ।

9.3.5 विदेशी नागरिकों एवं विदेशी गतिविधियों पर नियंत्रण

गृह विभाग विदेशी नागरिकों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखता. है तथा उनके आवागमन पर नजर रखता है और विदेशी नागरिकों के पासपोर्ट, वीजा एवं परमिट भी के विविध प्रावधानों का निष्पादन करता है । विदेशी नागरिकों से संबंधित गतिविधियों के समन्वय, संचालन, नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण का समग्र दायित्व गृह विभाग का माना जाता है ।

9.3.6 सेवी वर्ग एवं कार्मिक प्रशासन का संचालन

गृह विभाग अपने अधीन कार्यरत विभिन्न संगठनों के सेवी वर्ग प्रशासन एवं कार्मिक प्रशासन के लिये उत्तरदायी होता हैं । इन संगठनों में कार्यरत ऊनी स्तर के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भर्ती, पदोन्नति, स्थानान्तरण एवं अन्य सेवा शर्तों के संचालन, नियमन एवं क्रियान्वयन की जिम्मेदारी गृह विभाग की होती है । इन कार्यों के संबंध में जो भी समन्वयात्मक गतिविधियों का संचालन किया जाना आवश्यक है, उसका निर्वाह भी गृह विभाग द्वारा किया जाता है ।

9.3.7 अभियोजन एवं अपराधिक मामलों की देखरेख

न्याय व्यवस्था के संचालन एवं स्थापना में अभियोजन शाखा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस भूमिका का निर्वाह गृह विभाग के अंतर्गत कार्यरत अभियोजन निदेशालय द्वारा किया जाता है। विभिन्न स्तरों पर अभियोजकों की नियुक्ति, अभियोजन कार्यों की प्रगति एवं अभियोजन गुणवत्ता पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण का कार्य अभियोजन निदेशालय के माध्यम से गृह विभाग द्वारा संपन्न किया जाता है । निवारक नजरबंदी से संबंधित मामलों तथा अपराधियों के दण्ड में कमी या क्षमादान से संबंधित विविध मामलों की देखरेख भी गृह विभाग द्वारा की जाती है ।

9.3.8 मुद्रणालय से संबंधित कार्य

सरकारी मुद्रणालयों की व्यवस्था, राजपत्र का प्रकाशन, राजकीय प्रकाशनों की छपाई, स्टेशनरी का नियंत्रण, समाचार एजेंसियों के कार्य, राज्य के गैर सरकारी प्रकाशनों का पंजीकरण, सरकारी विज्ञापनों की व्यवस्था, समाचार पत्रों पर नियंत्रण, प्रेस कानून व कॉपीराइट कानूनों का क्रियान्वयन जैसे महत्वपूर्ण कार्यों का संपादन गृह विभाग द्वारा किया जाता है ।

9.3.9 समन्वयात्मक कार्य

गृह विभाग के अंतर्गत अनेक संगठन कार्य करते है तथा सरकार के विभिन्न विभागों एवं संगठनों से संबंधित अनेक कार्यों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष संबंध गृह विभाग से होता है जिसकी वजह से गृह विभाग को अपने मूल कार्यों के साथ–2 विभिन्न विभागों से जुड़े हुये कार्यों को संपन्न करवाने के लिये समन्वयात्मक भूमिका का निर्वाह करना होता है । इसके अलावा केंद्रीय पुलिस संगठनों एवं इंटरपोल से जुडी हुई गतिविधियों के समन्वय का कार्य भी गृह विभाग को संपन्न करना होता है ।

9.3.10 विविध कार्य

गृह विभाग के अंतर्गत अनेक ऐसे कार्य होते है जो विविध प्रकृति के होते है तथा इन्हें संपन्न करने के लिये गृह विभाग के अंतर्गत सामान्य शाखा की स्थापना की गयी है । इन विविध कार्यों के अंतर्गत पागलपन एवं उन्माद पर नियंत्रण, जलयानो एवं वायु यानों की देखरेख तथा उनकी सुरक्षा, मकान किराया नियंत्रण, श्मशान भूमि संबंधी मामले, रेल सेवा प्रारम्भ करने जैसे अनेक ऐसे कार्य है जो विविध कार्यों की श्रेणी के होकर गृह विभाग द्वारा संपन्न किये जाते है ।

9.4 गृह विभाग का क्षेत्राधिकार

राज्य सरकार के सभी विभागों में राह विभाग अपनी भूमिका एवं महत्व की दृष्टि से जहां उच्च वरीयता प्राप्त करता है वही यह एक बड़ा विभाग होने के कारण इसका क्षेत्राधिकार भी सर्वथा व्यापक है । सचिवालय स्तर पर गृह विभाग द्वारा संचालित किये जाने वाले अनेक संगठन होते है जिसकी वजह से प्राय: गृह सचिव को एक से अधिक और कभी कभी तो तीन से पांच तक मंत्रियों के अधीनस्थ कार्य करना होता हैं, क्योंकि पुलिस विभाग को देखने के लिए जहां गृह मंत्री नियुक्त होते है वही प्राय: जेल एवं कारागार, नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड, परिवहन, अभियोजन तथा मुद्रण स्टेशनरी एवं सरकारी प्रेस जैसे विभागों की देखरेख का जिम्मा अलग–2 मंत्रियों को दे दिया जाता है । इस प्रकार गृह विभाग द्वारा विविध प्रकार के अनेक दायित्वों का निर्वाह भी किया जाता है जिनके प्रभारी अधिकारी भी अलग–2 मंत्री हो सकते है । इस प्रकार गृह विभाग मूलरूप से जहां गृह मंत्री का विभाग होता है वही अन्य विभागों के मंत्री भी अपनी पत्रावलियां गृह विभाग को भिजवाते रहते है । पुलिस जैसे महत्वपूर्ण विभाग की देखरेख की जिम्मेदारी जहां गृह विभाग की मूलरूप से होती है वही नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड, जेल एवं कारागार, परिवहन, अभियोजन, विधि विज्ञान प्रयोगशाला, वक्फ, मुद्रण, स्टेशनरी एवं सरकारी प्रेस के साथ–2 केन्द्रीय संगठनों के साथ समन्वय एवं विदेशी मामलों की देखरेख का जिम्मा गृह विभाग का होने के कारण गृह विभाग का क्षेत्राधिकारी पर्याप्त रूप से व्यापक हो जाता है । गृह विभाग के अंतर्गत कार्यरत विभिन्न संगठनों की संरचना एवं प्रकार्यो का संक्षेप में उल्लेख किया जाना गृह विभाग के क्षेत्राधिकार की समग्रता को समझने के लिए समीचीन प्रतीत होता है ।

9.4.1 पुलिस संगठन

गृह विभाग एवं पुलिस संगठन आमजन की समझ में एक दूसरे के पर्याय माने जाते है । सामान्य नागरिक यह समझता है कि गृह विभाग एवं गृह मंत्री मात्र पुलिस संगठन के समुचित एवं सफल संचालन के लिए जिम्मेदार होते है । काफी सीमा तक यह धारणा सही भी प्रतीत होती है, क्योंकि गृह विभाग के कार्यों की संख्यात्मक एवं गुणात्मक परिधि पर्याप्त सीमा तक पुलिस संगठन से संबंधित दायित्वों के निर्वहन से संबंध रखती है । अत: पुलिस संगठन की संरचना एवं दायित्वों को समझना प्रासंगिक प्रतीत होता हैं ।

(क) <u>पुलिस का संगठनात्मक स्वरूप :</u> पुलिस के संगठनात्मक स्वरूप को पुलिस मुख्यालय एवं क्षेत्रीय इकाईयों के संदर्भो में समझा जा सकता है । पुलिस मुख्यालय पुलिस संगठन की शीर्षस्थ नियंत्रक एवं पर्यवेक्षक इकाई होता है । इसके प्रभारी अधिकारी पुलिस महानिदेशक कहलाते है । पुलिस मुख्यालय के विभिन्न कार्यो एवं दायित्वों के निर्वहन के लिए इसको विभिन्न शाखाओं में विभक्त किया जाता है । इन शाखाओं के प्रभारी अधिकारी अति. महानिदेशक पुलिस महानिरीक्षक पुलिस स्तर के अधिकारी होते है जिनकी सहायता के लिए निर्धारित मानदण्डों के अनुसार उप महानिरीक्षक पुलिस, पुलिस अधीक्षक, अति. पुलिस अधीक्षक, उप पुलिस अधीक्षक तथा अधीनस्थ पुलिसकर्मी जो निरीक्षक, उप निरीक्षक, सहायक उप निरीक्षक, मुख्य आरक्षक एवं आरक्षक होते है, को तैनात किया जाता है 1 इसके अलावा पुलिस मुख्यालय की विविध शाखाओं के कार्यों के संचालन के लिए उपयुक्त मात्रा में मंत्रालयिक एवं अन्य स्टाफ नियुक्त किया जाता है । पुलिस मुख्यालय की महत्वपूर्ण शाखाएं निम्नांकित होती है संस्थापन शाखा, मुख्यालय शाखा, कार्मिक शाखा, पुनर्गठन, आधुनिकीकरण, आयोजना, पुलिस

कल्याण और आवास शाखा, कानून–व्यवस्था शाखा, सशस्त्र बल शाखा, सतर्कता शाखा, अपराध शाखा, विशेष शाखा, यातायात पुलिस शाखा, पुलिस प्रशिक्षण शाखा आदि–आदि । पुलिस संगठन में कार्यरत विभिन्न अधिकारियों एवं कर्मचारियों को तीन भागों में विभक्त किया जाता है जिन्हें भारतीय पुलिस सेवा अधिकारी, राज्य पुलिस सेवा अधिकारी तथा अधीनस्थ पुलिस रेंक के अधिकारियों के रूप में जाना जाता हैं । पुलिस के इस कार्यकारी बल के अलावा मंत्रालयिक तकनीकी एवं विशेषज्ञ स्तर के कर्मचारी भी पुलिस विभाग की विभिन्न शाखाओं एवं क्षेत्रीय इकाईयों में तैनात रहते है । पुलिस संगठन के कार्यकारी बल को सिविल पुलिस, सशस्त्र पुलिस, विशेष शाखा, सीआइडी तथा विशेष इकाईयों यथा–जीआरपी, एमओबी, एमटी, बैण्ड, माउन्टेड पुलिस जैसे वर्गों में विभाजित किया जाता है । पुलिस के संगठनात्मक स्वरूप को क्षेत्रीय इकाईयों की दृष्टि से निम्नांकित स्तरों पर समझा जा सकता है ।

पुलिस का संगठनात्मक स्वरूप

↓
पुलिस मुख्यालय
↓
पुलिस जोन
↓
पुलिस रेंज
↓
पुलिस जिले
↓
पुलिस वृत्त
↓
पुलिस थाने
↓
पुलिस चौकी

पुलिस संगठन की विभिन्न इकाईयों में तैनात विभिन्न रेंक के अधिकारियों का पदसोपान निम्नांकित होता है ।

पुलिस अधिकारियों का पदसोपान

महानिदेशक पुलिस
↓
अति. महानिदेशक पुलिस
↓
महानिरीक्षक पुलिस
↓
उप महानिरीक्षक पुलिस
↓
पुलिस अधीक्षक
↓
अति. पुलिस अधीक्षक
↓
उप पुलिस अधीक्षक
↓
पुलिस निरीक्षक
↓
उप निरीक्षक पुलिस
↓
सहा. उप निरीक्षक पुलिस
↓
मुख्य आरक्षक
↓
आरक्षक

(ख) पुलिस के कार्य एवं दायित्व : आपराधिक मामला की जांच–पड़ताल, उनकी रोकथाम तथा जनता को सौहार्दपूर्ण वातावरण उपलब्ध करवाना पुलिस के महत्वपूर्ण कार्य एवं दायित्व है । दुर्घटना स्थल पर तत्काल पहुंचना, रात्रि गश्त करना, अपराधिक स्थल पर पहुंचकर तफतीश करना, उपलब्ध साक्ष्यों

को इकट्ठा करना, उच्च पदाधिकारियों को घटना की जानकारी देना जैसे कार्यों का निर्वाह करने का दायित्व भी पुलिसकर्मियों का होता है । विधि विज्ञान प्रयोगशाला तथा अन्य विशेषज्ञों की राय प्राप्त करना, गवाहों से पूछताछ करना तथा उनके बयान कलमबद्ध करना तथा संदिग्ध व्यक्तियों से पूछताछ करना व अपराधियों को गिरफ्तार कर उन्हें न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के कार्य पुलिस से संबंधित है । एफआईआर दर्ज करना, अन्वेक्षण करना, अपराधों की रोकथाम तथा जनता को शांति व सुरक्षा प्रदान करना, नाकाबंदी करना, वाहनों की जांच करना, बुरे चरित्र वाले व्यक्तियों पर नजर रखना, मुखबिर तैनात कर सूचनाओं का संग्रह करना जैसे कार्यों का निर्वहन करना पुलिस भूमिका के अहम अंग माने जाते हैं । महिला एवं बालकों, कमजोर व दलित वर्गों की हिफाजत करना, सूचनाओं का आदान–प्रदान करना, सूचना इकट्ठा करना, राजनीतिक पार्टियों, मजदूर वर्ग, साम्प्रदायिक, आतंकवादी एवं विघटनकारी गतिविधियों पर नजर रखने के महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह भी पुलिस संगठन द्वारा किया जाता है । कानून व्यवस्था की स्थापना एवं शांति बनाये रखने के अंतर्गत पुलिस विभिन्न प्रकार की हड़तालों, आंदोलनों एवं प्रदर्शनों पर नजर रखकर शांति एवं व्यवस्था को बनाए रखती है । स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया के निर्वहन में पुलिस महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है तथा प्राकृतिक आपदा, संकट और आपातकाल के समय लोगों को सुरक्षा प्रदान करती है । विभिन्न विभागों से तालमेल, तारतम्य एवं समन्वय बनाये रख कर पुलिस कानून व्यवस्था की स्थापना, अपराध प्रबंध, महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा तथा यातायात संचालन के साथ–साथ अनेक प्रकार के नियामक, सेरिमोनियल एवं औपचारिक तथा अनौपचारिक सामाजिक दायित्वों का निर्वाह भी करती है ।

9.4.2 नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड

नागरिक सुरक्षा एवं गृह रक्षा संगठन पुलिस के सहायक संगठन के रूप में कार्य करता है । यह संगठन गृह विभाग का अहम अंग माना जाता हैं । गृह रक्षा एवं होमगार्ड संगठन का निर्माण मूलरूप से नागरिकों की स्वैच्छिक भागीदारी के आधार पर किया जाता है । इस संगठन का मूलस्वीकृत स्टाफ कम होता है तथा नागरिकों को संक्षिप्त प्रशिक्षण दिया जाकर उन्हें होमगार्ड के स्वयं सेवकों के रूप में पंजीकरण किया जाकर इस विभाग का बुनियादी तौर पर गठन किया जाता हैं । जब भी आवश्यकता होती है इन पंजीकरण स्वयं सेवकों को डयुटी पर तैनात किया जाता है जिसकी एवज मे उन्हें निर्धारित मानदेय का भुगतान किया जाता है । नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड संगठन की संरचना एवं कार्य तथा दायित्व निम्नांकित है

(क) <u>नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड संगठन की संरचना :</u> सिविल डिफेंस एवं होमगार्ड संगठन के प्रभारी अधिकारी महानिदेशक पुलिस रैंक के अधिकारी होते है, जिन्हें कंट्रोलर एवं कमांडेंट जनरल सिविल डिफेंस एवं होमगार्ड के पदनाम से जाना जाता है । इनकी सहायता के लिए डिप्टी कमांडेंट, सहायक कमांडेंट एवं अधीनस्थ स्टाफ तैनात रहता है । नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड की संरचना को मुख्यालय एवं क्षेत्रीय इकाईयों के रूप में समझा जा सकता है । क्षेत्रीय इकाईयां जिला स्तर पर निर्मित की जाती है तथा पुलिस अधीक्षक इन इकाईयों के पदेन प्रभारी होते है । होमगार्ड संगठन को मूलरूप से तीन वर्गों में बांटा जाता है जिन्हें अरबन, रूरल एवं बोर्डर होम गार्ड के रूप में पहचाना जाता है । बोर्डर होमगार्ड की स्थायी इकाइयां होती है जिनके प्रभारी कमांडेट रैंक के अधिकारी होते है । अरबन एवं रूरल होमगार्ड की इकाईयों का निर्माण स्वयं सेवकों को पंजीकृत करके किया जाता है तथा ये इकाइयां स्थायी तौर

पर कार्य नहीं करती है बल्कि इन इकाईयों के स्वयं सेवकों को आवश्यकतानुसार ड्यूटी करने के लिए बुलाया जाता है। नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड विभाग के संचालन एवं कार्मिक प्रशासन के लिए नियम एवं अधिनियम बने हुये है तथा इन नियमों एवं अधिनियमों के प्रावधानों के अनुरूप इस संगठन का संचालन किया जाता है। गृह विभाग इस संगठन पर सीधा नियंत्रण रखता है तथा समय–2 पर जारी निर्देशों के अंतर्गत इस संगठन के कार्यों एवं दायित्वों का निर्वाह किया जाता है।

(ख) *नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड के कार्य एवं दायित्व :* इस संगठन के प्रमुख कार्य एवं दायित्व निम्नांकित है:

1. आंतरिक सुरक्षा, नागरिक सुरक्षा एवं शांति व्यवस्था की स्थापना में स्वयं सेवकों के माध्यम से शासन एवं प्रशासन की सहायता करना।
2. पुलिस एवं जिला प्रशासन को शांति व्यवस्था, अपराध प्रबन्ध, नियामक दायित्वों के निर्वाह में सहयोग प्रदान करना।
3. प्राकृतिक आपदाओं तथा आपातकालीन स्थितियों के दौरान ड्यूटी प्रदान करना।
4. संवेदनशील व महत्वपूर्ण स्थलों एवं व्यक्तियों की सुरक्षा के संबंध में निर्धारित दायित्वों का निर्वाह करना।
5. चुनावों के दौरान प्रदत्त दायित्वों का निर्वाह करना।
6. अत्यावश्यक स्थितियों में समाज सेवा, नागरिकों को राहत एवं विभिन्न सरकारी विभागों और संगठनों को निर्देशानुसार सेवा, सहयोग एवं सहायता प्रदान करना।

9.4.3 जेल एवं कारागार

अपराधिक न्याय प्रशासन के संदर्भ में गृह विभाग की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है। जेल एवं कारागार व्यवस्था को अपराधिक प्रशासन की अंतिम व अहम् कड़ी माना जाता है। जेल व्यवस्था को न्याय पालिका के द्वारा पारित दण्ड विधान के क्रियान्वयन के लिए जरूरी माना गया है। अपराधियों को न्यायिक प्रक्रिया से गुजार कर उनके द्वारा किये गये दुष्कृत्य की सजा का प्रावधान सभी न्याय व्यवस्थाओं में किया जाता है। जेल प्रशासन को न्याय व्यवस्था की इस अपरिहार्य एवं बुनियादी जरूरत के रूप में एक संस्थागत आवश्यकता माना जाता है। जेल संगठन की संरचना एवं कार्यों को निम्नांकित संदर्भों में समझा जा सकता हैं :

(क) *जेल संगठन का स्वरूप :* जेल के संगठनात्मक स्वरूपों को मुख्यालय एवं क्षेत्रीय इकाईयों के रूप में समझा जा सकता है। जेल मुख्यालय जयपुर में स्थित है तथा इसके प्रभारी अधिकारी महानिदेशक पुलिस रैंक के वरिष्ठ आईपीएस अधिकारी होते है। इनकी सहायता के लिए महानिरीक्षक (जेल), उप महानिरीक्षक (जेल), विशेषाधिकारी लेखाधिकारी, विधि सलाहकार, अधीक्षक एवं उप अधीक्षक जेल रैंक के अधिकारी पद स्थापित किये जाते हैं। इनके अलावा जेल मुख्यालय के कार्यों एवं दायित्वों के निर्वहन के लिए स्वीकृत संख्या के मंत्रालयिक एवं अन्य स्टाफ को नियुक्त किया जाता है। जेल विभाग की निम्नांकित क्षेत्रीय इकाईयां होती है:

1. केन्द्रीय कारागार
2. जिला जेल (ए)
3. जिला जेल (बी)

4. सब जेल
5. खुली जेल
6. महिला सुधार गृह
7. बाल सुधार गृह

1. केन्द्रीय कारागार

केन्द्रीय कारागार संभागीय मुख्यालय पर स्थित होते है तथा बड़ी संख्या में कैदियों को यहां रखने की व्यवस्था होती है । फलस्वरूप इन जेलों में पद स्थापित स्टाफ की संख्या जिला जेलों से अधिक होती है । केन्द्रीय कारागार गृहों के प्रभारी अधिकारी अधीक्षक जेल, ए श्रेणी को नियुक्त किया जाता है जो अपने स्वीकृत स्टाफ की सहायता से केन्द्रीय कारागारों के प्रशासन, प्रबंध, नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण के लिए उत्तरदायी होते है ।

2. जिला जेल (ए)

बडे जिलों में स्थित जेलों को 'ए' श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है । 'ए' श्रेणी की जेलों के प्रभारी अधिकारी अधीक्षक जेल ग्रेड 'बी' को नियुक्त किया जाता हैं । इनकी सहायता के लिए स्वीकृत संख्या के जेलर, सब जेलर एवं असिटेंट जेलर पर्याप्त सहायक स्टाफ के साथ नियुक्त किये जाते है।

3. जिला जेल (बी)

छोटे जिलों में स्थित जेलों को 'बी' श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है । 'बी' श्रेणी की जेलों के प्रभारी अधिकारी के रूप में उप अधीक्षक जेल को नियुक्त किया जाता हैं । इनकी सहायता के लिए स्वीकृत संख्या के जेलर, सब जेलर एवं असिटेंट जेलर पर्याप्त सहायक स्टाफ के साथ नियुक्त किये जाते है। ये जेल 'ए' श्रेणी की जिला जेलों से छोटी होती है तथा इनमें रखे जाने वाले कैदियों की संख्या भी कम होती है ।

4. सब जेल

जिला मुख्यालयों के अतिरिक्त जहां पर भी जेलें स्थित होती है, उन्हें सब जेल ' उप कारागार कहा जाता हैं, जिनका नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण संबंधित एसडीएम तहसीलदार / मुंसिफ मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाता है । सब जेल के प्रभारी अधिकारी उप या सहायक जेलर होते है जो संबंधित सब जेल की दिनचर्या एवं कार्यवाही के लिए जिम्मेदार होते है । इनकी सहायता के लिए उपयुक्त स्टाफ तैनात किया जाता है ।

5. खुली जेल

जेल व्यवस्था को प्रजातांत्रिक एवं आधुनिक स्वरूप प्रदान करने के लिए उन्हें सुधार गृहों के रूप में रूपांतरित किये जाने की नई व्यवस्था का आविर्भाव किया जा चुका है । इस व्यवस्था के अंतर्गत उन कैदियों को जो अपनी सजा का एक तिहाई भाग सद्व्यवहार के साथ काट चुके है को खुली जेल में स्थानान्तरित किया जाता है । इन जेलों में कैदी एक सामान्य श्रमिक के रूप में कार्य कर अपनी आजीविका अर्जित करते है तथा कोई न कोई ट्रेड सीखकर ऐसी कुशलता हासिल करने का प्रयास कर सकते है जिससे कि वे सजा काटने के बाद समाज में एक सामान्य एवं सम्मानजनक नागरिक के रूप में अपने आप को पुनर्स्थापित कर सके ।

6. महिला सुधार गृह

प्रजातांत्रिक, आधुनिक एवं प्रगतिशील सोच एवं चिंतन के अंतर्गत महिला अपराधियों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाये जाने की व्यवस्था स्थापित करने के कम में महिला कैदियों को महिला सुधार गृहों में रखा जाता है । इन सुधार गृहों की प्रभारी अधिकारी महिला अधिकारी होती है जो प्राय: उप अधीक्षक रेंक की होती

7. बाल सुधार गृह

महिलाओं की तरह बाल अपराधियों के प्रति भी उदार दृष्टिकोण अपनाया जाता है तथा उनको बाल सुधार गृहों में अच्छे वातावरण में रखा जाकर अपने में अच्छे सुधार लाने के अवसर प्रदान किये जाते है, जिससे कि वे बिना किसी कुंठा एवं ग्रंथि के अपने भावी जीवन में अच्छे नागरिक के रूप में जीवन जीने के लिए सक्षम हो सके ।

9.4.4 परिवहन

वाहनों के पंजीकरण, अनुज्ञा पत्र तथा वाहन चालकों को अनुज्ञा पत्र प्रदान करने एवं इन व्यवस्थाओं के नवीनीकरण के लिए गृह विभाग के अंतर्गत परिवहन आयुक्त का पद निर्मित किया जाता है । परिवहन आयुक्त परिवहन संगठन के पदेन सचिव भी होते है जो प्रमुख शासन सचिव गृह के अधीनस्थ कार्य करते हैं । परिवहन शाखा का संगठनात्मक ढांचा एवं कार्य निम्नांकित है:

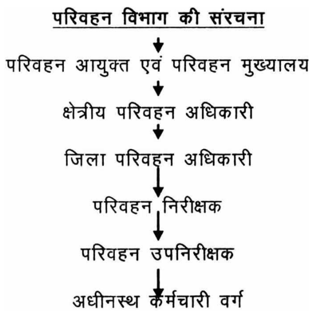

परिवहन विभाग के प्रमुख कार्य एवं दायित्व निम्नांकित है

1. वाहनों का पंजीकरण
2. वाहनों को फिटनेस प्रमाण पत्र देना
3. वाहनों को क्षेत्राधिकार के बाहर संचालन का अनुज्ञा पत्र जारी करना
4. वाहन चालकों को ड्राइविंग लाइसेंस देना व उनका नवीनीकरण करना
5. वाहन चालकों को प्रशिक्षित करना
6. परिवहन से संबंधित नियमों, अध्यादेशों, कानूनों एवं अधीनियमो को क्रियान्वित करना
7. वाहन जनित प्रदूषण पर नियंत्रण करना
8. परिवहन संचालन एवं सुरक्षा को सुनिश्चित करना
9. यातायात एवं सडक सुरक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करना
10. यातायात एवं परिवहन से संबंधित विभागों एवं गतिविधियों के संबंध में समन्वय स्थापित करना

9.4.5 अभियोजन शाखा

अपराधिक न्याय प्रशासन के समुचित संचालन में अभियोजन अधिकारियों की विशेष भूमिका होती हैं, क्योंकि न्यायिक प्रक्रिया के अंतर्गत ये अधिकारी अदालतों के सम्मुख अभियोजन पक्ष को प्रस्तुत करते है । अभियोजन कार्यों की देखरेख एवं समुचित संचालन के लिए गृह विभाग के अंतर्गत एक अभियोजन निदेशालय का गठन किया गया है । इस मुख्यालय के प्रभारी अधिकारी निदेशक अभियोजन के पदनाम से जाने जाते है, जिनकी सहायता के लिए अतिरिक्त निदेशक, उप निदेशक अभियोजन एवं लोक अभियोजक तैनात किये जाते है । अभियोजन निदेशालय के क्षेत्राधिकार को जोन, रीजन एवं जिलों में विभक्त किया जाता है । प्रत्येक जिले में अभियोजन कार्यों की देखरेख के लिए सहायक निदेशक पदस्थापित रहते है, जिनके मार्गदर्शन में अदालतों में पैरवी करने के लिए लोक अभियोजन एवं सहायक लोक अभियोजक नियुक्त किये जाते है । अभियोजन शाखा के प्रमुख कार्य एवं दायित्व निम्नांकित है

1. अदालतों के समक्ष अभियोजन पक्ष को प्रस्तुत करना एवं मामलों की पैरवी करना
2. पुलिस अनुसंधान पत्रावलियों पर विधिक राय प्रदान करना
3. राज्य सरकार, गृह विभाग एवं संबंधित अधिकारियों को विधिक राय प्रदान करना
4. अपील, रिवीजन एवं रिव्यू दायर करना
5. राज्य सरकार, गृह विभाग एवं संबंधित अधिकारियों द्वारा जारी किये जाने वाले आदेशों, सर्कूलरों एवं प्रपत्रों के ड्राफ्ट तैयार करना एवं उनकी समीक्षा करना
6. अभियोजन कर्मचारियों के कार्मिक मसलों की देखरेख करना

9.4.6 विधि विज्ञान प्रयोगशाला

अपराधिक न्याय प्रक्रिया के क्रियान्वयन में विधि विज्ञान प्रयोगशालाओं का विशेष महत्व होता हैं । ये प्रयोगशालाएं पुलिस संगठन द्वारा संग्रहित प्रतिदर्शों की समीक्षा कर राय प्रदान करती है तथा न्यायालय उनकी विशेषज्ञ राय के आधार पर न्यायिक निर्णय पारित करते है । विधि विज्ञान प्रयोगशालाएं कुछ राज्यों में पुलिस विभाग के अधीनस्थ कार्य करती है, परन्तु राजस्थान में विधि विज्ञान प्रयोगशालाएं, गृह विभाग के नियंत्रण एवं देखरेख में कार्य करती है । राज्य स्तरीय विधि विज्ञान प्रयोगशाला के प्रभारी अधिकारी को निदेशक कहा जाता है, जिनके अधीन विभिन्न डिवीजन काम करते है, जिनके प्रभारी अधिकारी अतिरिक्त निदेशक, उप निदेशक या सहायक निदेशक स्तर के अधिकारी होते है । विधि विज्ञान प्रयोगशालाओं में पदस्थापित सभी स्तर के निदेशक विशेषज्ञ वैज्ञानिक होते है और उनकी राय न्यायालयों मे मान्य होती है । विधि विज्ञान प्रयोगशाला के कार्य एवं दायित्व निम्नांकित है

1. पुलिस अनुसंधान अधिकारियों की सहायता करना, जिससे कि वे घटनास्थल पर उपलब्ध प्रतिदर्शो की प्रासंगिकता को समझ सके ।
2. घटना स्थल पर या अन्यथा उपलब्ध साक्ष्य की वैज्ञानिक समीक्षा करना एवं अपनी राय के साथ विधिक तरीके से अदालतों के समक्ष प्रस्तुत करना ।

3. अदालतों में गवाह के रूप में पेश होना ।
4. विविध प्रकार के अपराधिक, दुर्घटना एवं आपदाग्रस्त घटनास्थलों का निरीक्षण करना, साक्ष्य एकत्रित करना एवं समुचित राय प्रदान करना ।

9.4.7 मुद्रण: स्टेशनरी एवं सरकारी प्रेस

राजपत्र का प्रकाशन, सरकारी सामग्री का मुद्रण, राजकीय प्रकाशनों की देखरेख एवं स्टेशनरी के नियंत्रण का कार्य भी गृह विभाग के क्षेत्राधिकार में आता है । सरकारी मुद्रणालय की व्यवस्था, समाचार एजेंसियों के कार्य, राज्य के गैर सरकारी प्रकाशनों का पंजीकरण, सरकारी विज्ञापनों की व्यवस्था, समाचार पत्रों पर नियंत्रण, प्रेस कानून एवं कॉपी राइट कानूनों का क्रियान्वयन जैसे कार्यो का संपादन भी गृह विभाग द्वारा किया जाता है । इन सब कार्यों की देखरेख के लिए गृह विभाग में एक प्रकोष्ठ स्थापित किया हुआ है । सरकारी प्रेस जयपुर में स्थित है तथा यदि अन्यत्र छपवाई करवायी जाती है तो वह जिलाधीश, उप जिलाधीश या अन्य अधिकारियों की देखरेख में संपन्न होती है ।

9.5 गृह विभाग: महत्व, चुनौतियाँ एवं भावी परिवेश

किसी भी राज्य सरकार का गृह विभाग उसकी सफलता, छवि एवं जनसामान्य में उसके प्रभाव के दृष्टिकोण से विशेष महत्व रखता है । सरकार, समाज, राजनीति एवं प्रशासनिक दृष्टि से भी गृह विभाग को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है । सरकार की संरचना में मुख्यमंत्री के बाद गृह विभाग को विशेष महत्व प्राप्त होता हैं । यही कारण है कि गृह विभाग या तो मुख्यमंत्री स्वयं अपने पास रखते है या फिर किसी अपने विश्वस्त साथी को जो कि कुशलता, अनुभव एवं वरिष्ठता की दृष्टि से विशेष पहचान रखता है, को गृह विभाग का दायित्व सौंपते है । समाज एवं जनसामान्य में भी गृह विभाग का विशिष्ट प्रभाव एवं महत्व होता हैं, क्योंकि गृह विभाग पुलिस जैसे बडे एवं जरूरी संगठन का पर्यवेक्षण करने के साथ–2 जेल, होमगार्ड एवं अभियोजन जैसे महत्वपूर्ण संगठनों पर भी नियंत्रण रखता है । अपराध नियंत्रण, निराकरण एवं रोकथाम की स्थितियां यदि अच्छी होती है तो सरकार की छवि भी अच्छी मानी जाती है एवं यदि ये स्थितियां प्रतिकूल एवं खराब बनी रहती है तो राज्य सरकार पर कुशासन एवं असफलता के आरोप लगाये जाकर जनसामान्य में उसकी छवि को धूमिल कर दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप सत्तासीन दल आम चुनावों में हार का मुंह देखकर सत्ता खोते हुए भी देखे गये हे । राजनीतिक दृष्टि से भी गृह विभाग को विशेष महत्व हासिल है । चुने गये प्रतिनिधि राज्य सरकार के गठन में जब प्रतिनिधित्व पाते है तो उनकी एक कामना –रहती है कि उन्हें गृह या वित्त विभाग जैसा महत्वपूर्ण पोर्टफोलियो मिले । प्रशासनिक दृष्टि से गृह विभाग का विशेष महत्व होता है, क्योंकि गृह विभाग के कार्य, दायित्व एवं क्षेत्राधिकार व्यापक होने के साथ–2 समाज के सभी वर्गों से संबंधित होते है तथा समाज शासन एवं प्रशासन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष एवं पहलू हो जो गृह विभाग से अछूता रहता है । गृह विभाग की महत्ता इस प्रकार स्वयं सिद्ध प्रतीत होती है ।

गृह विभाग एक तरफ जहां अपने कार्यों, दायित्वों एवं भूमिका की वजह से विशेष महत्व एवं पहचान प्राप्त करता है वही इस विभाग के समक्ष अनेक प्रकार की चुनौतियां आती रहती है । कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियां निम्नांकित है.

1. गृह विभाग अपराध एवं अपराधिकता जैसी अति संवेदनशील एवं निरंतर परिवर्तनशील स्थितियों से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करता है ।
2. परिवहन, यातायात, संप्रेक्षण एवं आवागमन के साधनों के त्वरित विकास ने अपराधियों के आवागमन एवं उनके स्वरूप को नई स्थितियां प्रदान कर दी है तथा इन स्थितियों का सामना करना एवं इनसे निपटना गृह विभाग के समक्ष सदा ही एक महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करता हे ।
3. जातीय संघर्ष, साम्प्रदायिकता, अंतर्राष्ट्रीय षड्यंत्र एवं विस्फोटक तथा आतंककारी घटनाओं में निरंतर वृद्धि ने गृह विभाग के समक्ष नई–नई चुनौतियों को जन्म दिया है ।
4. कुशल अपराध प्रबंध एवं समक्ष व सामयिक कानून व्यवस्था की स्थापना और आंतरिक सुरक्षा के हालात गृह विभाग के समक्ष निरंतर चुनौतीपूर्ण स्थितियां उत्पन्न करते है ।
5. अपराध एवं अपराधियों को उपलब्ध अत्याधुनिक उपकरण, साधन व संसाधनों के अनुरूप पुलिस संगठनों को सज्जित करना गृह विभाग के लिए सदैव एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है ।
6. अंतर्राज्यीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में अपराध नियंत्रण और शांति स्थापना की स्थितियों ने गृह विभाग के समक्ष विभिन्न प्रकार की समन्वयात्मक चुनौतियों को जन्म दिया है।

गृह विभाग के कार्य, दायित्व एवं भूमिका सदा ही संवेदनशील एवं चुनौतीपूर्ण रहे है । आने वाले समय में गृह विभाग को अपनी वर्तमान चुनौतियों व इनके भावी परिवेश के बारे में सतत जागरूक बने रहकर इन चुनौतियों का सामना करने के लिए तदनुरूप तैयारी करनी होगी तथा अपने अधीनस्थ कार्यरत संगठनों को कुशल, सक्षम एवं योग्य बनाना होगा जिससे कि समाज में शांति एवं व्यवस्था बनी रहे सके तथा नागरिक भयमुक्त जीवन जी कर प्रगति व विकास के मार्ग में प्रशस्त हो सके ।

9.6 सारांश

राज्य सरकार की समग्र –गतिविधियों के संदर्भ में गृह विभाग विशेष महत्व रखता है । गृह विभाग किसी भी सरकार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं बड़ा विभाग माना जाता है । गृह विभाग के अंतर्गत अनेक संगठन कार्यरत रहते है एवं प्रत्येक संगठन के माध्यम से अनेक प्रकार के कार्यों एवं दायित्वों का निर्वाह किया जाता है । केन्द्र सरकार में इस विभाग को गृह मंत्रालय एवं राज्य सरकारों के संदर्भों में इसे गृह विभाग के रूप में पहचाना जाता है । गृह विभाग का संगठन राजनैतिक एवं प्रशासनिक स्वरूप लिये होता है ।

प्रशासनिक संदर्भों में इसके स्वरूप को सचिवालय, मुख्यालय एवं क्षेत्रीय स्तरों पर समझा जा सकता है । किसी भी सरकार का गृह विभाग उसके विविध कार्यकलापों के संपादन में महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं, क्योंकि यह विभाग मूलरूप से आंतरिक सुरक्षा, कानून एवं व्यवस्था की स्थापना तथा अपराध नियंत्रण से संबंध रखता है । यदि आंतरिक सुरक्षा, कानून व्यवस्था एवं अपराध नियंत्रण की स्थितियां संतोषजनक है तो सरकार की छवि जनसामान्य की नजरों में अच्छी मानी जायेगी और यदि ये परिस्थितियां प्रतिकूल रहती है तो एक तरफ जहां सरकार को गंभीर आलोचना का शिकार होना पड़ता है वही दूसरी ओर सामाजिक विकास एवं आर्थिक प्रगति पर विपरीत प्रभाव पड़ने की वजह से सरकार

की छवि भी राज्य, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खराब होती है । गृह विभाग की भूमिका एवं कार्य सरकार, समाज एवं सामान्य नागरिक के लिए विशेष महत्व के माने जाते है । गृह विभाग के कार्य निम्नांकित है पर्यवेक्षण, नियंत्रण एवं निर्देशन, अपराधिक न्याय प्रशासन, कानून व्यवस्था एवं आंतरिक सुरक्षा तथा शांति की स्थापना, अनुज्ञापत्र जारी करना, विदेशी नागरिकों एवं विदेशी गतिविधियों पर नियंत्रण, सेवी वर्ग एवं कार्मिक प्रशासन का संचालन, अभियोजन एवं अपराधिक मामलों की देखरेख, मुद्रणालय से संबंधित कार्य, समन्वयात्मक कार्य एवं विविध कार्य ।

राज्य सरकार के सभी विभागों में गृह विभाग अपनी भूमिका एवं महत्व की दृष्टि से जहां उच्च वरीयता प्राप्त करता है वही इसका क्षेत्राधिकार भी सर्वथा व्यापक है । सचिवालय स्तर पर गृह विभाग द्वारा संचालित किये जाने वाले अनेक संगठन होते है जिसकी वजह से प्राय: गृह सचिव को एक से अधिक और कभी–कभी तो 3–4 मंत्रियों के अधीनस्थ कार्य करना होता हैं । पुलिस जैसे महत्वपूर्ण विभाग की देखरेख की जिम्मेदारी जहां गृह विभाग की मूलरूप से होती है वही नागरिक सुरक्षा एवं होमगार्ड, जेल एवं कारागार, परिवहन, अभियोजन, विधि विज्ञान प्रयोगशाला, वक्फ, मुद्रण, स्टेशनरी एवं सरकारी प्रेस के साथ–2 केन्द्रीय संगठनों के साथ समन्वय एवं विदेशी मामलों की देखरेख का जिम्मा गृह विभाग का होने के कारण गृह विभाग का क्षेत्राधिकारी पर्याप्त रूप से व्यापक हो जाता है ।

किसी भी राज्य सरकार का गृह विभाग उसकी सफलता, छवि एवं जनसामान्य में उसके प्रभाव के दृष्टिकोण से विशेष महत्व रखता है । सरकार, समाज, राजनीति एवं प्रशासनिक दृष्टि से भी गृह विभाग को बहु त महत्वपूर्ण माना जाता है । सरकार की संरचना में मुख्यमंत्री के बाद गृह विभाग को विशेष महत्व प्राप्त होता हैं । यही कारण है कि गृह विभाग या तो मुख्यमंत्री स्वयं अपने पास रखते है या फिर किसी अपने विश्वस्त साथी को जो कि कुशलता, अनुभव एवं वरिष्ठता की दृष्टि से विशेष पहचान रखता है, को गृह विभाग का –दायित्व सौंपते है । समाज एवं जनसामान्य में भी गृह विभाग का विशिष्ट प्रभाव एवं महत्व होता हैं, क्योंकि राह विभाग पुलिस जैसे बडे एवं जरूरी संगठन का पर्यवेक्षण करने के साथ–2 जेल, होमगार्ड एवं अभियोजन जैसे महत्वपूर्ण संगठनों पर भी नियंत्रण रखता है । अपराध नियंत्रण, निराकरण एवं रोकथाम की स्थितियां यदि अच्छी होती है तो सरकार की छवि भी अच्छी मानी जाती है एवं यदि ये स्थितियां प्रतिकूल एवं खराब बनी रहती है तो राज्य सरकार पर कुशासन एवं असफलता के आरोप लगाये जाकर जनसामान्य में उसकी छवि को धूमिल कर दिया जाता है, राजनीतिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से गृह विभाग के कार्य, दायित्व एवं क्षेत्राधिकार व्यापक होने के साथ–2 समाज के सभी वर्गों से संबंधित होते है तथा समाज, शासन एवं प्रशासन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष एवं पहलू हो जो गृह विभाग से अछूता रहता है ।

गृह विभाग के कार्य, दायित्व एवं भूमिका सदा ही संवेदनशील एवं चुनौतीपूर्ण रहे है । आने वाले समय में गृह विभाग को अपनी वर्तमान चुनौतियों व इनके भावी परिवेश के बारे में सतत जागरूक बने रहकर इन चुनौतियों का सामना करने के लिए तदनुरूप तैयारी करनी होगी तथा अपने अधीनस्थ कार्यरत संगठनों को कुशल, सक्षम एवं योग्य बनाना होगा जिससे कि समाज में शांति एवं व्यवस्था बनी रह सके तथा नागरिक भयमुक्त जीवन जी कर प्रगति व विकास के मार्ग में प्रशस्त हो सके ।

9.7 महत्वपूर्ण शब्दावली

(क) **अपराधिक न्याय प्रशासन :** अपराध, अपराधियों एवं न्याय व्यवस्था से संबंधित वह प्रशासन जो विधि, कानून, पुलिस, न्यायालय, अभिभाशक जेल व्यवस्था, दण्ड विधान, नियमों एवं अधिनियमों के क्रियान्वयन एवं संचालन से संबंधित होता है को अपराधिक न्याय प्रशासन कहा जाता है ।

(ख) **पद सोपान :** किसी भी संगठन में तैनात अधिकारियों एवं कर्मचारियों के स्थानापन्न कम एवं पदनाम क्रम व्यवस्था को पद सोपान कहा जाता है ।

(ग) **आग्नेयस्त्र :** वे हथियार जो चिंगारी, अग्नि, धुआं एवं विस्फोटक आवाज पैदा करते है, को आग्नेय अस्त्र कहा जाता हैं । उदाहरण के लिए राइफल, गन, पिस्तौल एवं रिवॉल्वर आदि आग्नेयस्त्र होते है ।

(घ) **इंटरपोल :** अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत वह संगठन जो विभिन्न देशों के बीच अपराध एवं अपराधिकता से जुडे मुद्दों के बीच समन्वय स्थापित कर सहायता प्रदान करता है, को इंटरपोल कहा जाता है ।

(च) **प्रतिदर्श :** घटनास्थल या अन्य स्थान पर उपलब्ध वह वस्तु, पदार्थ या मैटर जो साक्ष्य का रूप ग्रहण कर सकता है, को प्रतिदर्श कहा जाता है । उदाहरण के लिए घटनास्थल पर उपलब्ध खून, गोली, हथियार इत्यादि जिनका संबंध अपराध से हो को प्रतिदर्श / वजह सबूत / एग्जिबिट कहा जाता है ।

9.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गृह विभाग का परिचय देते हुए उसके संगठनात्मक स्वरूप का वर्णन कीजिए ।
2. गृह विभाग के प्रमुख कार्यों की विवेचना करते हुए उसके भूमिका पर समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिए।
3. गृह विभाग के क्षेत्राधिकार में कौन– कौन से संगठन आते है, किन्हीं दो संगठनों की संरचना एवं कार्यों को समझाइये।
4. गृह विभाग के महत्व को रेखांकित करते हुए उसकी वर्तमान चुनौतियों एवं भावी परिवेश की समीक्षा कीजिए ।

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय संविधान
2. दि आर्गेनाइजेशन ऑफ गर्वनमेंट ऑव इण्डिया, सोनिया पब्लिकेशन, मुंबई
3. गृह विभाग, राजस्थान सरकार का वार्षिक प्रतिवेदन
4. एसएस खेरा, ' 'डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन' '
5. रिपोर्ट ऑव एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्म कमीशन ऑन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन
6. ब्लूमवर्ग, ए क्रिमिनल जस्टिस
7. डीएच बेली, पुलिस एण्ड पॉलिटिकल डवलपमेंट इन इण्डिया
8. प्रभुदत्त शर्मा, इण्डियन पुलिस डवलपमेंटल अप्रोच

9. डोनाल्ड क्लेमर, दि प्रिजन कम्यूनिटी
10. एन्यूअल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑन प्रिजन्स स्टेट गर्वमेंट ऑव राजस्थान
11. जेल मैनुअल, राजस्थान सरकार
12. पी. डी शर्मा, बी. एम. शर्मा, भारतीय प्रशासन
13. डॉक्टर चन्द्रमोलि सिंह, डॉक्टर अशोक शर्मा, डॉक्टर सुरेश गोयल, (अध्यक्ष, पी. सी. माथुर) राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर बी एस ए पब्लिशर्स
14. जियाउद्दीन खान, बी एन सिन्हा एवं के डी त्रिवेदी, स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन राजस्थान
15. प्रशासनिक सुधार समिति, (प्रतिवेदन), राजस्थान सरकार

इकाई – 10

जिलाधीश

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 डी. आर. डी. ए. की भूमिका
10.3 जिला मुख्यालय की प्रत्यक्ष भूमिका
10.4 समन्वयक भूमिका
10.5 डी. एल. ओ तथा अन्य पर जिलाधीश का नियन्त्रण
10.6 सारांश
10.7 अभ्यास प्रश्न
10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप जान पायेंगे –

- जिला प्रशासन में जिलाधीश की भूमिका
- विकास में जिलाधीश की भूमिका
- डी. आर. डी. ए. में जिलाधीश की भूमिका

10.1 प्रस्तावना

परम्परागत रूप में जिलाधीश जिला प्रशासन के सर्वोच्च अधिकारी माने जाते रहे हैं । जनता का यह विश्वास आज भी इसी प्रकार है, जिसका प्रमाण जिलाधीश से मिलने के लिये इच्छुक लोगों की संख्या है, जो नित्य जिला मुख्यालय पर एकत्रित होते हैं । किन्तु विकास क्षेत्र में यह स्थिति एकदम विपरीत है । जिलाधीश जिला विकास अधिकारी भी है, किन्तु इन कुछ वर्षों में उनकी यह भूमिका प्रतीकात्मक हो गई है । जिलाधीश जिला विकास अधिकारी के औपचारिक दायित्व के अंतर्गत कोई भी निर्णय लेने को बाध्य नहीं है । यहाँ तक कि उप जिला विकास अधिकारी, जिला परिषद के सचिव के रूप में ही पंचायत कार्यप्रणाली के विरूद्ध सुनवाई आदि की देखरेख करते हैं, जबकि जिला परिषद स्वयं एक सलाहकार निकाय है ।

जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी के पदेन अध्यक्ष के रूप में जिलाधीश की विकास भूमिका बढ़ जाती है । अकाल राहत कार्यक्रम भी उन्हीं के निर्देशन में होते हैं । गरीबी निर्मूल एवं बीस सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम द्वारा राज्य सरकार ने पूरे राज्यतंत्र को संभागीय आयुक्त के निर्देशन में कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व दिया है । जबकि पूर्व में जब भी राज्य सरकार को किसी लक्ष्य प्राप्ति की चिंता होती तो औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से कलक्टर उपखण्ड अधिकारी, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, गिरदावर, पटवारी की सम्मिलित राजस्व प्रशासन को यह दायित्व सौंपा जाता था।

जिलाधीश के अन्य दायित्वों में जिला औद्योगिक केन्द्र के अध्यक्ष, सहकारिता रजिस्ट्रार, जिलास्तरीय बैंक प्रबंधन समिति के अध्यक्ष आदि भी हैं । जिला चेतना एवं जन परिवेदना समिति के अध्यक्ष के रूप में जिलाधीश विकास कार्य से जुड़े जिला स्तरीय अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतों की सुनवाई का अधिकार रखते हैं । एक समय वे उनकी गोपनीय रिपोर्ट लिखते थे किन्तु अब वे APAR में टिप्पणी अवश्य करते हैं ।

सामान्यत: जब हम जिलाधीश के विकासीय भूमिका की बात करते हैं तो मुख्यत: ग्रामीण विकास का विचार आता है जिलाधीश के नेतृत्व में राजस्व प्रशासन तथा योजना प्रयास ग्रामीण आधारित रहे हैं किन्तु शहरी सुधार ट्रस्ट जैसी संस्थाओं से जुड़ने से शहरी विकास में जिलाधीश की भूमिका अहम् हो गई है । वे ग्रामीण एवं शहरी विकास के सर्वेसर्वा हैं ।

इसके अतिरिक्त जिलाधीश के अन्य दायित्वों में जिला केन्द्रीय सहकारिता बैंक (CCB) प्राथमिक भू–विकास बैंक (PLDB) जिला दुग्ध उत्पादक सहकारिता संघ तथा जिला परिषद के प्रशासक भी सम्मिलित है । वे आदेश क्षेत्र प्राधिकरण के सदस्य भी हो सकते हैं । वे कृषि उपज मंडी की कार्यप्रणाली को भी प्रभावित कर सकते हैं । जिलाधीश का विकास कार्य में प्रभाव उसी प्रकार है, जैसे राज्य सचिवालय में उनका DLO की तुलना में प्रभाव । राजस्व खण्ड अधिकारी के पद की समाप्ति के पश्चात् प्रत्येक राज्य सरकार विभाग जिलाधीश से संबंध रखता है । राज्य सरकार विशेष योजनाओं के क्रियान्वयन के लिये भी पूर्णत: जिलाधीश पर निर्भर है, साथ ही चुनाव तथा प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में वे DLO को आदेशित कर सकते हैं । सामान्य स्थिति में भी DLO जिलाधीश के सलाह, सुझाव तथा औपचारिक निर्देशों की पालना को बाध्य है ।

10.2 डी.आर.डी.ए. की भूमिका :

विकास में जिलाधीश भूमिका का विस्तृत परिप्रेक्ष्य ज्ञात करने हेतु डी. आर. डी. ए. की भूमिका जानना आवश्यक है ।

डी.आर.डी.ए. एक सोसाइटी है जिसका अध्यक्ष जिलाधीश होता है । उसके सहायक अतिरिक्त जिला कलक्टर विकास एवं योजना निर्देशक जो कि भारतीय प्रशासनिक सेवा (सीनियर स्केल) अथवा राज्य प्रशासनिक सेवा (सलेक्शन स्केल) अथवा विशेष चयन नियमों के अंतर्गत चयनित परियोजना निदेशक होते हैं । प्रत्येक डी.आर.डी.ए. के पास कतिपय अधिकारी एवं न्यूनतम अधीनस्थ तथा सांख्यिकी कर्मचारी होते हैं क्योंकि डी.आर.डी ए. की योजनाऐं पंचायत समिति अथवा डी.एल.ओ. के माध्यम से क्रियान्वित करवाई जाती है । इसके लिये डी. आर.डी.ए. द्वारा मासिक पुनरीक्षण सभायें, दौरे, मासिक ब्लॉक परियोजना अभिकरण की सभाएँ, जाँच, पत्रावलियों, कैम्प इत्यादि का आयोजन किया जाता है । डी.आर.डी.ए. योजना निर्माण, डी.एल.ओ. से प्रस्ताव आमंत्रित कर उनके संयोजन में भी भूमिका निभाता है ।

डी.आर.डी.ए. स्वत: तीन प्रकार के कार्य संपादित करता है – 1 क्षेत्र आधारित 2. व्यक्तिगत लाभ आधारित योजनायें 3. दोनों का सम्मिश्रण । क्षेत्र आधारित योजनायें केन्द्र सरकार की योजनाओं के अंतर्गत है । मरुस्थल विकास कार्यक्रम (डी.डी.पी.) अकालग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) सभी डी.आर.डी.ए. द्वारा क्रियान्वित किये जाते हैं । ये सभी कार्यक्रम जिला मुख्यालय द्वारा क्रियान्वित किये जाते हैं, इसलिये राज्य सरकार ग्रामीण विकास केन्द्र

योजनाओं के अंतर्गत भी आते हैं । व्यक्तिगत लाभ योजना (IRD) के अंतर्गत ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार योजना प्रशिक्षण (TRYSEM) तथा जनजातियों के लिये UNICEF द्वारा प्रायोजित महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम, बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास, गोबर गैस प्लांट तथा फबारा खेती योजना आदि के लिये अनुदान दिया जाता है।

तीसरे प्रकार के अंतर्गत समग्र ग्राम विकास कार्यक्रम, संयत क्षेत्र विकास प्रस्ताव (एम.एडी.ए) जैसे कार्यक्रम शामिल हैं। डीआरडीए. के समस्त कार्य विभिन्न सरकारी विभागों में बैठे होने के कारण जिलाधीश की भूमिका मात्र संयोजक की रह जाती है ।

दूसरी ओर जिलाधीश की भूमिका अपने जिले के विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में तब बढ़ती है जबकि पेयजल समिति बैंक तथा डी.आर.डी.ए. में जिलाधीश के मध्य सामंजस्य अधिक होता है ।

डी.आर.डी.ए. का प्रबंधन मूलत: जिलाधीश के हाथों में रहता है । अतिरिक्त जिलाधीश (विकास) प्रतिदिन पर्यवेक्षण कार्य से जुड़े रहते हैं क्योंकि जिलाधीश की निर्णय संबंधित पत्रावली ही अंतिम निलय का मूल आधार होते हैं । डी.आर.डी.ए. के पंजीकृत सोसाइटी होने के बावजूद, सरकारी आदेशों की जिलाधीश के माध्यम से ही अनुपालना होना निश्चित है । डी.आर.डी.ए. अपना कोष विभिन्न बैंकों तथा जननिवेश खातों को राजस्व में रख सकता है । इस प्रकार जिलाधीश द्वारा बैंकों पर नियंत्रण भी संभव होता है ।

10.3 जिला मुख्यालय की प्रत्यक्ष भूमिका

प्रत्यक्ष जिला मुख्यालय से प्रसारित जिलाधीश कार्यक्रम इस प्रकार है – इनमें कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनका निष्पादन प्रत्यक्षतः से जिलाधीश कार्यालय द्वारा किया जाता है । कुछ ऐसे कार्य होते हैं जिनका संयोजन जिला मुख्यालय द्वारा किया जाता है । अधिकांशत: विकास कार्य जिलाधीश कार्यालय द्वारा प्रत्यक्षतः निष्पादित होते हैं, जो कि विकास एवं अकाल राहत से संबंधित होते हैं । विकास तथा पंचायत खण्ड पंचायती राज व्यवस्था के प्रशासनिक एवं लेखा समस्याओं से संबंधित रहता है । ध्यान देने योग्य विषय है कि पंचायत समिति ब्लॉक विकास अधिकारी (बी.डी.ओ.) चुने गये प्रधान के अधीन होने के साथ–साथ जिलाधीश के प्रशासनिक नियंत्रण में भी होते हैं । कतिपय सामुदायिक विकास कार्य जैसे कुँआ (कूप) निर्माण, ग्राम पंचायतों में टेलीविजन सैट उपलब्ध कराना इत्यादि हेतु कोष, जिलाधीश मुख्यालय के पास ही रहता है ।

जिलाधीश मुख्यालय का राहत कार्य नियमित गतिविधियों के साथ ही, बाढ़ एवं अकालग्रस्त क्षेत्रों में रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों को लागू करने का संयोजन भी करता है । ये कार्य मुख्यत: डी.एल.ओ. द्वारा निष्पादित होता है । वास्तव मे जिलाधीश मुख्यालय द्वारा परीक्षण आदि कार्य किया जाता है समितियों का गठन कर प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। तथा राहत कार्यों हेतु प्रस्ताव आमंत्रित किये जाते हैं, जिसमें स्थानीय विधायकों का प्रतिवेदन भी सम्मिलित होता है । जिलाधीश की टिप्पणी के पश्चात् ही प्रस्ताव राज्य सरकार को प्रेषित किये जाते हैं । राज्य सरकार इसी आधार पर अनुदान राशि, राज्य स्तरीय कार्यकारी विभागों को प्रदान करती है जो कि जिलाधीश कार्यालय की जानकारी में होती है । डी.एल.ओ. द्वारा क्रियान्वित कार्यों का जिलाधीश द्वारा निरीक्षण भी करवाया जा सकता है । इस प्रकार जिलाधीश का प्रशासनिक नियंत्रण प्रत्येक स्तर पर रहता है । राहत कार्य विभाग जो पूर्व में काम

के बदले अनाज योजना का कार्य देखता था, अब एन.आर.ई.पी. का भी कार्य देखता है । कई जिलों में डी.आर.डी.ए. इन कार्यों का पर्यवेक्षण ही करता है।

एन.आर.ई.पी. मुख्यतः ग्राम पंचायतों के माध्यम कृषि श्रम से जुड़े कार्य करता है । जिला मुख्यालय ग्राम पंचायतों से प्रस्ताव प्राप्त कर विभिन्न परियोजनायें तैयार करती है जो कि भारत सरकार द्वारा निश्चित प्राथमिकताओं के आधार पर होती है । ऐसी परियोजनायें जिला राहत समिति द्वारा अनुमोदित होती है तत्पश्चात खाद्य एवं अनुदान सहायता समय—समय पर प्रत्येक जिले को प्रदान की जाती है । जिलाधीश कार्य वितरण तथा उनके क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी होता है । इस संदर्भ में जिलाधीश की भूमिका काफी अहम् होती है किन्तु वस्तुत ग्राम पंचायत एवं पंचायत समिति ही प्रस्तावों की प्रस्तुति एवं क्रियान्वयन में प्रमुख भूमिका निभाती है ।

विकास हेतु आवश्यक नियामक कार्य भी जिलाधीश द्वारा किये जाते हैं । जिलाधीश जनगणना तथा पंचवर्षीय कृषि एवं पशुधन गणना आदि कार्यों का भी पर्यवेक्षण करता है । जिला सांख्यिकी एवं मूल्यांकन अधिकारी भी जिलाधीश के अधीन कार्यरत होता है ।

10.4 समन्वयक भूमिका

जिला योजना समिति की सड़क निर्माण, जलापूर्ति, शिक्षा तथा ग्रामीण विद्युतीकरण इत्यादि के देखरेख में भूमिका औपचारिक मात्र रह गई है । इन कार्यों हेतु अंतिम स्वीकृति राज्य स्तरीय विभागों के विवेक पर निर्भर रहती है ।

इसी प्रकार जिला कृषि एवं संबंधित गतिविधि समिति का कार्य भी मात्र औपचारिकता रह गया है । अन्य जिला स्तरीय समितियाँ जैसे जिला समाज सेवा समिति, जिला सामान्य एवं आवश्यकता समिति इत्यादि विकास प्रशासन में अधिक नियंत्रण प्रशासन में लिप्त रहते हैं । इन दिनों अपवाद 'बीस संकल्प कार्यक्रम' है जिसमें राज्यस्तरीय विभाग एवं जिलाधीश दोनों स्थानीय समस्याओं के समाधान में समन्वयक की भूमिका निभाते हैं ।

इसके सदस्य सभी डी.एल.ओ., एस.डी.ओ., बी.डी.ओ., विधायक तथा नव निर्वाचित प्रधान होते हैं । एक मंत्री इस समिति का अध्यक्ष होता है तथा जिलाधीश अध्यक्ष होता है । यद्यपि यह देखा जाता है कि मंत्री कदाचित ही इन समितियों की बैठक में उपस्थित होते हैं अतः समन्वयक की भूमिका मुख्यतः जिलाधीश को ही निभानी पड़ती है । बीस संकल्प कार्यक्रमों में डी.आर.डी.ए. तथा जिलाधीश कार्यालय के विकास विभाग द्वारा किये गये कार्य सम्मिलित हैं । इनमें जिलाधीश किसी न किसी प्रकार से जुड़े रहते हैं । कुछ क्षेत्रों में जैसे शिक्षा एवं ग्रामीण आवास क्षेत्र में जिलाधीश न्यूनतम मूल्य की वस्तुएँ स्वीकृत करने हेतु अधिकृत है । जिलाधीश को डी.एस.डबल्यू.ओ. (जिला समाज कल्याण परिवीक्षण अधिकारी) पर भी प्रशासनिक नियंत्रण प्राप्त होता है । बीस संकल्प कार्यक्रम के औद्योगिक विभाग को सुचारू ढंग से संचालित करने हेतु जिलाधीश ज़िला औद्योगिक केन्द्र का भी प्रमुख होता है । बीस संकल्प कार्यक्रम की पुनरीक्षण बैठक माह में दो बार आयोजित होती है ताकि जिलाधीश कार्यक्रम का सहीं ढंग से समन्वयन कर सके तथा आवश्यकता पड़ने पर राज्य सरकार स्तर पर मामले प्रेषित कर सके ।

जिला स्तरीय बैंकर्स समन्वयक समिति की अध्यक्षता भी जिलाधीश द्वारा की जाती है । इसकी अध्यक्षता में नियमित बैठकें आयोजित होती हैं जिससे विभिन्न बैंक शाखाओं, सरकारी तथा अर्द्धसरकारी निवेश प्राप्त करने में सहायता होती है । इस प्रकार ऋण प्रक्रिया त्वरित गति से निस्तारित होती है

तथा स्थानीय समस्याओं का समाधान हो पाता है । इसी प्रकार जिलाधीश को अन्य कई विशेष समन्वयक बैठकें आयोजित करनी होती है जिससे विशेष विकास समस्याओं का समाधान हो सके । इसके लिये विभिन्न सरकारी विभागों में पत्राचार की भी आवश्यकता पड़ती है । जिलाधीश उद्‌घाटन कार्यक्रमों के सर्वाधिक प्रिय मुख्य अतिथि होते हैं क्योंकि उनकी उपस्थिति स्थानीय स्तरीय समन्वयन समस्याओं के समाधान में सहायक होता है ।

10.5 डी.एल.ओ. तथा अन्य पर जिलाधीश का नियंत्रण

जैसा कि पूर्व में कहा गया है जिलाधीश को डी.एल.ओ. पर पूर्ण नियंत्रण का अधिकार है । इसी प्रकार बी.डी.ओ., ए.पी.ए.आर., पंचायत समिति उप जिला विकास अधिकारी आदि जिलाधीश की देखरेख में निरीक्षण' कार्य करते हैं । जनचेतना तथा जन परिवेदना समिति भी कुछ नियंत्रण रखते हैं किन्तु वह नियंत्रण नकारात्मक स्वरूप का होता है । इस प्रकार विकास एवं अन्य क्षेत्रों में जिलाधीश का कार्य समन्वयक के रूप में निर्विवादास्पद है । जिलाधीश का वास्तविक प्रभाव उसकी व्यक्तिगत कुशलता एवं प्रशासनिक तरीके पर निर्भर होता है ।

10.6 सारांश

गुजरात एवं महाराष्ट्र में जिलाधीश विकास कार्यों से विलग है तथा उसके समान रैंक एवं स्तर के अधिकारी जिला परिषद का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है तथा जिसकी राजस्थान की तुलना में, विकास के क्षेत्र में अधिक सक्रिय भूमिका है । इन राज्यों में भी डी.आर.डी.ए. को पूर्णत: जिलाधीश के नियंत्रण में रखा गया है । अत: मुख्य भेद पंचायत निकायों की भूमिका का है न कि जिलाधीश की भूमिका का । जहाँ इन राज्यों में पंचायतें अधिक सक्रिय हैं । जिला परिषद के कार्यकारी के रूप में कलक्टर के समकक्ष वरिष्ठ अधिकारी की आवश्यकता है वहीं दूसरी ओर राजस्थान में चूंकि जिला परिषद के कार्य सीमित हैं अत: डी.आर.डी.ओ. जिलाधीश एवं अतिरिक्त जिलाधीश (विकास) के अधीन है । अतिरिक्त जिलाधीश (विकास) का राजस्थान में वरिष्ठ वेतनमान आई.ए.एस. अधिकारी का होना इस बात की पुष्टि करता है कि यह डी.एल.ओ. बैंकर्स, कुछ सीमा तक राजनीतिज्ञ तथा राज्य सरकार पर समन्वयक शक्ति है । तथापि अतिरिक्त जिलाधीश (विकास) के पास भूमि दस्तावेज अथवा कार्यकारी मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ न होने से जिलाधीश की तुलना में विकास कार्यों के समन्वयन में निशक्त रहते हैं ।

10.7 अभ्यास प्रश्न

1. जिलाधीश की भूमिका का मूल्यांकन कीजिये ।
2. विकास अभिकरण के रूप में जिलाधीश कार्यालय का मूल्यांकन कीजिये ।
3. डी. आर. डी. ए. के संदर्भ में जिलाधीश स्थिति की व्याख्या कीजिये ।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, चन्द्रमौलि, शर्मा अशोक एवं गोयल सुरेश : राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1990
2. महेश्वरी, एस. आर. स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1979

3. राजपूत, सरला. रोल ऑफ चीफ मिनिस्टर इन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1994
4. गहलोत, सुखवीर सिंह. राजस्थान में राज्य प्रशासन, राविरा नवम्बर, 1999
5. कटारिया, सुरेन्द्र. भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2009

इकाई – 11

उपजिला प्रशासन की भूमिका एवं कार्य : उपखंड अधिकारी, तहसीलदार एवं पटवारी के सन्दर्भ में

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 उपखण्ड अधिकारी की भूमिका एवं कार्य
11.3 तहसीलदार की भूमिका एवं कार्य
11.4 पटवारी की भूमिका एवं कार्य
11.5 राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग 2000
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.9 सन्दर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- उपखण्ड स्तरीय प्रशासन का महत्व जान सकेंगे ।
- उपखण्ड अधिकारी की भूमिका तथा कार्यों का विवेचन कर सकेंगे
- तहसील की भूमिका तथा कार्यों की विवेचना कर सकेंगे
- राजस्व प्रशासन में पटवारी की भूमिका एवं कार्यों की पहचान करने योग्य हो सकेंगे

11.1 प्रस्तावना

भारत में जिला–राज्य प्रशासन की मूल इकाई है । एवं उपखण्ड जिले की ही महत्वपूर्ण प्रशासकीय इकाई है । इसे उपजिला भी कहा जाता है । उपखण्ड प्रशासन में उपखण्ड अधिकारी सर्वेसर्वा होता है । इसकी सहायता एवं सुविधा हेतु उपखण्ड को तहसील, परगना एवं ग्राम में विभक्त किया जाता है ।

भारतीय प्रशासन का आधार राजस्व प्रशासन है और राजस्व प्रशासन में नींव का पत्थर है पटवारी । डबल्यू.एच. मोरलैंड के अनुसार पटवारी 13वीं सदी से भी पुरानी संस्था है । यहां के ग्रामीण जीवन का एक विशेष गुण यह है कि वह कार्यों का विशेषीकरण करता है । यहाँ लेखा रखने का काम पटवारी को दिया गया था । बादशाह अकबर ने टोडरमल की देखरेख मे ' 'बन्दोबस्त' ' करवाये, किन्तु पटवारी का पद यथावत रहा । ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ तक यह पद सरकार से स्वतंत्र था । सन् 1873 के राजस्व कानून के अधीन इस पद को सरकारी माना गया ।

तहसीलदार राजस्थान तहसील सेवा का अधिकार होता है । इस पद पर नायब–तहसीलदार पदोन्नत होकर आते है । नायब–तहसीलदार पर नियुक्तियाँ 66 प्रतिशत प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से प्रत्यक्ष भर्ती से होती है । शेष 34 प्रतिशत पदों पर राजस्व निरीक्षकों से पदोन्नत होते है । तहसीलदार तथा नायब तहसीलदारों की नियुक्ति राजस्व मण्डल द्वारा की जाती है । इन पदों को अधीनस्थ सेवाओं में रखा गया है । इस पद पर प्रशिक्षण के लिए आर. आर. टी. आई., अजमेर में भेजा जाता है ।

उपखण्ड अधिकारी के पद पर प्राय: राज्य प्रशासकीय सेवा के व्यक्ति को कुछ अनुभव के बाद लगाया जाता है । भारतीय प्रशासकीय सेवा के व्यक्ति को भी सेवा के प्रारम्भ में नियुक्त कर दिया जाता है । इन सेवाओं में भर्ती लोक सेवा आयोग द्वारा प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से की जाती है । जैसे आर. ए. एस. की भर्ती राजस्थान लोक सेवा आयोग तथा आईएएस. के लिए भर्ती संघीय लोक सेवा आयोग करता है । एसडीओ. के कुछ पद तहसीलदार (आर.टी.एस.) के पदों से पदोन्नति के माध्यम से भी भरे जाते हैं । एस.डी.ओ. के पद के लिए अलग से कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं होता । प्रशिक्षण की सेवा वर्ग के अनुसार अलग–अलग व्यवस्था की गई है जैसे भारतीय प्रशासकीय सेवा या राजस्थान तहसील सेवा ।

भर्ती एवं प्रशिक्षण की दृष्टि से एस.डी.ओ. एक सामान्यज्ञ (जनरैलिस्ट) पद है । इस पद पर कार्य करने वाले अधिकारी को उसकी सेवा श्रेणी (रैंक) के अनुसार सुविधाएँ प्रदान की जाती है ।

11.1 उपखण्ड अधिकारी की भूमिका एवं कार्य

उपखण्ड अधिकारी के अनेक कर्त्तव्य एवं दायित्व है । उसके दायित्व परिभाषित एवं अपरिभाषित दोनों प्रकृति के है । यह अपने दायित्वों का निर्वाह राजस्व अधिकारी के रूप में, दण्डाधिकारी के रूप में और कार्यकारी अधिकारी के रूप में करता है । जिला प्रशासन के तीन स्तरों के अधिकारी वर्ग में मध्य स्तर पर उपखण्ड अधिकारी आता है । ' 'अपने कार्य के आधार पर उपखण्ड अधिकारी मात्र एक विभागीय अधिकारी ही नहीं है, अपितु वह अपने उपखण्ड में एक विधिनायक के रूप में होता है । " उपखण्ड अधिकारी व्यावहारिक प्रशासन की आधारशिला है । उपखण्ड अधिकारी राजस्व इकाई का प्रशासनिक अधिकारी हैं । उपखण्ड अधिकारी के राजस्व संबंधी दायित्व इतने विस्तृत है कि आम जनता द्वारा सब कुछ उसी को मान लिया जाता है । वह ग्रामीण जनता के आर्थिक, सामाजिक और कृषि सम्बन्धी जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करता है । उपखण्ड अधिकारी के अनेक रूप है जिनकी चर्चा यहाँ विस्तार से की जा रही है:–

(क) भू–राजस्व अधिकारी के रूप में–

भू–राजस्व अधिनियम के अनुसार उपखण्ड अधिकारी अपने उपखण्ड के लिए एक राजस्व अधिकारी होता है । भू–राजस्व से संबंधित उसके कार्य न्यायिक, अर्द्धन्यायिक और प्रशासनिक प्रवृत्ति के है । उपखण्ड अधिकारी स्वयं भू–राजस्व एकत्रित नहीं करता लेकिन भू–अभिलेख को नवीनतम बनाए रखने, राजस्व कर्मचारियों पर नियंत्रण और पर्यवेक्षण करने तथा कृषि सांख्यिकी से संबंधित उसके कार्य तहसीलदार के समान है ।

उपखण्ड अधिकारी अपने उपखण्ड में अभिलेख व नमो की शुद्धि के लिए उत्तरदायी हैं । समस्त विवादास्पद नामान्तरण के मामले, जो उसके ध्यान में आएँ, निरस्त कर सकता है । उसे भू–अभिलेख में आवश्यक परिवर्तन करने के आदेश देने का अधिकार है । राजस्व कर्मचारियों पर देख–रेख के

अतिरिक्त उसका दायित्व यह सुनिश्चित करने का है कि पारित आदेश स्पष्ट एवं संक्षिप्त है और उनकी पालना कर ली गई है । उपखण्ड अधिकारी के भू–राजस्व अधिकारी के रूप में निम्नलिखित कर्तव्य है–

(1) पटवारी व भू–राजस्व निरीक्षक पर नियंत्रण रखना और उन्हें अनुशासित रखना,

(2) ग्रामवार नक्शे व अभिलेखों का निरीक्षण करना,

(3) तहसील ऑफिस कानूनगो के कार्यालय का निरीक्षण करना,

(4) सीमा तथा सर्वे चिन्हों का संरक्षण करना, और

(5) भू–संपदाधिकारी द्वारा किये गये सुधारों का पंजीयन करना ।

(ख) भू–अभिलेखों के निरीक्षणकर्ता के रूप में–

उपखण्ड अधिकारी तहसीलदार के माध्यम से सरकार की ओर से भूमिधारी होता है । ग्रामीण क्षेत्र में भू–अभिलेख तैयार करवाना, उसे आदिनांक बनाए रखना और उसका पर्यवेक्षण करना उसका सर्वाधिक महत्व का दायित्व है । उपखण्ड अधिकारी अपने क्षेत्र में स्थित प्रत्येक ग्राम के जमाबन्दी, खसरा, नक्शा व नामान्तकरण का निस्तारण करवाता है । फसल की रिपोर्ट, वार्षिक मिलान एवं क्षेत्रफल की तैयारी भी वही करवाता है । ग्रामीण क्षेत्र में भूमि–सम्बन्धित समस्त तथ्यों का ज्ञान भू–अभिलेखों से प्राप्त हो जाता हैं प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमि पर काबिज रहे, सरकारी भूमि पर अतिक्रमण नहीं हो, भू–राजस्व का भुगतान समय पर होता रहे, भूमिहीनों को अतिरिक्त भूमि का आवंटन हो सके और भूमि सुधार संभव हो सके–यह तभी सम्भव है जब भू–अभिलेख आदिनांक रहे ।

भू–अभिलेख को समयानुसार पटवारी तैयार करवाता है, जिसकी जांच भू–अभिलेख निरीक्षक करता है । भू–अभिलेख निरीक्षक ही अन्तिम रूप से अभिलेखों की शुद्धता के लिए जिम्मेदार है । तहसीलदार और उपखण्ड अधिकारी को यह दायित्व दिया जाता है कि निरीक्षण के समय वे भू–अभिलेख की शुद्धता का पता लगाये ।

(ग) भू–राजस्व संग्रहकर्ता के रूप में–

भू–राजस्व संग्रह करने का प्रत्यक्ष दायित्व तहसीलदार का है, लेकिन उपखण्ड अधिकारी को भी इसके लिए अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया गया है । इस कार्य हेतु उपखण्ड अधिकारी तहसीलदार का मार्गदर्शन करते है । राजस्व अधिकारियों के कार्य के मूल्यांकन में उनके द्वारा की गई राजस्व वसूली को बहुत महत्व दिया जाता है । अत किसी भी उपखण्ड अधिकारी की कुशलता इस बात से आँकी जाती है कि वह राजस्व की उगाही में कितना निपुण है ।

(घ) न्यायिक अधिकारी के रूप में

उपखण्ड अधिकारी के अनेक न्यायिक और अर्द्धन्यायिक प्रकृति के कृत्य हैं उसके क्षेत्राधिकार में आने वाले निम्न तीन प्रकार के अधिकार है:–

1. प्रारम्भिक अधिकार,
2. अपीलीय क्षेत्राधिकार और
3. पुनरीक्षण और पुनरावलोकन क्षेत्राधिकार ।

राजस्थान राज्य में उपखण्ड अधिकारी जो प्रमुख विवाद निपटाता है वे है:–

1. सीमा विवाद,

2. चारागाह की भूमि पर पशु चराने के अधिकार के विषय में विवाद,
3. वन–उपज में अपवर्जन के विवाद,
4. अधिकार–अभिलेख और रजिस्ट्रों की प्रविष्टियों के विवाद,
5. काश्तकारों के वर्ग या अवधि के बारे में विवाद,
6. उत्तराधिकार, अन्तरण या अन्य कारणों में नामान्तकरण
7. भू–राजस्व संबंधी विवाद
8. दस्तूर गांवाई से सम्बन्धित विवाद
9. राजस्व या लगान से मुक्त धारित भूमि की जांच और निर्धारण,
10. सम्पदाओं के विभाजन और समेकन,
11. मुआवजे की अवधारणा
12. भू–राजस्व अधिनियम, 1956 के अधीन विक्रय और नीलामी आदि ।

(ङ) दण्डनायक के रूप में –

उपखण्ड अधिकारी अपने क्षेत्र में दण्डनायक के रूप में कार्य करता है । उसे अपने क्षेत्र में शांति व व्यवस्था कायम करने के लिए दण्डनायक की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं । इस रूप में उसे एस.डी.एम. कहा जाता है और उसके अनेक न्यायिक और प्रशासनिक कृत्य है । वह क्षेत्र में फौजदारी प्रशासन का संचालन करता है । वह जेल और पुलिस नियंत्रण रखता है । उसे पुलिस को रिमाण्ड देने का अधिकार हैं । उसे दण्डनायक के रूप में धारा 144 लागू करने का भी अधिकार है । उसे पुलिस पर नियंत्रण रखने का अधिकार प्राप्त हैं । क्षेत्र में शांति व व्यवस्था की स्थिति बनाये रखने के लिए वह अनेक सुरक्षात्मक उपाय करता है ।

(च) उपखण्ड अधिकारी के विविध रूप–

उपखण्ड अधिकारी का यह सुनिश्चित करने का प्रमुख दायित्व है कि उसके क्षेत्र में जनता को आवश्यक उपभोग की सामग्री उचित मात्रा, उचित कीमत और सही समय पर उपलब्ध हो । उसका यह व्यवस्था करने का दायित्व है कि उसके क्षेत्र में निवास करने वाली जनता को मिट्टी की तेल, चीनी, डीजल, सीमेंट आदि आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति उचित कीमत पर पर्याप्त मात्रा में होती रहे ।

मतदाता सूची को समय–समय पर आदिनांक करने और निर्वाचन के समय आवश्यक व्यवस्था व प्रबन्ध करने का उसका दायित्व है ।

सरकार द्वारा समय–समय पर राजस्व अभियान चलाये जा रहे हैं । इन अभियानों के दौरान ग्रामीण जनता से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रम ग्रामीण जनता के मध्य सम्पन्न कराए जाते है । ऐसे में सम्पूर्ण प्रशासन ग्रामोन्मुखी बन जाता है । इन अभियानों के दौरान प्रत्येक तहसील के उपखण्ड अधिकारी, प्रभारी अधिकारी नियुक्त किये जाते है । इस प्रकार अभियान के समय पर्यवेक्षण और संचालन में अहम् भूमिका अदा करते हैं ।

11.3 तहसीलदार की स्थिति, कार्य व शक्तियाँ

तहसीलदार अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ ' 'सरकारी मालगुजारी वसूल करने वाला । अपने कार्य के आधार पर तहसीलदार मात्र एक विभागीय अधिकारी ही नहीं है, अपितु अपनी–अपनी तहसील में वह एक विधिनायक के रूप में होता है । महाराष्ट्र को छोडकर प्राय: पूरे भारत में इस स्तर

के अधिकारी को तहसीलदार के नाम से सम्बोधित किया जाता है । महाराष्ट्र में तहसीलदार के बजाय उसे मामलादार के नाम से पुकारा जाता तहसीलदारी व्यवस्था एवं तहसीलदार का पद भारत में अंग्रेजी शासन के बहु त पूर्व से विद्यमान है । सही मायने में तहसीलदार का पद उतना ही पुराना है जितना राजस्व प्रशासन की व्यवस्था । तहसीलदार का पद पहले इतना व्यवस्थित नहीं था जितना आज है । उसे व्यवस्थित रूप प्रदान करने का श्रेय अंग्रेजों को जाता हैं । वर्तमान में तहसीलदार भूमिधारियों और जिलाधीश के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी है । ''तहसीलदार' ' का शाब्दिक अर्थ ' कोषालय अधिकारी ' हैं, परन्तु वास्तव में वह इससे कहीं अधिक है । सही मायने में तहसीलदार को जिले में राजस्व व सामान्य प्रशासन की धुरी कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा ।

तहसीलदार राजस्थान तहसीलदार सेवा' के अन्तर्गत आता है । तहसीलदार राजस्थान राज्य सेवा अधीनस्थ सेवा के अन्तर्गत राजपत्रित अधिकारी है । इस पद पर वह नायब–तहसीलदार से पदोन्नत होकर आता है । नायब–तहसीलदार के पद पर नियुक्तियाँ 66 प्रतिशत प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से प्रत्यक्ष भर्ती से होती है जबकि शेष 34 प्रतिशत पदों पर राजस्व निरीक्षकों से पदोन्नत होते हैं । तहसीलदार और नायब– तहसीलदारों की नियुक्ति राजस्व मण्डल द्वारा की जाती है । इस पद पर प्रशिक्षण के लिए सर्व–उद्देशीय राजस्व प्रशिक्षण विद्यालय, टोंक में भेजा जाता है जहाँ उन्हें 18 माह के लिए दीवानी तथा फौजदारी प्रक्रिया, भारतीय दण्ड संहिता, राजस्थान काश्तकारी कानून, 1955, भू–राजस्व अधिनियम आदि विषयों का ज्ञान कराया जाता है । साथ ही उन्हें पशुपालन, कृषि, पुलिस आदि से सम्बन्धित व्याख्यान दिये जाते है । उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए गांवों में ले जाया जाता है ।

तहसीलदार की शक्तियाँ और कार्य

तहसीलदार जिलाधीश का प्रमुख अभिकर्ता है । तहसीलदार के राजस्व सम्बन्धी कर्तव्य इतने प्रमुख और इतने अधिक है कि कई बार उन्हें ही सब कुछ मान लिया जाता हैं । लेकिन वास्तविकता यह है कि उसके कर्तव्य उससे कहीं अधिक है । सभी राज्यों में तहसीलदार राज्य सरकारों की ओर से वैध रूप से भूमिधारी प्रतिनिधि है । सामान्य ग्रामवासी के लिए वही सरकार है । राजस्व प्रशासन में वह अन्तिम स्तर का अधिकारी है । उसके कार्य ग्रामीण जनता के आर्थिक, सामाजिक और कृषि सम्बन्धी जीवन को प्रभावित करते है । वह राज्य प्रशासन में अपना योगदान देता है । वह प्रशासक के साथ–साथ भू–प्रबंधक है । भू–अभिलेख नियमों के अनुसार वह भू–अभिलेखों को तैयार करवाता है ।

तहसीलदार सरकार की ओर से सम्पूर्ण तहसील क्षेत्र में होने वाली समस्त घटनाओं पर दृष्टि रखता है । एक प्रकार से वह तहसील क्षेत्र में सरकार के 'वाच डाग' का कार्य करता है । प्रत्येक घटना, चाहे वह मनुष्य, पशु या प्राकृतिक प्रकोप से संबंधित हो, का आकलन करता है और आवश्यकतानुसार कदम उठाता है । अपने कार्यक्षेत्र में होने वाली घटनाओं की प्राथमिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उसे तहसील क्षेत्र में दौरा करते रहना होता है । नियमानुसार वर्ष में उसे कम से कम 120 दिन तहसील क्षेत्र में दौरा करना अनिवार्य है । राजस्थान में तहसीलदार के विभिन्न रूपों का विस्तृत अध्ययन नीचे किया जा रहा है:–

(1) भू–राजस्व अधिकारी के रूप में–

ग्रामीण क्षेत्र में भू–अभिलेख तैयार करना और उनका अनुरक्षण तहसीलदार का सबसे प्रमुख कार्य है । समुचित राजस्व व्यवस्था के लिए भू–अभिलेख आधारभूत दस्तावेज होता है । तहसील क्षेत्र में तहसीलदार सरकार की ओर से भूमिधारी माना जाता है तथा भूमि की व्यवस्था तहसीलदार द्वारा की जाती है । भू–अभिलेख तैयार करना और उसे बनाये रखने की एक विशेष प्रक्रिया हैं जिसका निर्वाह करना राजस्व प्रशासन में संलग्न कार्मिकों के लिए अनिवार्य है । भू–अभिलेख को आदिनांक बनाये रखना तहसीलदार का प्राथमिक दायित्व है । भू–अभिलेख जहाँ नागरिकों के भूमि, अधिकारियों को आदिनांक बनाए रखने में सहायक है । वहीं भू–अभिलेख भू–राजस्व निर्धारित करने व एकत्रित करने में भी मदद करते है ।

वर्तमान समय में राज्य सरकार को भू–राजस्व से विशेष आय नहीं होती है, क्योंकि एक तो इसकी दर बहुत कम है दूसरे राजस्व उगाही में संलग्न कार्मिकों के वेतन–भत्तों आदि पर सरकार का बड़ा व्यय हो जाता है । परिणामस्वरूप सरकार को इससे विशेष बचत नहीं होने के कारण कुछ लोग यह सुझाव देते है कि सरकार द्वारा भू–राजस्व समाप्त कर देने के पश्चात् भी भू–अभिलेख तैयार करवाने की आवश्यकता बनी रहेगी, क्योंकि भू–अभिलेखों की सहायता से ही नागरिकों के भू–स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार तय होते है । अत: भू–राजस्व समाप्ति के पश्चात् भी राजस्व प्रशासन कायम रखना पड़ेगा क्योंकि अन्य कोई संगठन इस कार्य को पूरा नहीं कर सकता है । तहसीलदार तहसील क्षेत्र के प्रत्येक ग्राम के खसरा, नक्शा, नामान्तकरण आदि का निस्तारण करता है । तहसील क्षेत्र की फसल की समय–समय पर रिपोर्ट, वार्षिक मिलान एवं फसल के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रफल की तैयारी भी तहसीलदार द्वारा की जाती है । भू–अभिलेख के संबंध में तहसीलदार के निम्नलिखित कर्तव्य बताये गये है:–

1. निरीक्षण, भू–अभिलेख के कार्य का परीक्षण करना,
2. ऑफिस कानूनगो के कार्यालय की देखभाल करना,
3. पटवारशाला (यदि कोई हो) की देखभाल करना,
4. नामान्तकरण प्रतिवेदनों का निस्तारण करना,
5. पटवारी और कानूनगो से प्राप्त अन्य प्रतिवेदनों का निस्तारण करना,
6. पटवारियों के वेतन का वितरण करना,
7. आकड़ों से संबंधित प्रतिवेदन को तैयार करना ।
8. ऑफिस कानूनगो और पटवारी के प्रपत्रों का बीजक तैयार करना ।

(2) भू–राजस्व एवं अन्य देयों के संग्रहकर्ता के रूप में–

यह तहसीलदार का मुख्य दायित्व है कि वह समय पर भू–राजस्व एवं अन्य सरकारी देयो का संग्रह करके जमा कराएं। उसका मुख्य कार्य राजस्व एकत्र करना है, जिसमें जिलाधीश तथा उप–जिलाधीश मार्गदर्शन करते है और अधीनस्थ सहायता करते है । जब तक विधि द्वारा छूट नहीं दी गई हो, कोई भी भूमिधारी लगान के चुकाने से मुक्त नहीं हो सकता है । तहसीलदार को यह शक्ति है कि बकाया भू–राजस्व की वसूली के लिए किसी बाकीदार को मांगपत्र देकर उसकी चल सम्पत्ति को (जिसमें उपज भी सम्मिलित है) को कुर्क या नीलामी से उस खाते को पट्टे पर देकर या बाकीदार की चल या अचल सम्पत्ति का रिसीवर नियुक्त करके कार्यवाही कर सकता

(3) न्यायिक अधिकारी के रूप में–

तहसीलदार को राजस्व के संबंध में अनेक न्यायिक अधिकार प्राप्त होते है । उसके द्वारा दिये गये निर्णयों के संबंध में उप जिलाधीश को अपील की जा सकती है । तहसीलदार को निम्न मामलों में न्यायिक अधिकार माना है –

(A) राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 88 की उपधारा (2) के अधीन दावे सुनना,

(B) चारागाह की भूमि या पशु चराने के अधिकार के बारे में विवाद सुनना

(C) वन उपज के उपयोग के अधिकार और वन भूमि से उपवर्जन के विवाद सुनना

(D) काश्तकारों की कृषि भूमि के सीमा विवादों का निपटारा करना

(E) काश्तकारों के वर्ग या अवधि के विवाद निपटाना

(F) उत्तराधिकार, अन्तरण या अन्य कारणों से नामान्तकरण सम्बन्धी विवादों को सुनना

(G) संदेय लगान का राजस्व सम्बन्धी विवाद सुनना

(H) दस्तूर गवाही से संसक्त विवाद सुनना

(I) राजस्व या लगान से मुक्त धारित भूमि की जांच करना और निर्धारण करना

(J) सम्प्रदायों के विभाजन और समांकन

(K) मुआवजे की अवधारणा

(L) राजस्व अधिनियम के अधीन विक्रय और नीलामी करना

(M) ऐसी अन्य बातें जो इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा निश्चित की जाएँ ।

राजस्थान में किसी व्यक्ति द्वारा सरकारी भूमि पर अतिक्रमण करने पर तहसीलदार द्वारा अतिक्रमी को तीन माह तक की जेल की सजा दी जा सकती है ।

(4) कार्यपालक दण्डनायक के रूप में –

तहसीलदार जिलाधीश एवं उपजिलाधीश के निर्देशन में तहसील प्रशासन के कार्यपालिका अधिकारी के रूप में कार्य करता है । राजस्थान में तहसीलदार को द्वितीय श्रेणी दण्डनायक के अधिकार प्राप्त है । यह अपील नहीं सुन सकता वरन् विवाद सीधे उसके सम्मुख प्रस्तुत किए जाते है । तहसीलदार को 6 माह का कारावास तथा 200 रुपये तक का जुर्माना करने की शक्ति प्राप्त है ।

(5) उपकोषालय अधिकारी के रूप में –

तहसीलदार उपकोषालय अधिकारी होता है । उप–कोषागार के कार्य संचालन का उत्तरदायित्व उसी का है । वह उप–कोषागार की कैशबुक पर प्रतिदिन हस्ताक्षर करता है तथा समय–समय पर निरीक्षण करता है । तहसीलदार के इस रूप का उस समय अति महत्व था जबकि देश में बैंकिंग व्यवस्था का विकास नहीं हो पाया था और सम्पूर्ण राशि का आदान–प्रदान तहसील में ही होता था ।

(6) निर्वाचन अधिकारी के रूप में –

भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में कोई भी चुनाव तहसीलदार के सक्रिय योगदान के बिना सम्पन्न ही नहीं हो सकते । निर्वाचन चाहे लोकसभा के हो, विधान सभा के हों, अथवा ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के, तहसीलदार को अहम् भूमिका अदा करनी होती है । सहायक पंजीयन अधिकारी के रूप में वह तहसील क्षेत्र की निर्वाचन सूचियाँ तैयार करवाता है । विधानसभा के चुनावों के दौरान वह सहायक निर्वाचन

अधिकारी के रूप में कार्य करता है । स्थानीय संस्थाओं के चुनावों के समय वह स्वयं चुनाव अधिकारी होता है ।

(7) कृषिगणना अधिकारी के रूप में –

सम्पूर्ण राज्य में निश्चित समय पर कृषि गणना का कार्य सम्पन्न किया जाता है । तहसील क्षेत्र में कृषि गणना का उत्तरदायित्व तहसीलदार का है जिसे वह अपने अधीनस्थों की सहायता से सम्पन्न करता है । कृषि गणना के अन्तर्गत जोत का स्वामित्व, जोत की श्रेणी तथा जोतों का क्षेत्रफल सम्बन्धी आकड़े एकत्रित किये जाते

(8) रसद अधिकारी के रूप में –

तहसील क्षेत्र में उपभोग की आवश्यक सामग्री की निरन्तर पूर्ति बनाए रखना तहसीलदार का दायित्व है । उसका यह कर्तव्य है कि वह तहसील के प्रत्येक ग्राम में समस्त ग्रामवासियों को उपभोग की सभी आवश्यक वस्तुओं को उपलब्ध कराए । विशेषतया चीनी, डीजल, मिट्टी का तेल, सीमेंट और अनाज की पूर्ति का विशेष ध्यान रखा जाता हे । इस प्रकार तहसीलदार जिलाधीश के निर्देशन में रसद अधिकारी के रूप में कार्य करता है ।

(9) राहत अधिकारी के रूप में –

अकाल, सूखा, बाढ़ या अन्य कोई विपदा आने पर तहसीलदार तहसील क्षेत्र में जिलाधीश के निर्देशन में जनता को राहत पहुंचाने का कार्य करता है ।

(10) भू–प्रबंधकर्ता के रूप में –

जिस भूमि पर किसी की खातेदारी नहीं होती है वह भूमि सरकारी भूमि मानी जाती है । सरकारी भूमि के प्रबंध का दायित्व तहसीलदार का है । इस भूमि का सही उपयोग हो और उस पर किसी के द्वारा अनाधिकृत कब्जा न कर लिया जाए, इस बात का वह विशेष ध्यान रखता है । इस सरकारी भूमि पर अतिक्रमण रोकने के लिए तहसीलदार को विस्तृत अधिकार दिये गये है ।

(11) विकास अधिकारी के रूप में –

पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना से पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यों की जिम्मेदारी तहसीलदार के कंधों पर थी । पंचायती राज की स्थापना के पश्चात भी तहसीलदार का योगदान ग्रामीण विकास में कम नहीं है । अनेक ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का निर्माण करने के लिए आवश्यक सूचना और आकड़ों को आवश्यकता होती है जिन्हें तहसीलदार उपलब्ध कराता है । अनेक कार्यक्रमों के तहत दिये जाने वाले ऋण, अनुदान, तकावी आदि के पूर्व प्रमाणपत्र आदि तहसीलदार या उसके अधीनस्थ कर्मचारी उपलब्ध कराते है । वृद्धावस्था पेंशन योजना के अधीन तहसीलदार जांचकर्ता के रूप में भूमिका अदा करता है । पंचायत समिति, सहकारी समिति और बैंकों द्वारा दिये जाने वाले ऋण, अग्रिम आदि की वसूली तहसीलदार द्वारा ही की जाती है ।

(12) तहसीलदार के विविध रूप –

राजस्थान में तहसीलदार को नाना प्रकार के प्रमाण पत्र जारी करने के अधिकार दिये है । साधारणतया वह जाति प्रमाण पत्र, लघु कृषक प्रमाण–पत्र, सीमान्त कृषक प्रमाण–पत्र, भूमिहीन व्यक्ति का प्रमाण पत्र, निवास प्रमाण–पत्र, हैसियत प्रमाण–पत्र तथा नोड्यूज प्रमाण–पत्र देता है ।

समाज कल्याण विभाग द्वारा भारत सरकार की एक योजना के तहत विकलांग और अपंग व्यक्ति को पेट्रोल / डीजल की खरीद पर 50 प्रतिशत की रियायत दी जाती है । यह तहसीलदार के

द्वारा ही क्रियान्वित की जा सकती है । वह ऐसे व्यक्तियों का विस्तृत विवरण अपने पास रखता है और संबंधित व्यक्ति को रियायत के लिए प्रमाण–पत्र दिया जाता है ।

तहसीलदार तहसील में प्रोटोकॉल अधिकारी के रूप में कार्य करता है । तहसील क्षेत्र में आने वाले मंत्रियों. विशिष्ट और अतिविशिष्ट व्यक्तियों के ठहरने का प्रबंध, भोजन, सत्कार आदि का दायित्व तहसीलदार का ही है । भारत में गांवों में होटल आदि नहीं होने के कारण यह दायित्व तहसीलदार पर आगे आने वाले लम्बे काल तक बने रहना स्वाभाविक है। लेकिन एक शोधकर्ता ने अपने शोध प्रबंध में स्पष्ट किया है कि इस प्रोटोकॉल दायित्व का इतना कार्य बढ़ गया है कि तहसीलदार के मुख्य कार्यों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है क्योंकि विशिष्ट व्यक्तियों के सत्कार में इतना समय नष्ट हो जाता है कि आवश्यक कार्य पिछड़ जाते है । मंत्रियों के गैर–सरकारी दौरे पर होने पर तहसीलदार को उसके प्रबन्ध के दायित्व को स्पष्टतः वर्जित बना देना चाहिए ।

तहसील क्षेत्र में तहसीलदार अनौपचारिक रूप में प्रमुख जन–सम्पर्क अधिकारी के रूप में कार्य करता हैं । अनावश्यक होने पर तहसीलदार को उसके प्रबन्ध के दायित्व को स्पष्ट: वर्जित बना देना चाहिए ।

आवश्यक होने पर तहसीलदार को समय–समय पर स्थानीय संस्थाओं का प्रशासक भी नियुक्त किया जाता है । वह भूमि अर्वाप्त अधिकारी और सहायक वक्फ आयुक्त के रूप में कार्य करता है ।

11.4 पटवारी की स्थिति और कार्य

राजस्थान राज्य में जागीरदारी और जमींदारी की समाप्ति के पश्चात् जमीन सम्बन्धी समस्त मामलों को प्रत्यक्ष रूप से यदि देखने वाला कोई कर्मचारी है तो वह पटवारी ही है । राजस्व प्रशासन में नींव का पत्थर है पटवारी । भारत मे वह पद 13वीं सदी से ही पुराना है । अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ तक यह पद स्वतंत्र था । सन् 1873 के राजस्व कानून के अधीन इसे राजस्व प्रशासन के सम्बन्ध में सरकारी कर्मचारी बनाया गया ।

राजस्व प्रशासन को सुगम बनाने की दृष्टि से प्रत्येक तहसील को कुछ पटवार हलकों (सर्किल) में विभक्त किया जाता है । एक पटवार सर्किल एक या एक से अधिक गांवों के समूह से बनता है । पटवार सर्किल निर्धारित करते समय खसरों (खेतों) की संख्या, खेवर व खतौनियो की स्थिति, कुल क्षेत्रफल, कुल कृषि, अनुमानित राजस्व तथा गांवों की संख्या आदि का ध्यान रखा जाता हैं । पटवार सर्किल में परिवर्तन राज्य सरकार की पूर्वानुमति से. भू–लेख निदेशक कर सकता है। सामान्यतया एक पटवार सर्किल की जिम्मेदारी एक पटवारी को सौंपी जाती है । वर्तमान में राजस्थान में दस हजार से भी अधिक पटवारी कार्यरत है ।

इस कर्मचारी को विभिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जाता है, यथा उत्तर प्रदेश में लेखपाल, तमिलनाडू में कारनाम महाराष्ट्र में तलैटी तथा राजस्थान में उसे पटवारी कहा जाता है । राजस्व प्रशासन के क्षेत्र में सभी राज्यों में इस कर्मचारी का बहुत महत्व है । राजस्थान में सामन्ती मूल्यों के पोषक लम्बरदार नामक कर्मचारी के पद को सन् 1963 में समाप्त किये जाने के परिणामस्वरूप पटवारी का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है ।

इस पद के लिए राजस्थान में न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता सीनियर सैकेण्डरी निर्धारित कर रखी है । चयन हेतु लिखित परीक्षा के पश्चात् साक्षात्कार का आयोजन किया जाता है । हाल में इस परीक्षा के आयोजन की जिम्मेदारी राजस्थान लोक सेवा आयोग को सौंपी गई है । चयन के पश्चात्

उम्मीदवारों को नौ माह के प्रशिक्षण के लिए पटवार प्रशिक्षण स्कूलों में भेजा जाता है । ये स्कूल भीलवाड़ा, टोंक, श्रीगंगानगर और भरतपुर में स्थित है । प्रशिक्षण के दौरान उन्हें भाषा, गणित, भूगोल, सर्वेक्षण एवं भू–अभिलेख आदि विषय पढ़ाये जाते है । सर्वेक्षण करना, विभिन्न पत्रावलियों को तैयार करना और राजस्व कानूनों का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान कराया जाता है । प्रशिक्षण के दौरान उन्हें मासिक भत्ता दिया जाता है । प्रशिक्षण के अन्त में राजस्व मण्डल द्वारा एक परीक्षा आयोजित की जाती है । उत्तीर्ण प्रशिक्षणार्थियों को मांग के अनुसार विभिन्न जिलों में भेज दिया जाता है । पटवारी के पद पर नियुक्ति सम्बन्धित जिलाधीश द्वारा दी जाती है । इस पद पर स्थानान्तरण एवं अनुशासनात्मक शक्तियाँ भी जिलाधीश को दी गई हैं ।

नियमानुसार प्रत्येक पटवारी को अपने सर्किल में रहना चाहिए । प्रत्येक पटवारी सर्किल' मे एक पटवार घर स्थापित किया गया है जिसमें पटवारी का कार्यालय एवं आवास की व्यवस्था होती है । वही पटवारी का मुख्यालय होता है जहाँ माह में 20 दिन पटवारी को रहना चाहिए । व्यवहार में यह देखने को मिलता है कि अधिकांश पटवारी वहाँ नहीं रहकर अन्यत्र अपने खेत या गांव या पैतृक आवास या जिला मुख्यालय मे रहते है जिसके अनेक कारण होते है । इससे उनकी कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

ग्राम स्तर पर पटवारी महत्वपूर्ण कर्मचारी है । उसे अनेकानेक कर्तव्यों का निष्पादन करना होता है । इसके कार्यों की यहाँ विस्तार से चर्चा की गई है:–

1. भू–अभिलेख सम्बन्धी कार्य –

समुचित राजस्व व्यवस्था के लिए भू–अभिलेख आधारभूत दस्तावेज है । पटवारी का यह प्रमुख दायित्व है कि भूमि का पूर्ण लेखा जोखा रखे । भू–अभिलेखों को तैयार करना, उनका अनुरक्षण और उन्हें अद्यतन बनाए रखना पटवारी की जिम्मेदारी है । सरकार ग्राम के छोटे से छोटे भू–भाग के क्षेत्रफल, भूमि के मालिक या काश्तकार का पूर्ण विवरण, उत्पन्न होने वाली फसलों की संख्या, सिंचाई के लिए उपयोग में लाये जाने वाले साधन तथा अदा किये जाने वाले भू–राजस्व का विवरण आदि रखने का दायित्व पटवारी पर डालती है । पटवारी एक ओर जनसाधारण को भूमि से संबंधित उनके अधिकारों का ज्ञान कराते हैं तो दूसरी ओर उन्हें राजस्व अदा करने के लिए निरन्तर प्रेरित करते रहते है ।

पटवारी को अपने सर्किल के प्रत्येक गांव के लिए नमय, अभिलेख, रजिस्टर और विवरण तैयार करने होते है । जो भू अभिलेख या दस्तावेज आदि उसे तैयार करने होते है वे हैं– निर्देश पंजिका, दैनिक डायरी, मासिक सारांश, मानचित्र, खसरा, गिरदावरी, खसरा परिवर्तनशील, सर्वे सम्बन्धी चिन्हों की सूची, जिन्सवार सियालु जिन्सवार उन्हालु जिम्सवार विशेष उन्हालु नामान्तरण पंजिका, डाल वाद्द, मांग पत्र, याहा रसीद बुक, चालान अरज हरसाल रजिस्टर नकल, रजिस्टर इन्तकाल, मिलान खसरा, आपत्ति रिपोर्ट, जमाबन्दी, अशुद्ध सूचीपत्र, अंतिम प्रमाणीकरण जमाबन्दी, स्टॉक रजिस्टर और पटवार पत्र रजिस्टर ।

2. राजस्व संग्रहकर्ता के रूप में –

किसी भी पटवारी की कुशलता इस बात से आंकी जाती है कि वह राजस्व एकत्र करने में कितना सफल है । पटवारी को भूराजस्व के सम्बन्ध में निम्न सिद्धान्तों को ध्यान में रखना होता है:–

(क) जितना राजस्व निर्धारित किया जाए उतना ही वसूल किया जाना चाहिए,

(ख) राजस्व का संग्रह समय पर ही किया जाना चाहिए, और

(ग) यदि भू–राजस्व पूर्णत: या अंशत: एकत्रित किया जाता है तो तुरन्त उसकी सूचना सरकार को दे देनी चाहिए।

पटवारी केवल भू–राजस्व ही वसूल नहीं करता बल्कि वह सिचाई कर की वसूली, तकायी की वसूली, पंचायत समिति द्वारा खाद–बीज वितरण व अन्य ऋणों की वसूली, नाना प्रकार के जुर्मानों की वसूली आदि के लिए भी जिम्मेदार है ।

3. भूमि सुधार सम्बन्धी कार्य –

राजस्थान राज्य स्वतंत्रता के समय जमींदारी प्रथा और जागीरदारी प्रथा से ग्रसित था । यहाँ अनेक बिचोलियो या मध्यस्थ मौजूद थे जो कि कृषकों का शोषण करते थे । सैकड़ों मजदूरों, किसानों की पसीने की कमाई का अधिकांश भाग मुट्ठी भर भू–स्वामियों की जेबे गर्म करता था और वास्तविक कास्तकार को दो समय पेटभर भोजन भी मुहैया नहीं होता था। इस स्थिति में सुधार हेतु सरकार द्वारा समय–समय पर भूमि सुधार हेतु अनेक अधिनियम पारित करके उनके तहत नियम बनाए गए । पटवारी से यह आशा की जात है कि वह भूमि सुधार के क्षेत्र में उच्च अधिकारियों को सहायता करेगा। पटवारी के पूर्ण सहयोग के बिना कोई भी भूमि सुधार कानून सफल नहीं हो सकता है ।

4. आपातकालीन सहायता –

कानून में यह प्रावधान है कि बाढ़, अकाल, ओलावृष्टि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निकांड, महामारी एवं अन्य प्राकृतिक प्रकोपों से हुए नुकसान का वास्तविक जायजा लेकर पटवारी तहसील में तुरन्त सूचित करे जिससे पीड़ित लोगों को राहत पहुंचाई जा सकें । जनता के निकट होने के कारण यह आशा की जाती है कि पटवारी आपात स्थिति का सही आकलन करके राहत के कार्य में उपयुक्त योगदान दे सकता है ।

5. राजस्व अभियानों में पटवारी की भूमिका –

राजस्थान राज्य में वर्ष 1951 –52 से ही राजस्व अभियान चलाये जाते रहे है । प्रारम्भ में यह तहसील स्तर पर चलाए जाते थे जो आगे चलकर जिला स्तर पर चलाए गए । सन् 1977 से अभियान राज्य स्तर पर चलाया जाता है । 1 जनवरी से 15 फरवरी 1963 को राजस्व अभियान 'प्रशासन गांवों की ओर' नाम से चलाया गया जिसमें ग्रामीण विकास से संबंधित अनेक विषय जोड़ दिये गए । प्रत्येक राजस्व अभियानों का प्रमुख उद्देश्य यही रहा है कि अभियान के दौरान भू–अभिलेखों को अद्यतन किया जाए और ग्रामीण जनता की समस्याओं का निराकरण मौके पर ही कर दिया जाए । हर अभियान का ग्राम स्तर पर प्रमुख संचालक स्वयं पटवारी रहा है । राजस्व अभियान और राजस्व प्रशासन का आधार ही पटवारी है ।

6. ग्रामीण सांख्यिकी उपलब्ध कराना –

पटवारी ग्रामीण सांख्यिकी निरन्तर एकत्रित करके तहसील को भेजता रहता है जो जिलाधीश कार्यालय होती हुई राजस्व मण्डल तक पहुंचती रहती है । भू-राजस्व सम्बन्धी, फसल सम्बन्धी, पशुधन सम्बन्धी, कुँओं सम्बन्धी आदि पूर्ण आकड़े पटवारी द्वारा संग्रहित किये जाकर तहसील को प्रेषित किये जाते है । इन आकड़ों से सरकार को योजना निर्माण, कृषि विकास प्रशासन आदि में सहायता मिलती है ।

7. पटवारी के विविध कार्य –

गैर–राजस्व सम्बन्धी अनेक कार्यों से भी पटवारी जुड़ा रहता है । पटवार सर्किल में घटित होने वाली समस्त घटनाओं को दर्ज करता है, जन्म व मृत्यु रजिस्टर को भरता है, और संकट कारक घटनाओं जैसे अकाल, बाढ़, भूकम्प आदि की सरकार को तुरन्त सूचना देता है । साथ ही साथ वह मतदाता सूची तैयार करने, चुनाव प्रबन्ध में सहयोग करने, जनगणना, आर्थिक योजनाओं के निर्माण, परिवार कल्याण आदि कार्यों में सहयोग करता

पटवारियों की कुशलता : सिद्धान्त एवं व्यवहार

पटवारियों की प्रतिमाह तहसील स्तर पर एक बैठक का आयोजन किया जाता है जिसमें उनसे नाना प्रकार के आकड़े, दैनिक डायरी का सार आदि लेकर उनका वेतन वितरित कर दिया जाता है । उनके कार्य में कमी या अनियमितता पाए जाने पर उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है । गिरदावर और तहसीलदार द्वारा पटवारी के सर्किल में जाकर निरीक्षण की व्यवस्था है । कार्य में अनियमितता पाए जाने पर पटवारी के वेतन में कटौती और यहाँ तक कि सम्पूर्ण वेतन तक रोक देने के भी प्रावधान है ।

कानून–नियमों में यह स्पष्ट प्रावधान है कि फसल को दर्ज करते समय पटवारी सरपंच या किसी पंच और सम्बन्धित किसान को साथ रखेगा । पटवारी के लिए यह आवश्यक है कि वर्ष में कम से कम आधी ग्राम पंचायतों की बैठकों में उपस्थित रहेगा । ग्राम सभा की प्रत्येक बैठक में उपस्थित रहना उसके लिए अनिवार्य है । किसानों को अपना खाता देखने का कानूनी अधिकार प्राप्त है । अपनी मौजूदगी में पटवारी किसान को पेंसिल की टिप्पणियाँ लेने देगा । किसान द्वारा मांगे जाने पर रिकॉर्ड में से निर्धारित फार्म पर प्रमाणित नकल देना पटवारी का कर्तव्य है । इसके लिए सरकार द्वारा मामूली सी फीस भी निर्धारित कर रखी है ।

समुचित प्रशासनिक व्यवस्था होते हुए भी अधिकांश पटवारियों की अकुशलता, अकर्मण्यता और भ्रष्टाचार की अनेक शिकायतें सुनने को मिलती है । पटवारी का ब्रिटिश और सामन्ती इतिहास बहुत अत्याचारी रहा है । आज भी अधिकांशतः ये मुख्यालय पर नहीं रहते, स्वयं खेती या कोई अन्य व्यवसाय करते रहते है, घर पर बैठकर सरकारी दस्तावेज तैयार करके आगे प्रेषित करते रहते है और इनके द्वारा प्रस्तुत आकड़े फर्जी और मिथ्या पूर्ण होते है, गस्त गिरदावरी नहीं करते, जानबूझकर भू–अभिलेखों । में गलत प्रविष्टियाँ करके लोगों को लड़ाते रहते है जरा–जरा से काम के लिए घूस लेते है, आदि आम शिकायतें है । ऐसा माना जाता है कि पटवारी के द्वारा भू–अभिलेख में गलत प्रविष्टियों के परिणामस्वरूप न्यायालयों में आज सैकड़ों–हजारों मुकदमे चल रहे है । सम्पूर्ण राजस्व प्रशासन और विशेषकर पटवारी के संबंध में बहुत से प्रभावी सुधार करने की आवश्यकता महसूस की जाती है ।

11.5 राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग 2000

राजस्थान सरकार द्वारा श्री शिवचरण माथुर की अध्यक्षता में गठित प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन संख्या– 1, मार्च–जून 2000 में राजस्व प्रशासन के संबंध में सुझाव प्रस्तुत किए गए है जिनमें महत्वपूर्ण सुझाव अग्रलिखित है :–

1. उपखण्ड अधिकारी (एस.डी.ओ.) को चाहिए कि वह सप्ताह में तीन दिन राजस्व न्यायालय सम्बन्धी कार्य करें ।
2. एस.डी.ओ. को चाहिए कि वह लोक शिकायतों पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान दे ।
3. सहायक कलक्टर को कोई कार्यकारी कृत्य नहीं सौंपा जाए तथा इन्हें पूर्णकालिक राजस्व न्यायालय में कार्य करने दिया जाए ।
4. प्रत्येक तहसील कार्यालय में पूछताछ काउन्टर होना चाहिए, जिनके पास सभी आवश्यक सूचनाएं, नियमों एवं आदेशों की प्रतिलिपि हो ।
5. महत्वपूर्ण नियम, लोक कार्यों की प्रक्रिया, शुल्क, समय सीमा आदि का उल्लेख तहसील कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर सरल हिन्दी में किया जाए ।
6. तहसीलदार को चाहिए कि वह आम जनता के अधिकाधिक सम्पर्क में रहे एवं मित्रवत भाव रखते हुए जन समस्याओं का निराकरण करें ।
7. उप तहसील को अधिकाधिक शक्तियाँ एवं जन कार्य सौंपे जाए जिससे यह विकेन्द्रीकरण की प्रभावी इकाई बन सके।
8. पटवारी ग्राम स्तर पर सिटिजन चार्टर बनाकर कार्य करे ।
9. पटवार कार्य (जो अभी 35 है) है कि संख्या कम की जाए एवं इन्हें एक दर्जन तक ही रखा जाए।
10. जाति, मूलनिवास, वित्तीय स्तर, वृद्धावस्था / विधवा पेंशन इत्यादि के प्रमाण–पत्र हेतु पटवारी को ही उत्तरदायी बनाया जाए ।
11. राजस्थान प्रशासन में कार्यकुशलता व प्रभावशीलता हेतु इसका कम्प्यूटरीकरण किया जाए ।

11.6 सारांश

शासन के सफल संचालन हेतु उपखण्ड प्रशासन की आरम्भ से ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह स्तर प्रत्यक्षत: राजस्व एवं कानून व्यवस्था को संभालता है । सामान्य प्रशासन के इन सभी कार्यों को करने में प्रशासक का प्रत्येक नागरिक से सीधा परिचय आवश्यक है । इसी संदर्भ में उपखण्ड अधिकारी, तहसीलदार, कानूनगो एवं पटवारी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है । आज राजस्व प्रशासन के प्रति आम जनता का विश्वास कम होता जा रहा है । चूंकि इनके कार्यों में अत्यधिक अकुशलता, रूखापन, आतंक, रिश्वतखोरी आदि तत्वों का प्रसार हुआ है । लेकिन दूसरी तरफ इस स्तर का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है । महत्वपूर्ण समितियों द्वारा प्रस्तुत सुझावों को स्वीकार कर इन्हें व्यावहारिक ढ़ंग से लागू करने पर इन समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है ।

11.7 शब्दावली

एस.डी.ओ. – उपखण्ड अधिकारी)Sub divisional officer) जिले से नीचे उप जिला स्तर पर राजस्व, विकास व कानून व्यवस्था हेतु अधिकारी ।

राजस्व प्रशासन – कृषि भूमि से संबंधित प्रशासन ।

कानूनगो – तहसील से नीचे एवं पटवार से ऊपर राजस्व प्रशासन की कड़ी ।

11.8 अभ्यास प्रश्न

1. आपके अनुसार राजस्व प्रशासन में क्या–क्या सुधार अपेक्षित है? लिखिए ।
2. उपखण्ड प्रशासन का विस्तार से वर्णन करो ।
3. राजस्व प्रशासन में तहसीलदार की भूमिका का वर्णन करो ।
4. राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा राजस्व प्रशासन में सुधार हेतु प्रस्तुत सुझाव लिखिए।

11.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. राजस्थान सरकार, राजस्थान भू–राजस्व अधिनियम, 1958.
2. खेरा एस.एस. डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन, 1964.
3. रविन्द्र शर्मा राजस्व प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो ।
4. राजस्थान सरकार प्रशासनिक सुधार आयोग (शिवचरण माथुर), 2000.

इकाई – 12

राज्य एवं नीचे के स्तरों पर जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 टी. एस. पी . कार्यक्रमों का मूल्यांकन एवं संचालन

12.3 राजस्थान. संस्थागत मूल्यांकन

12.4 निष्कर्ष

12.5 अभ्यास प्रश्न

12.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप जान पायेंगे कि

– राज्य स्तर पर जनजातिय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र के बारे में,
– राज्य में नीचे के स्तरों पर जनजातिय विकास हेतु जनजातिय तंत्र के बारे में
– राजस्थान में संस्थागत प्रावधानों में बारे में ।

12.1 प्रस्तावना

जनजाति विकास प्रशासनिक तंत्र का एक विस्तृत माध्यम है । इसे पंचायत संस्थाओं के साथ रख जनजातियों के लिये कुछ परियोजनाएं लागू की जाती हैं ।

जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है.

(i) राज्य सरकार – सचिव, जनजाति विकास की अध्यक्षता में प्रशासनिक विभाग तथा विकास, नियंत्रण, आधारिक संरचना विकास एवं सेवा प्रबंध के लिये अन्य विभाग ।

(ii) सरकार के क्रियाओं की अनुपालना करने वाले कार्यकारी विभाग विशेषकर वे जिनका संबंध जनजाति विकास से है ।

(iii) राज्य स्तरीय जनजाति विपणन संघ एवं वित्त और विकास निगम ।

(iv) विभागीय आयुक्त जो प्रत्येक खण्ड के सामान्य प्रशासन को देखते हैं ।

(v) जिलाधीश व जिला दण्डनायक जो कि भारत के सरकारी प्रयासों में प्रमुख स्थान रखता है ।

(vi) सभी सरकारी विभाग के जिला–स्तरीय अधिकारी तथा क्षेत्रीय / जिला स्तरीय निगम अधिकारी।

(vii) जनजाति विकास ऐजेन्सी जैसे आई.टी.डी.पी / आई. टी. डी. ए.।

(viii) जिला ग्रामीण विकास ऐजेन्सी (डी.आर.डी.ए.) जो कि जनजाति एवं गैर जनजाति ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन का कार्य देखती हैं ।

(ix) देश की पंचायती राजा संस्था (प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण) जिसके प्रत्येक स्तर. ग्राम, ब्लाक, जिला जिसमें निर्वाचित प्रतिनिधियों का साथ क्रियान्वयन अधिकारी देते हैं ।

(x) जनजाति विकास निगम जनजाति (सहकारिता) विपणन संघ भी स्थानीय इकाई से युक्त होते हैं (जैसे कि LAMPAS - Large Area Multipurpose Societies)

(xi) जनजाति क्षेत्रों में संयुक्त। वन प्रबंधन समिति जैसे हितकारी समूह ।

(xii) गैर–सरकारी संस्थाऐं (NGOs) जो सरकार के योजना एवं कार्यक्रम लागू करती हैं अथवा नहीं करती हैं ।

जनजाति विकास से संबंधित सरकारी प्रशासनिक व्यवस्था के विस्तृत अध्ययन हेतु निम्न सारणी देखें । सारणी 1 में केन्द्र सरकार तथा केन्द्रीय जनजाति क्षेत्र स्थित सात राज्यों का अष्टम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत तुलना की गयी है ।

ब्लॉक विकास अधिकारी, पंचायत समिति का कार्यकर्ता होते हुए भी सरकारी सेवारत होने के कारण जिलाधीश के प्रति उत्तरदायी है, इस प्रकार वह स्थानीय पंचायत संस्था तथा राज्य सरकार के मध्य सक्षम कड़ी है ।

सारणी 1 में वर्णित प्रशासनिक स्वरूप के अतिरिक्त उल्लेखनीय है कि अधिकतर राज्यों में जनजाति विकास आयुक्त। (अतिरिक्त) का पद भी है । साथ ही, महाराष्ट्र एवं आंध्रप्रदेश के अलावा अन्य राज्यों में परियोजना अधिकारियों को विभिन्न जनजाति विकास संबंधित विभागों के मध्य तालमेल के अतिरिक्त कोई विशेष कार्य नहीं होता है । महाराष्ट्र में आई.टी.डी.पी स्तर पर परियोजना अधिकारी की सहायता APO (सहायक परियोजना अधिकारी) एवं योजना अधिकारी द्वारा किया जाता है । परियोजना अधिकारी उप अभियंता तथा कनिष्ठ अभियंता पर नियंत्रण रखता है । आंध्रप्रदेश में परियोजना अधिकारी का नियंत्रण क्षेत्र के सभी विभागों पर होता है तथा उसे ADM (अतिरिक्त जिला दण्डनायक) का पद प्राप्त है । वह कर्मचारी अधिकारी नियुक्ति, स्थानान्तरण आदि में भी सक्षम है।

नवीं योजना कार्य समूह प्रतिवेदन के आधार पर केन्द्रीय जनजातीय राज्यों में टी एस पी कार्यक्रम संचालन हेतु विभिन्न राज्यों की कार्यशैली का अध्ययन आवश्यक है ।

12.2 एस का संचालन तथा मूल्यांकन

मध्य प्रदेश –

राज्य स्तर पर कार्यक्रमों का मूल्यांकन केबिनेट उप समिति, राज्य के प्रमुख सचिव, नोडल विभाग के मुख्य सचिव द्वारा किया जाता है । निदेशक जनजाति क्षेत्र विकास टी एस पी की योजना का निर्माण एवम् संचालन करता है ।

महाराष्ट्र –

राज्य जनजातीय विकास विभाग परियोजना क्रियान्वयन समिति के माध्यम से इन कार्यक्रमों का संचालन एवं मूल्यांकन करता है ।

उडीसा –

उच्च स्तरीय दो समितियाँ हैं, प्रथम, जनजातीय कल्याण मंत्री की अध्यक्षता में, तथा द्वितीय, राज्य सरकार के मुख्य सचिव के अधीन । ये समितियाँ जनजातीय कोष तथा उसके उपयोग, जातियों को शोषण को मुक्त कराने के उपाय, अंतर्विभागीय समन्वय तथा अन्य मामलों का मूल्यांकन करती है । उच्चतम स्तर पर मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक समिति गठित की जाती है जो जनजातीय विकास कार्यक्रमों के निरीक्षण तथा देखभाल का कार्य करती है ।

राजस्थान –

राजस्थान में जनजातीय आयुक्त उदयपुर तथा समाज कल्याण सचिव सभी कार्यक्रमों का संचालन एवम् मूल्यांकन करते हैं ।

इसी प्रकार विभिन्न राज्यों में टी एस पी कार्यक्रमों के संचालन हेतु जिला स्तरीय शासन तंत्र इस प्रकार –

बिहार

जनजातीय कल्याण आयुक्तालय के उप निदेशक तथा सचिव कल्याण, आई. टी. डी. पी. के संचलन एवम् मूल्यांकन का कार्य करते हैं । कुछ मामलों में ख्याति प्राप्त गैर सरकारी संगठन एवम्

सारणी – 1

जनजातीय विकास हेतु GOI द्वारा अनुशंसित प्रशासनिक व्यवस्था तथा राज्यों में वर्तमान स्थिति

केंद्रीय दिशा निर्देश	आंधा प्रदेश	बिहार	गुजरात	माधप्रदेश	महाराष्ट्र	उड़ीसा	रजिस्थान
1	2	3	4	5	6	7	8
जनजातीय आयुक्त	मुख्य सचिव	सचिव	सचिव/जनतीय विकास आयुक्त	मुख्य सचिव	सचिव/जन जाति विकास आयुक्त	मुख्य (अनुसूचित जाति कल्याण एवं जाति विकास)	मुख्य (समाज कल्याण)
खण्ड आयुक्त	सचिव समाज कल्याण आयुक्त/ निदेशक	जाति कल्याण आयुक्त	निदेशक/टीडी	सचिव (टीडी)तथा जनजाति विकास आयुक्त	अतिरिक्त आयुक्त (थाणे, नासिक, अमरावती)	निदेशक एवं अतिरिक्त सचिव	आयुक्त टीडीए एवं खण्ड आयुक्त उदयपुर
जिलाधीश	जिलाधीश	जिलाधीश क्षेत्रीय विकास आयुक्त	जिलाधीश	जिलाधीश एवं क्षेत्रिय विकास आयुक्त	जिलाधीश	जिलाधीश	जिलाधीश
व्यावसायिक प्रशाशन	परियोजना अधिकारी संयुक्त जिलाधीश	परियोजना प्रशासक	परियोजना प्रशासक	परियोजना प्रशासक	परियोजना प्रशासक	परियोजना प्रशासक (ITDA)	परियोजना अधिकारी
परियोजना प्राधिकरण	विकास अधिकारी	उपखण्ड अधिकारी	-	उपायुक्त	उप परियोजना अधिकारी (प्रशाशन, योजना एवं आश्रम स्कूल)	विशिष्ट अधिकारी	सहायक निदेशक
बीडीओ ब्लॉक स्तरीय	बीडीओ कृषि / मत्स्य	बीडीओ सहायक अभिय	बीडीओ सहायक तालुक विकास/सहाकर/	बीडीओ ब्लॉक शिक्षा/ कृषि विस्तार अधिकारी/वृताधिकारी	बीडीओ विस्तार अधिकारी	बीडीओ सहायक अभियन्ता,	बीडीओ विस्तार अधिकारी

विस्तार अधिकारी	पालन /परियोज ना पशु /मंडल शिक्षा अधिकारी	न्ता	कृषि अधिकारी		(कृषि, शिक्षा, ग्राम, पंचायत)	विस्तार अधिकारी, परियोजना विस्तार अधिकारी	परियोज ना विस्तार अधिकारी
ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता	ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता	ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता	ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता	-	ग्राम स्तरीय अधिकारी	ग्राम स्तरीय अधिकारी	ग्राम स्तरीय अधिकारी
ग्रामीण कृषि कार्यकर्ता	-	ग्रामीण कृषि कार्यकर्ता	-	-	कृषि सहायक	-	-

बिहार जनजातीय कल्याण शोध संस्था भी इस कार्य में सम्मिलित है ।

गुजरात –

प्रत्येक ITDP में परियोजना प्रशासक गुजरात प्रशासनिक सेवा का प्रमुख वरिष्ठ अधिकारी होता है । इसके क्षेत्राधिकार में तालुक, इत्यादि होते हैं जो कि ITDP के अधीन है । इसका नियंत्रण सभी तालुक विकास अधिकारियों तथा अन्य जिला अधिकारियों पर होता है । साथ ही चार सहायक परियोजना प्रशासक, कृषि, पशुपालन, वन एवम् सहकारी संस्था जो इसी के कार्य से जुड़े होते हैं ।

मध्यप्रदेश -

ITDP के कार्यक्रमों के संचालन एवम् मूल्यांकन हेतु जिलाधीश की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई है! इस समिति में विकास विभाग के सभी अधिकारी सदस्य है । समिति प्रत्येक तीन माह में कार्यक्रमों का मूल्यांकन करती है साथ ही परियोजना प्रशासक कृषि अधिकारी स्थल सत्यापन के साथ इन कार्यक्रमों का मूल्यांकन करते हैं । जिला स्तर पर ही अनुसूचित जाति एवम् जनजाति समिति गठित की गई है जो संबंधित जिले के मंत्री के अधीन कार्य करती है ।

महाराष्ट्र –

राज्य स्तर पर परियोजना कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु इस राज्य में परियोजना क्रियान्वयन समिति गठित की गई है जिसका अध्यक्ष विधानसभा का जनजातीय सदस्य होता है तथा अन्य सदस्यों में परियोजना क्षेत्र के जनजातीय सदस्य, संसद सदस्य तथा अन्य मनोनीत जनजातीय लोग होते हैं । इस समिति का सचिव परियोजना अधिकारी होता है तथा अतिरिक्त आयुक्त उपाध्यक्ष होता है । इसके अतिरिक्त वरिष्ठ अधिकारी जैसे जनजाति आयुक्त एवम् अतिरिक्त जनजाति आयुक्त निरीक्षण एवम् दौरों द्वारा कार्यक्रम संचालन करते हैं ।

उड़ीसा –

इस राज्य में ITDA हेतु परियोजना स्तरीय समितियाँ गठित की गई है । जिला स्तर पर जनजाति विकास हेतु जिलाधीश की अध्यक्षता में जिला पुनरीक्षण समिति भी बनी हुई है ।

12.3 राजस्थान : संस्थागत मूल्यांकन

पुनरीक्षण एवं संचालन का मुख्य कार्य जिलाधीश द्वारा DLO तथा BDO के साथ बैठकों द्वारा किया जाता है । जिला परिषद भी इन बैठकों में कार्यक्रमों का पुनरीक्षण करती है । योजनाओं का मूल्यांकन योजना विभाग तथा जनजातीय शोध संस्थान द्वारा किया जाता है ।

इस प्रकार सभी राज्यों में राज्य एवम् जिला स्तर पर कार्यक्रमों के संचालन व मूल्यांकन हेतु संस्थागत व्यवस्था है । इसके अन्तर्गत अनेक कार्य शामिल हैं, जैसे आर्थिक सहायता कार्यक्रम, वित्त, कृषि, सिंचाई, रोजगारोन्मुखी कार्यक्रम, पेयजल, चिकित्सा एवम् स्वास्थ्य, शिक्षा एवम् छात्रावास, विस्थापित जन समस्यायें ICDS कार्यक्रम इत्यादि । इसमें अनेक लोग ही सम्मिलित नहीं हैं बल्कि अनेक विभागों तथा उनके अधिकारियों के सामंजस्य की आवश्यकता है, जो कदापि सरल कार्य नहीं है ।

आठवीं एवम् नवीं योजना और विभिन्न विभागों के अनुसार निम्न विकास कार्यक्रम निर्धारित हैं -

(a) टी एस पी तथा आई टी डी पी के तहत जनजातीय परिवारों को आर्थिक सहायता ।

(b) उपर्युक्त आर्थिक सहायता हेतु निधि (धन) की व्यवस्था ।

(c) जनजातीय गांवों में सहायक ढांचों के रखरखाव हेतु वित्त आयोग इत्यादि (जनजाति विकास विभाग, जिलाधीश एवम् जिला प्रशासन, पंचायत संस्थान) ।

(d) संस्थागत वित्त का प्रवाह (बैंक, जिलाधीश, DRDA, जनजाति विकास विभाग, निगम) ।

(e) जनजातियों को सरकार के अधीन भूमि आवंटन तथा भूमि विकास में सहायता प्रदान करना (जिलाधीश एवम् जिला प्रशासन DRDA ।

(f) लघु सिंचाई एवम् भूमि संरक्षण परियोजनायें, ताकि उत्पादन में वृद्धि हो सके (कृषि, भू संरक्षण, भूजल विभाग, सिंचाई विभाग, पंचायत इत्यादि) ।

(g) जनजातियों को आवंटित भूमि के विकास हेतु अन्य सहायता (राजस्व विभाग, जिलाधीश, जनजातीय विकास विभाग) ।

(h) जवाहर रोजगार योजना तथा अन्य रोजगारोन्मुखी कार्यक्रम जिससे जनजातियों को रोजगार उपलब्ध हो (DRDA, ग्रामीण विकास विभाग जिलाधीश पंचायत संस्थान) ।

(i) समस्याग्रस्त ग्रामों में जनजातियों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध करवाना (सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं अभियांत्रिकी विभाग, तथा पंचायत संस्थाएँ) ।

(j) बड़ी परियोजनाओं द्वारा विस्थापित जनजातियों का पुनर्वास (जिलाधीश, जिला प्रशासन तथा संबंधित विभाग)।

(k) जनजातिय छात्र जो दसवीं से आगे की पढ़ाई कर रहे हैं, उनके लिए रेमेडियल कक्षाओं की व्यवस्था (जनजातीय विकास विभाग तथा शिक्षा विभाग) ।

(l) प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु जनजातीय विद्यार्थियों हेतु विशेष कक्षायें (जनजातीय विकास विभाग) ।

(m) जनजातीय क्षेत्रों में मेडिकल एवम् पैरामेडिकल स्टॉफ (कर्मचारी) उपलब्ध कराना (स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विभाग)।

(n) शिक्षा नीति पूरी तरह से लागू करना प्राथमिक शिक्षा तथा बालिका शिक्षा के क्षेत्रों में (शिक्षा विभाग तथा पंचायत संस्थान) ।

इसी प्रकार गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम हेतु DRDA , जिलाधीश, पंचायत संस्थान एवम् बैंकों का दायित्व है कि वे कार्यक्रमों का संचालन एवम् क्रियान्वयन करें ।

समय–समय पर विभिन्न अनुशंसाओं (जनजातीय विकास हेतु भी देखा गया है कि वास्तव में ऐसा नहीं होता । ITDP में जनजातीय विकास हेतु लगभग सभी राज्यों में आयुक्त नियुक्त है, जो कि योजनाओं के क्रियान्वयन व संचालन का कार्य करते हैं । मात्र उड़ीसा ऐसा राज्य है जहाँ ये सभी कार्य विभिन्न विभागीय ITDP द्वारा निष्पादित होते हैं । गुजरात एवम् राजस्थान के अतिरिक्त अन्य राज्यों में ITDP को कल्याण / जनजातीय विकास विभाग द्वारा धन प्रदान किया जाता है । गुजरात एवम् राजस्थान में यद्यपि कुछ धन ITDP अधिकारियों को आकस्मिक व्यय द्वारा प्रदत्त है । महाराष्ट्र में टी एस पी के गठन हेतु जनजाति विकास विभाग को राज्य योजना विभाग निर्देश प्रदान करता है । जनजातिय विभाग, जिला स्तर पर धन उपलब्ध कराता है । इस प्रकार आईटीडीपी जनजाति विकास का इस धन पर सापेक्ष नियंत्रण नहीं हो पाता जिससे कि समन्वय –कठिन हो जाता है।

आंध्र प्रदेश में राज्य योजना विभाग जनजाति कोष को आयुक्त जनजाति कल्याण को प्रदान करता है जो कि विभिन्न क्षेत्रों जैसे – कृषि, कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन, लघु उद्योग, ग्रामीण जल आपूर्ति , राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम एवम् अन्य स्वरोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों तक पहुँचाया जाता है । यद्यपि सिंचाई, विद्युत एवम् तथा बड़े उद्योगों तक ये कोष TSP द्वारा नहीं पहुँचाया जाता । परियोजना अधिकारी योजना, क्रियान्वयन तथा संचालन में कार्यरत है जिन्हें TSP द्वारा धन (कोष) प्राप्त करते हैं ।

मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा में धन कल्याण विभाग द्वारा जारी होता है किन्तु जनजातीय विकास के परियोजना प्रशासक को प्रत्यक्ष रूप से प्रदान नहीं किया जाता ।

महाराष्ट्र एवं आन्ध्रप्रदेश में टीएसपो कोष का राज्य स्तर पर प्रबंधन होता है । इससे ITDP अधिकारियों में असंतोष व्याप्त है । ITDP के प्रशासनिक ढांचे का प्रभाव कार्य करने वाले कर्मचारियों पर निर्भर रहता है । सभी राज्यों में कर्मचारी निर्धारण में किसी प्रकार की समानता नहीं है । एक ओर राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में ITDP अधिकारी के अधीन 293 गाँव हैं जो दूसरी ओर महाराष्ट्र के किनबात (KINVAT) में मात्र 1 छ गाँव हैं । 16 को सदैव स्टाफ की कमी अनुभव हुई है ।

जनजातीय क्षेत्रों में रिक्त पदों की समस्या पर ध्यान, लगभग प्रतिवेदनों तथा मूल्याकंनों में पाया गया है । वित्तीय तथा अन्य प्रलोभन राशि जो राज्य सरकारों द्वारा विशेषकर जनजातीय क्षेत्र के लिये निर्धारित है, के बावजूद स्थिति विकट है । जिसके लिए गंभीर चिंतन कर ठोस उपाय किये जाने अनिवार्य है ।

सरकार जनजातीय योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु ने केवल विभागीय कर्मचारी एवम् पंचायत राज संस्थाओं का प्रयोग कर रही है बल्कि गैर सरकारी संगठनों का भी सहयोग ले रही है । भारत सरकार द्वारा पिछड़ी जातियों के लिये, गैर सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता 1 953 – 1954 से ही प्रदान की जाती रही है । ऐसी सहायता जनजातियों के शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यावसायिक प्रशिक्षण

हेतु प्रदान की जाती है । 1988–99 तक 160 से अधिक गैर सरकारी संगठनों को इन क्षेत्रों में कार्य करने के लिये प्रत्येक को एक लाख से अधिक की राशि उपलब्ध कराई गई है । राज्य स्तरीय जनजातीय विकास एवम् वित्त निगम अथवा अनुसूचित जाति–अनुसूचित जनजाति विकास निगम, DRDA , पंचायत संस्थान तथा DLO को विशिष्ट योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु उपलब्ध कराता है । जनजातियों की बेहतर आय के उद्देश्य से सहकारी संघों को स्थापित किया गया है ।

12.4 निष्कर्ष

ऐसा मानना है कि संविधान के 73 वें संशोधन विधेयक, जो 1993 में लागू हुआ, के उपरान्त पंचायती राज संस्थायें अधिक प्रभावी ढंग से कार्यरत होंगी । इससे जिलाधीश एवम् जिला प्रशासन पर निर्भरता कम होगी तथा जनजातिय विकास कार्यक्रम, पंचायत संस्थायें ही भली–भांति संचालित कर सकेंगी । फिर भी ITDP को पूर्णतः त्यागा नहीं जा सकता । वस्तुतः ITDP को अधिक शक्तिशाली बनाना होगा तथा अन्य विभागों से उसका अधिक तालमेल स्थापित कराना होगा । पंचायती राज संस्थायें ITDP के सहयोग से विभिन्न जनजाति समूहों की समस्याओं के निस्तारण हेतु कार्यक्रमों का संचालन बेहतर ढंग से कर सकेंगी । निकट भविष्य में जनजातीय विकास के क्षेत्र में सरकारी योजनाओं की सफलता हेतु ITDP ढांचे, जिलाधीश की मुख्य भूमिका , DLO , BDO , इत्यादि संयुक्त रूप से पंचायतों की स्वप्न को साकार कर सकेंगे ।

12.5 अभ्यास प्रश्न

1. राज्य स्तर पर जनजातिय विकास पर एक लेख लिखिये ।
2. विभिन्न राज्यों में जनजातिय विकास पर प्रशासनिक तंत्र की विवेचना कीजिये ।
3. विभिन्न राज्यों में जनजातिय विकास का उल्लेख कीजिए ।
4. राजस्थान मे जनजातिय विकास की विवेचना कीजिए ।

12.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, चन्द्रमौलि, शर्मा अशोक एवं गोयल सुरेश : राजस्थान में राज्य प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1990
2. महेश्वरी, एस. आर. स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1979
3. राजपूत, सरला. रोल ऑफ चीफ मिनिस्टर इन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1994
4. गहलोत, सुखवीर सिंह. राजस्थान में राज्य प्रशासन, राविरा नवम्बर, 1999
5. कटारिया, सुरेन्द्र भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2009

ISBN-13/978-81-8496-033-4